

TEXT DARK AND LIGHT

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180508

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H83
T 36 Ra

Accession No. G.H. 884

Author ठाकुर, कंकभद्र

Title राधा और राजन 1953

This book should be returned on or before the date
last marked below.

राधा और राजन



बलभद्र ठाकुर

प्राप्ति-स्थान

ग्रामोत्थान विद्यापीठ

संगरिया (राजस्थान)

लेखक व प्रकाशक

बलभद्र ठाकुर

ग्रामोत्थान विद्यापीठ

संगरिया (राजस्थान)

Checked 15/05/20

(सब अधिकार लेखकके अधीन)

प्रथम संस्करण, मई १९५३

मूल्य—साढ़े चार रुपये

मुद्रक—

रामा कृष्णा प्रेस

कटरा नील, दिल्ली

अपनी
मातृसमा
समादरणीय
स्नेहमयी
भाभी
‘निरसी देवी’
उर्फ
‘गाँववाली’
को

निवेदन

इस उपन्यासमें शहीदोंकी कहानी है—उन अज्ञात शहीदोंकी, जिन्होंने देशसे विदेशी शासन-सत्ताको मिटाकर 'स्वराज्य' के आधारपर एक शोषणहीन सुखद समाजके निर्माण व विस्तारके सपने देखे, और उस प्रयत्नमें प्राणोंकी बलि भी दे डाली। प्राणों और स्वार्थोंका बलिदान सामान्य बलिदान नहीं !

शहीद मरा नहीं करते, बल्कि उनके बलिदान मरोंमें प्राण फूँका करते हैं। उन्हें कुछ करनेको, उत्सर्ग करनेको उत्साहित करते हैं। खुदीराम, जतीनदास, भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद तथा दूसरे अनेक अज्ञात शहीदोंके वैयक्तिक व सामूहिक बलिदान हमारी आजादीके संग्रामको बलवान बनाते रहे, उसे आगे बढ़ाते रहे इस सचाईमें सबूत पेश करनेकी जरूरत नहीं। और अनुकूल अवसर पाकर इन्हीं बलिदानोंकी नींवपर 'स्वराज्य' का महल भी खड़ा हुआ। पर खेद कि हमें अब भी 'सुराज्य' नहीं मिल सका !

बिना 'सुराज्य' के 'स्वराज्य' का यह महल कब तक खड़ा रह सकेगा ?—यह प्रश्न आज हर विचारवान व ईमानदारके समक्ष उत्तरकी अपेक्षा कर रहा है। यह असंभव है कि वैयक्तिक अथवा सामूहिक-रूपसे स्वार्थोंके उत्सर्ग और बलिदान के बिना 'सुराज्य' कभी प्राप्त हो सकेगा।

उत्सर्ग और उत्साहका आदर्श पहले ऊपरसे पेश होना चाहिये। गीताने कहा ही है—“यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।” अर्थात् छोटे तो बड़ोंके आचरणका अनुकरण करते हैं। यह स्वाभाविक भी है। तो फिर, यदि राष्ट्रके कर्णधारोंके शानशोकत और

भोगके जीवनको देख राष्ट्रके सामान्य जन उस ओर लुब्ध होकर उसे प्राप्त करनेके प्रयासमें अनैतिक आचरणोंका आश्रय लें तो इसके दोषी कौन ? अपराधी कौन ?

केवल उपदेशों, भाषणों और नौकरशाहीके बलपर कैसे 'सुराज्य' लाया जा सकेगा ? इन तरीकोंसे जन-जनके मनमें उत्सर्ग और निर्माणकी भावना कैसे पैदा की जा सकेगी ? यह कहाँका न्याय है, कहाँकी नैतिकता है कि कुछ थोड़े लोग जीवनकी समस्त सुविधाओंका उपभोग करते हुए शेष जनोंको राष्ट्र-निर्माणके लिये उत्सर्ग और उत्साहका उपदेश दिया करें ? धैर्यका पाठ पढ़ाया करें ?

आज राष्ट्रका जन-जीवन अनैतिकता और भ्रष्टाचारके दल-दलमें आ-फँसा है, इस प्रकट सत्यसे कोई भी ईमानदार इनकार नहीं कर सकेगा ! ऐसे समयमें अपने उन शहीदोंकी याद, हममें कुछ सोचने और विचारनेकी ओर, नव-निर्माणकी ओर, सुन्दर-सुखद समाजके संगठनकी ओर उत्साह और उत्सर्गकी भावना पैदा करेगी इस विश्वाससे प्रेरित होकर ही इस कृतिको मैं आपकी सेवामें भेंट कर रहा हूँ ।

स्मरण रहे कि इस कथानकके शहीद-पात्रोंको मानव-रूपमें ही पेश किया गया है, देव-रूपमें नहीं । मानवकी सामान्य आकांक्षाओं और गुण-दोषोंसे जुड़े होकर भी अनुपम साहसिकता, स्वर्गीय सहृदयता और असाधारण बलिदान आदि गुणोंके कारण ही वे महान बन सके थे, महामानवकी अवस्थामें पहुँच सके थे ।

इस उपन्यासका घटना-काल सन् १९२६ से सन् १९४० के बीचका है । दो साल पहलेकी रचना होनेपर भी इसकी नवीन रचमात्र भी कमी नहीं हो पाई यह पढ़कर स्पष्ट हो जायगा ।

नई दिल्ली,

—बलभद्र ठाकुर

[१]

राधाकी माँ अपनी बिटियाको रजाईमें दबाये आँखोंमें आँसू भरे बैठी थीं। राधा आज बीस-पचीस दिनसे मलेरियाके चपेटमें पड़ी थी। दोपहरका समय था। उसे मलेरियाका दौरा शुरू था। बेचारी रजाईके भीतरसे कराह रही थी और माँ अपनी बच्चीको छातीसे दबाये दिलासा देती जा रही थीं। इसी समय पड़ोसकी एक अर्धेड़ उम्रकी महिला वहाँ पहुँची। भारी-भरकम शरीर; मोटापेके कारण आँखें कुछ भीतरको धसी हुईं; गंगा-जमुनी बाल; पैरोंमें चप्पल; बदनमें सिलवार और जामा। धुली हुई पतली सफेद चुन्नीसे आधा सिर और बदन ढका हुआ।

देखते ही राधाकी माँ बगलकी छोटी चटाई आगे सरकाती हुई बोली—“आओ, बैठो रानीकी माँ !”

चटाईपर बैठकर महिलाने पूछा—“अब बिटियाकी तबीयत कैसी है राधाकी माँ ?”

“क्या पूछती हो तबीयतकी बात !”—व्यथासे कुम्हलाये स्वरमें राधाकी माँने जवाब दिया—“देखो, कराह रही है ! आज आठवीं पारी है !”

“किसी डाक्टर-हकीमसे दिखातीं क्यों नहीं—?” स्वरमें आतंशके भाव भरकर आगन्तुक महिला बोली।

“सब करके हार गई रानीकी माँ !”—राधाकी माँने उसी प्रकार व्यथाभरे स्वरमें जवाब दिया—“किस्मत अच्छी रहनेपर ही सब कुछ होता है, डाक्टर-हकीमकी दवा भी काम आती है ! यहाँ तो किस्मत ही फूटी है !”—कहते हुए दायें हाथकी अंगुलियोंसे उन्होंने

कपार छू लिया और साथ ही आँसूके दो बड़े बूँद उनके चिपके पीले गालोंपर लुढ़क पड़े ।

“ना ना !” — महिला सम-व्यथाका भाव दर्शाती हुई बोली—
“रोओ मत ! बिटिया चंगी हो जायगी । यह सब जाँच है राधाजी माँ !”

“भगवानको जाँचके लिए क्या और कोई नहीं मिला ?”—रूँधे और कुपित स्वरमें राधाकी माँने कहा—“अब और कितना जाँच करेंगे ? आदमीसे हाथ धो बैठी ! जवान बेटा चल बसा ! अब इस बची निशानीको भी छीनना चाहते हैं ! इस अनाथकी गोदको उजाड़ करना चाहते हैं !”—कहते-कहते वह जोरसे रो पड़ी ।

रानीकी माँकी पलकें भी गीली हो उठीं । राधा भी रजाईके भीतरसे सिसक पड़ी । माँने उसके मुखपरसे रजाई हटाकर देखा, सचमुच राधा रो रही है ! रोती राधाको भट गोदमें समेटके वह रूँधे स्वरमें बोली—“ना ना, मेरी मुन्नी ! ना.....” और फिर जोरसे रो पड़ीं ।

रानीकी माँने धीरज बँधाना शुरू किया । कुछ देर दोनों माँ-बेटी रोती रहीं । दिलकी व्यथा आँसू बनकर निकल गई । हृदय हल्का हुआ, साथ ही राधाके बुखारका दौरा भी । अब वह माँकी गोदसे हटकर त्रिछीनेपर सिमटकर एक ओर बैठ गई । गोरा-चिट्टा रंग । तेरहवाँ पारकर चौदहवेंमें पहुँची थी । यौवनकी पहली पीढ़ीपर पंर रख चुकी थी । चारसईकी चार-पाँच खूबसूरत लड़कियोंमें वह गिनी जाती । लेकिन अब सौंदर्यहीन बन गई थी । कानों तक खिंची दोनों आँखें अवश्य धसी नहीं थीं, किन्तु चेहरा बिल्कुल पीला पड़ गया था । मलेरियाने खूनका एक बूँद भी न छोड़ा था । उसके पतले-पतले ओठ, तोतेके ओठ जैसे लाल, अब पीले और काले पड़ गये थे । यौवनका संदेश लेकर अंगोंमें आई हुई मुडौलता एकाएक तिरोहित हो गई थी । वह पहिचानी नहीं जा रही थी !

राधाके मित्रा रघुनाथ पंडित दम साज पहले ही दो बच्चे और पत्नीको छोड़कर चल बसे थे। अभी दो साल पहले राधाके बड़े भाई रामनाथका देहान्त हो गया। मरते समय सोलह सालका ही तो था। माँकी उम्र अब पैतालीसके करीब थी, पर दीखती थीं पूरे साठ सालकी। मुमीबतने स्वास्थ्य और सौंदर्य सब छीन लिया था। रघुनाथ पंडित का पेशा पुरोहिताईका था। उनकी मृत्युके बाद उनका अन्नोध विष्णु रामनाथ दूसरोंकी मददसे इस कामको किसी तरह सम्हाले था। वह भी चल बसा। अब राधाकी माँ राधाके लिए वर ढूँढ़ रही थीं। ऐसा वर, जो घर-जमाई बनके रहे; पुस्तनी यजमानी सम्हाले; उनकी देख-रेख करे। लेकिन मित्रा अभी कोई न था। इधर राधा बीमार पड़ गई। इसी मलेरियाने रामनाथके प्राण लिये थे। अतः राधाकी माँके दिलमें शंका, निराशा, चिन्ता और आकुलताका होना स्वाभाविक था।

अब रानीकी माँ बोलीं—“धीरज धरो बहिन ! राधा चंगी हो जायगी। भगवान चाहें तो इसी एकसे इक्कीस कर देंगे। देवी-देवता और सन्त-फकीरोंकी सेवा करो बहिन ! कहावत है—‘जो न करे लकीर, सो करे फकीर’।”

“जो बन पड़ता है करती ही हूँ ! कल ही तो कथाकी मन्त मानी है। कल ही एक सन्तको जिमाया भी। उसका दिया जन्तर राधाकी बीई बाँहमें बाँध भी दिया। मगर फिर भी तो कुछ हुआ नहीं ? बुखार आज आ ही गया ?”

“सन्तोंमें भी सब तरहके होते हैं राधाकी माँ ! उनमें भी कच्चे-पक्के होते हैं। वह कोई कच्चा रहा होगा।”

“तो अब पक्केको कहाँ ढूँढ़ भाई ?”

“क्यों राधाकी माँ !” —रानीकी माँ अचानक चेहरेपर स्मृतिका भाव लाकर बोलीं—“क्या, तुमने नहीं सुना कि अपनी बस्तीमें एक बहुत बड़े सन्तजी आये हैं ? कल ही तो शामको मुनादी कराई

गई थी ? आज सवेरे हम सब कथा सुनने भी गई थीं ।”

“मेने तो नहीं सुना बहिन !”

“मगर राधाकी माँ !”—रानीकी माँ स्वर और आँखोंमें आश्चर्य उड़ेलकर बोलीं—“जीवनमें ऐसी कथा कभी सुनी तो नहीं ! आज जीवन तर गया ! दिल करता था दिन भर बैठके सुनती रहूँ ! मगर दो घड़ी बाद ही कथा बंद हो गई !”

“क्या करूँ बहिन !”—राधाकी माँ मुरझाये स्वरमें अँगुलियोंसे कपार ठोकर बोली—“किस्मतमें बदा रहे तब न ? राधाको छोड़कर कैसे कहीं जाऊँ ?”

“राधाको भी साथ लेती चलतीं । संतोके सत्संगसे रोग-सोग, दुख-दलिदर सब दूर हो जाते हैं । आज शामको फिर कथा होगी । दोनों माँ-बेटी चलना । सुना है, संतजी पन्द्रह रोज रहके कथा करेंगे और कथामें चढ़ावेसे जौ आमदन होगी उससे अपने यहाँ एक बहुत बड़ा मन्दर बनेगा ।”

“मन्दर तो एक है ही, फिर और बनके क्या होगा ?”

“और बनके क्या होगा !... उसमें बैठके लोग भजन-पूजन करेंगे, और क्या होगा ? संतजी कह रहे थे, इतना बड़ा मन्दर बने कि सारा चारसढ़े के हिन्दू उसमें एक साथ बैठ सकें, एक साथ खड़े होकर भगवानकी आरती कर सकें ।”

“हाँ, काम अच्छा है । भला काम जितना ही अधिक हो उतना ही अच्छा !”

“अच्छा, तो शामको चलोगी न दोनों जनीं ?” फिर बायें हाथकी तर्जनी हिलाती, स्वरमें विश्वासकी दृढ़ता मानो उड़ेलती हुई वह बोलीं—“एक बार उनकी कथा सुन लेनेके बाद अगर फिर बुखार आ जाय, तो मेरा नाम बदल देना राधाकी माँ !..... अच्छा, तो मैं अब चली ।”—रुहकर वह उठ खड़ी हुई ।

इनमेंमें एक गोरा-चिट्ठा बाईस-साला सुन्दर नौजवान वहाँ बड़ी

तेजीसे आ धमका । उसके पैरोंमें पेशावरी चप्पल, बदनमें सूट और आँखोंपर सुनहले फ्रेमका चश्मा था । ‘नमस्ते चाचीजी’ कहकर पारी-पारीसे दोनों महिलाओंका अभिवादनकर राधाकी माँके हाथ एक पुड़िया थमाते हुए बोला—“यह राधाके लिए पेशावरसे दवा ले आया हूँ चाची ! इस एक ही खुराकमें मलेरिया भाग खड़ा होगा !”

“पेशावरसे कब आये काशी ?”—राधाकी माँने पूछा ।

“आ ही रहा है चाची, और इसी दम लौट भी रहा हूँ । तहसीलने लारी तैयार खड़ी इन्तजार कर रही है ।”

“इतनी जल्दी काहेकी बेटा ?”—चाची ममताभरे आग्रहके स्वरमें बोलों—“इतने दिन बाद तो आये । एक-दो दिन तो ठहरो । फिर चले जाना ।”

“यही तो पिछले महीने आया था चाची ! अभी लौटना बहुत जरूरी है । आज-कल शामको हमारा क्लास लगता है । आज सवेरे उत्तिमने बताया कि राधा बड़ी बीमार है । मलेरियासे मर रही है । मैं उसी दम दौड़ा हकीम के पास पहुँचा और उससे दवा लेकर सीधे यहीं आ रहा हूँ । यह आजमाई हुई दवा है चाची !” फिर बड़े जोरसे तर्जनीको हिलाकर मजाकके साथ विश्वासके स्वरमें बोला—“एक इसी खुराकमें मलेरिया अगर मर न जाय, तो अबसे मुझे ‘काशी’के बजाय ‘खाँसी’ कहा करना चाची ।” फिर दवाकी पुड़िया चाचीके हाथसे लेकर मुस्कुराता हुआ राधासे बोला—“मैं अपने सामने खिलाके जाऊँगा । इधर आ तो राधा ! ले, इसे निगल जा ! बड़ी मीठी है, मिसरी-सी !”

राधा अपने पीले श्रीहीन चेहरेसे मुस्कराती हुई आगे खिसक आई । काजीनाथके हाथसे दवाकी पुड़िया लेके उसे खोज कर डरते-डरते निगल गई । निगलते ही दवाकी कड़वाहटने उसके चेहरेपर एक साथ सिकुड़न और सिहरन ला दी । कुछेक मिनट बाद कड़वाहट

शान्त हुई। वह स्वस्थ हो गई।

“बस अब ठीक है।”—काशीनाथने सन्तोषके स्वरमें कहा—
“अब मैं चला चाची ! चिट्ठी लिखके बताना कि राधाकी तबीयत
कैसी है।” फिर राधासे प्यारभरे स्वरमें—“क्यों राधा, मुझे चिट्ठी
लिखेगी न ?”

जवाबमें राधाने केवल मुस्कुराकर सिर हिला दिया।

काशीनाथ चल पड़ा।

“ठहर !”—चाचीने उसे रोककर कहा—“चल कैसे पड़ा ? चाय
पी ले, तब जा ! अभी तैयार किये देती हूँ।”—कहकर वह रसोई-घरकी
ओर बढ़ी।

“नहीं चाची !”—काशीनाथने रोकते हुए कहा—“चाय-वायका
टंटा मत खड़ा करो ! देर होगी। लारी चल देगी। नाहक रुकना
पड़ेगा। बड़ा नुकसान होगा। मैं चलता हूँ।”

“अच्छा, तो जरा ठहर !”—कहकर चाची भट्ट दूमरे कमरेमें
गई और क्षण भर बाद ही अंगूरका एक बड़ा-सा गुच्छा लिये बाहर
आके काशीनाथकी ओर बढ़ाकर बोलीं—“ले, इसे लेता जा ! रास्ते-
रास्ते खाते जाना !”

“वाह मेरी अच्छी चाची !”—काशीनाथ मानो खुशीमें उछल
पड़ा—“कैसे समझ गई मेरी चाची मेरे मनकी बात ?” फिर प्रसन्न
मुखसे मुस्कुराते हुए दायें हाथसे अंगूरका गुच्छा लेकर—“तुम्हारे
हाथका अंगूर मुझे बड़ा मीठा लगता है चाची !”—कहकर गुच्छेसे
दो-तीन दाने मुँहमें डालकर लंबे-लंबे पग बढ़ाता अड़ुकी ओर चल पड़ा।

रानीकी माँ अभी गई नहीं थी। काशीनाथके आते ही वह फिरसे
चटाईपर बैठ गई थी। राधाकी माँ अब उनसे बोलीं—“बड़ा
अच्छा लड़का है बहिन ! इसे देखते ही अपने रामनाथको भूल जाती
हूँ।”—कहते-कहते एकाएक उनके स्वर और आँखोंमें गीलापन आ गया।

रानीकी माँ चेहरेपर जरा बल देकर आलोचनाके स्वरमें बोलीं—

“हाँ, अच्छा तो है। मगर जात-पाँत, धरम-करमका कोई विचार नहीं है। सुना है, मुसलमानोंके साथ बैठके खाता है। देवी-देवता और सन्त-फकीरोंका मजाक उड़ाता है। फिर यह अच्छाई किस कामकी ?”

“क्या करोगी बहिन ?”—राधाकी माँ नम्र स्वरमें उसका बचाव करती हुई बोलीं—“अभी बच्चा है। सहलोला है। जब उमर होगी, सुधर जायगा !”

“जनम भर बच्चा ही धरा रहेगा ?”—रानीकी माँ हाथ-मुँह चमकाकर जरा एँठकर बोलीं—“मूँछें तो आ गईं। यह कहो कि पेशावरमें जाके अँग्रेजी पढ़के बिगड़ता जा रहा है।”

राधाकी माँने इस बार कोमल किन्तु आक्षेपभरे स्वरमें जवाब दिया—“मगर सब तो अपने बच्चेको अँग्रेजी ही पढ़ाना चाहते हैं बहिन ? तुम भी तो अपने मुन्नेके लिये अँग्रेजी ही पढ़ानेकी बात कर रही थीं न ?”

रानीकी माँ क्षणभर अप्रतिभ रह गईं। फिर बचावके स्वरमें बोलीं—“क्या करूँ बहन ? मुन्नेके बाप जो नहीं मानते ? कहते हैं अँग्रेजी पढ़के बड़ा आदमी बनेगा।”

“कहाँ तक यह सब रोका जायगा बहिन !”—राधाकी माँ उसी प्रकार कोमल स्वरमें बोलीं—“कहावत है—‘जैसा देस वैसा भेस, जैसा काल वैसी चाल’।”

“हाँ, सो ही बात है राधाकी माँ !”—अपनी सहमति जताती हुई रानीकी माँ उठ खड़ी होकर बोलीं—“अच्छा, तो शामको कथामें आना जरूर ! अब चलती हैं। मुन्ना स्कूल से आया होगा। भूख लगी होगी।”—कहकर धीर-मंथर गतिसे अपने घरकी ओर चलती बनीं।

[२]

काशीनाथ बड़े दिनकी छुट्टीमें घर आया था। चाचीके घर आँगनमें खाटपर बैठा चाय-पानी कर रहा था। राधा उस समय कमरेके बाहरके चबूतरेपर रोटियाँ सेंक रही थी, और चाची काशीनाथके सामने मोढ़ेपर बैठी चर्खेपर सूत कात रही थीं। चाय पीते-पीते ही उसने चाचीसे पूछा—“सुना है चाची, कि तुमने राधाको बेचनेका फैसला कर लिया है ?”

सुनकर चाची अकचका गईं। चर्खेका चलना बन्द हो गया। धागेको तकलीमें समेटती हुई अचरजभरे स्वरमें बोलीं—“क्या कहा ? बेचनेका फैसला ? किसने कहा तुमसे ?”

“सब लोग कह रहे हैं।” काशीनाथने आहिस्तेसे चायकी एक चुस्की लेकर गर्दन सीधीकर कहा—“सारे चारसद्दमें चर्चा है। लेकिन मैं पूछता हूँ तुमसे, कि यह बात सही है कि तुमने तंगीवाले पंडित सुखलालसे राधाको ब्याहनेकी बात पक्की कर ली है ?”

चाची कुछ अप्रतिभ हो गईं। रूईकी पोली अब भी हाथमें ही थी। हिचकिचाते हुए बोलीं—“अभी पक्की तो नहीं हुई, मगर.....”

“अगर-मगर मैं कुछ नहीं जानता !”—काशीनाथने कड़ककर कहा—“पक्की न होना ही ठीक है ! मैं किसी भी सूरतमें राधाकी शादी पंडित सुखलालसे नहीं होने दूँगा !”—कहते-कहते उसकी त्यों-रियाँ तन गईं।

चाची सकपका गईं ! हाथकी पोलीको डलियामें डालकर डरते-डरते बोलीं—“क्या करूँ बेटा ! मजबूर होकर.....”

“मजबूर होकर ?”—बात पूरी होनेसे पहिले ही काशीनाथ उसी

प्रकार कड़ककर बोला—“तुम्हें मजबूरी किस बातकी है चाची ?”

“मजबूरी क्यों नहीं है ?”—चाची पुनः डरते-डरते ही बोली—
“आज सालभरसे लड़का ढूँढ़ रही हूँ। कहीं कोई नजर नहीं आया।
कोई मिला नहीं। अगर मिला भी तो राजी नहीं। फिर क्या करूँ
आखिर ?”

“और कोई मिला नहीं, कोई राजी नहीं, इसीसे बूढ़े सुखलालके
हाथ राधाको बेचनेका फैसला कर लिया ? क्यों चाची ?” जिसकी
उम्र पचासके करीब है ! जो सात बच्चोंका बाप है !”

“बड़ा मालदार है बेटा !”—चाची हिचकिचाते हुए बोली—
“कहते हैं, लाखों की जायदाद है ! राधा सुखमें रहेगी।”

“छिः चाची !”—काशीनाथ चायकी प्याली और रकाबी एक
तरफ रखकर धिक्कारभरे स्वरमें बोला—“क्या बोल रही हो तुम
भी ! क्या दुनियामें धन ही सबसे बड़ी चीज है ? क्या तुम सोचती
हो, कि राधा लाखोंकी जायदाद पाकर भी उसके साथ सुखी रह
सकेगी ?”

चाची चुप हो गई। शिर उनका झुक गया। नीची निगाह किये
अंगुलियोंसे धरती कुरेदने लगीं। कुछ देर बाद आहिस्तेसे बोलीं—
“फिर तू ही बता क्या करूँ मैं ? मैं तो चाहती थी कोई अच्छासा लड़का
मिल जाय तो उसे घर-जमाई बनाके रख लूँ। जजमानी भी सम्हा-
लेगा, मेरे पास भी रहेगा। मगर सो भी तो कोई नहीं मिला ?”

“और नहीं मिला इसीसे राधाको जबह करने चली हो ?”
नहीं चाची, काशीनाथ जीते-जी राधा को जबह नहीं होने देगा ! किसी
भी तरह नहीं ? तुम उसकी माँ हो, तो मैं क्या उसका भाई नहीं हूँ ?
क्या वह मेरी बहन नहीं है ? क्या हमने एक माँका दूध नहीं पिया ?
क्या मैं पराया हूँ ?” नहीं नहीं, यह कभी नहीं होगा चाची ! काशी-
नाथके जीते-जी राधा कभी अनाथ होनेकी नहीं !”—कहते-कहते
राधाके प्रति उच्छ्वसित वात्सल्यकी छटासे उसका चेहरा चमक उठा।

आँखोंमें स्नेहके आँसू उमड़ पड़े ।

सुनकर चाचीका दिल भी उफन उठा । बड़े वेगसे आँसुओंके कई बड़े बूँद बहकर बिखर पड़े । चुन्नीके छोरसे बार-बार आँखें पोंछती नीची निगाह किये बैठी रहीं । आज उन्हें सही मानेमें पता चला कि वे बिन्कुल अनाथ नहीं । उनका भी साथ देनेवाला, खोज-खबर लेने वाला कोई है । उन्हें भी माँकी तरह कोई प्यार करता है, राधाको छोटी बहनकी तरह दुलार करता है । राधा रोटियाँ सेंकते-सेंकते काशीनाथकी बातें नीची निगाह किये सुन रही थी । आज काशीनाथके प्रति उसके दिलमें प्रेमभरी कृतज्ञताका पारावार उमड़ पड़ा । हृदयके उमड़ते आवेगको दवानेमें वह असमर्थ हो गई । चूल्हेको जलता छोड़ चुन्नीसे मुँह दबाकर भट भीतर कमरेमें चली गई और धमसे खाटपर लुढ़क पड़ी । तकियेमें मुँह छिपा जी-भर चुपके-चुपके रोने लगी ।

इधर चाची एक बार फिर चुन्नीसे आँखें पोंछकर मुँह उठाकर गद्गद स्वरमें बोलीं—“तुझे पराया कब समझा बेटा ? जिसे छातीका खून पिला-पिलाके पाला, उसे पराया समझकर भगवानके आगे क्या जवाब दूँगी बेटा ? तू छे ही महीनेका तो था, जब तेरी माँ हम सबको रुलाके भगवानके घर चली गई । उस वक्त जिस अनाथ बच्चेको इस आँचलने बड़ी ममतासे छिपाया, उसे ही पराया समझकर मेरे कलेजेके टुकड़े नहीं हो जावेंगे मेरे लाल ?”

आँखें पोंछकर फिर बोलीं—“जिसकी सीतेली माँ आज तक सीतेली ही बनी रही ! जिसका बाप भी चल बसा ! अपनी आँचलके इसी अनाथ हीरेसे तो आज मैं सनाथ हूँ बेटा ! रामनाथ रुलाकर, इस अभागनकी कमर तोड़कर चला गया ! अब तो तुम्हींको देखकर उसे भी भूलती हूँ मेरे बच्चे ! माना कि तू खत्री है, मैं बाम्हन हूँ, मगर मेरा दिल इसे मानता कब है बेटा ? और मानूँगी ही क्यों ? मेरी छातीके दूधने इस भेद-भावको मेरे दिलसे कबका धो-पोंछकर साफ कर दिया है

काशी !”

फिर ऊपरकी ओर हाथ जोड़कर बोलीं—“मेरे दो बच्चे हैं रामजी ! तुम सब कुछ जानते हो अन्तरजामी ! मेरे काशी और राधापर तेरी साया सदा बनी रहे मेरे भगवान !”—कहते-कहते फिर उनकी आँखें भर आईं और उठकर उन्होंने खाटपर बैठे काशीकी ठोड़ी उठाकर उसे चूम लिया ।

काशीनाथकी आँखें भी गीली हो चली थीं । चाचीने चट उन्हें चुन्नीसे पोंछ डाला । वे उसीकी बगलमें खाटपर बैठ गईं और उसके शिरको अपनी गोदमें ले लिया ।

काशीनाथ कुछ देर इसी प्रकार चुपचाप पड़ा रहा । फिर गला साफकर आहिस्तेसे बोला—“राधाकी शादी अभी नहीं होगी चाची ! उसे पढ़ाऊँगा । जहाँ तक पढ़ सकेगी वहाँ तक । उसे बिलायत तक भेजकर पढ़ाऊँगा चाची !”

“चुप पगला !”—चाची उसकी गालपर प्यारकी एक हल्की चपत लगाके बोलीं—“लोग सुनके क्या कहेंगे ? दर्जा छे तक तो पढ़ चुकी । उसके लिये यही बहुत है । औरतें ज्यादा पढ़के क्या करेंगी बेटा ?”

काशीनाथ इसपर चाचीकी गोदसे शिर हटाकर सीधा होकर बैठ गया । बोला—“ज्यादा पढ़के मर्द क्या करते हैं चाची ? जो मर्द करते हैं औरतें भी करेंगी ।”

“दुत्त, हर-बोंगा !”—चाची स्निग्ध फटकारके स्वरमें बोलीं—मर्द तो पढ़कर हाकिम-हुक्काम बनते हैं, ओकील-मुस्तार बनते हैं । मगर औरतें क्या बनेंगी ?”

“औरतें भी हाकिम-हुक्काम बनेंगी, वकील-मुस्तार बनेंगी ।”

“मगर औरतोंको यह सब शोभा नहीं देगा बेटा !”

काशीनाथ हँस पड़ा । हँसता हुआ बोला—“औरतोंको तो शोभा देगा मन्दिरोंमें जाके कथा सुनना, मूर्तिके सामने खड़ी होके नाच-

गाकर आरती उतारना; सन्त-ब्रह्मचारियोंके पैर दबाना । क्यों, चाची ?”

चाची नाराज होके बोलीं—“न जाने तुझे कब अक्कल आयागी काशी ! इतना बड़ा हो गया ! इतना पढ़ गया ! मगर वही बच्चों जैसी बातें ! तुझसे तो बच्चे ही अच्छे !”

“अपनी माँके आगे बच्चों जैसी बातें करनेमें कोई हर्ज है चाची ?”

चाचीका दिल फिर बाँसों उछल पड़ा ! ऊपरसे मीठी फटकार जताती हुई भीतरसे प्रसन्न होकर बोलीं—“माना कि तू मेरे आगे अब भी बच्चा ही है, मगर इसीसे क्या तू मेरे सामने देवी-देवताओं और संत-महात्माओंका मजाक उड़ायेगा रे ? देख, इसी सन्त-ब्रह्मचारीकी दया और कथाके प्रतापसे राधा मौतके मुँहसे उबर आई । उसका मलेरिया दूर हो गया । अब पहले जैसी ही भली-चंगी हो गई है ।”

सुनकर काशीनाथको बड़ा आश्चर्य हुआ ! उसने अचरजभरे स्वरमें पूछा—“तो क्या, मेने पेशावरसे हकीमके यहाँसे जो दवा लाकर दी थी उससे फायदा नहीं हुआ ? दवा खानेके बाद भी बुखार आता ही रहा ?”

चाचीको अब दवाकी बात याद आई ! बोलीं—“नहीं तो, उसके बाद तो बुखार नहीं आया !”

“तब क्यों कहती हो कि ब्रह्मचारीकी दया और कथाके प्रतापसे राधाका मलेरिया दूर हुआ ? वह मौतके मुँहसे उबर आई ?”

“तो और क्या कहूँ ? जिस दिन राधाने दवा खाई, उसी दिनसे कथा सुनने भी जाने लगी । बुखार फिर लौटकर नहीं आया । मैं तो यही समझती हूँ कि ब्रह्मचारीजीकी दयासे ही बुखार हटा । दवा तो पहले भी कई बार खा चुकी थी, मगर फायदा तो किसीने भी नहीं किया ?”

चाचीकी इस सीधी दलीलके आगे काशीनाथकी बोलती बन्द हो गई । बेचारा कैसे एक अपढ़ और अन्ध-संस्कारमें पली महिलाको

समझाये उसकी समझमें नहीं आ रहा था। दलीलका जोर न देकर उसने सिर्फ कहा—“खैर, तुम जो भी समझो चाची, लेकिन मैं तो उस दवाकी ही यह करामात समझता हूँ। वह अजमाई हुई अच्छूक दवा है। और अगर बुरा न मानो, तो मैं तो कहूँगा कि इन सन्त-ब्रह्मचारियोंपर मुझे तो रत्तीभर भी विश्वास नहीं। ये लोग बड़े ढोंगी, ठग और धूर्त होते हैं !”

“फिर वही बात !”—चाची इस बार चेहरेपर बल देकर आँखें तरेरकर बोलीं—“अच्छा, तो मैं चली जाऊँगी तेरे सामनेसे। फिर तेरे मुँहमें जो आवे बका कर !”—कहकर वहाँसे उठकर वे जाने लगीं।

काशीनाथने चट चाचीका हाथ पकड़ लिया। मीठे स्वरमें बोला—“नहीं मेरी चाची, मैं अब नहीं बोलूँगा ! लो, यह कान पकड़ता हूँ। तुम कहीं मत जाओ ! यहीं बैठो !”—कहकर उसने सचमुच दोनों हाथसे दोनों कान पकड़ लिये।

देखकर चाची हँस पड़ी। बोलीं—“धत् पगला ! हर बातमें मजाक ! सीधी जवानमें जैसे बोलना जानता ही नहीं। तुझे सीधी जवानमें बोलना तो आयगा तब, जब.....अच्छा, अपनी शादी कब करेगा ? बहूका मुझे मुँह कब दिखायेगा ?”

“तुम औरतोंको तो जैसे और कुछ सूझता ही नहीं !”—काशीनाथने तुनककर जवाब दिया—“सिर्फ शादी-ब्याह और बहू ! सिवा इसके और कोई बात ही नहीं ! पढ़ना तो अभी पूरा हुआ नहीं !”—कहते-कहते उसके चेहरेपर लज्जाकी एक हल्की लाली उभर आई।

“यह पढ़ना तेरा कब पूरा होगा बेटा ? जिन्दगीभर पढ़ता ही रहेगा ? क्या बूढ़ा होकर शादी करेगा ?”

“अभीसे बूढ़ा बना दो। तब सचमुच बूढ़ा बन जाऊँगा।”

“तब तेरा मतलब यही है न, कि न खुद शादी करेगा, न राधाकी होने देगा ? अपने साथ उसे भी बुढ़िया बना देगा ?”

“बुढ़िया कैसे बन जायगी ?”—काशीनाथ जरा झल्लाकर बोला—

“अभी-अभी तो चौदहवेंमें आई है । तुम औरतोंकी अक्लपर हँसी आती है चाची !”

“अरे, कैसे तुझे समझाऊँ काशी ?”—चाची जरा संकोच-विजड़ित स्वरमें बोली—“लड़कोंकी बात और है, लड़कियोंकी और । तू जब चाहे शादी कर सकता है, मगर उमर हो जानेपर लड़कियोंकी शादी जल्दी नहीं न हो पाती । चौदहवाँ बीतकर इसी महीनेसे पन्द्रहवाँ शुरू हो गया । इस उमरमें तो…………”

“चुप रहो चाची !”—काशीनाथ फिर भल्लाकर बोला—“मैं अधिक कुछ नहीं सुनना चाहता ! राधा, पढ़नेमें तेज है । उसे जरूर पढ़ाऊँगा । पेशावर ले जाके साथ रखूँगा ।” फिर एकाएक मीठे स्वरमें—“और तुम्हें भी वहीं ले जाऊँगा चाची ! सब जने एक साथ रहेंगे ! भला ?”

“मगर राधा भी आगे पढ़ना चाहे तब न ? जवर्दस्ती तो नहीं की जा सकती ?”

काशीनाथके कुछ कहनेसे पहले ही राधा तीरकी तरह कमरेसे निकलकर एकाएक सामने आ खड़ी हुई और बोली—“मैं पढ़ना चाहती हूँ भैया ! मुझे ले चलिये अपने साथ !”

अब तक चाची या काशीनाथ दोनोंमेंसे किसीने भी ख्याल नहीं किया था कि राधा कब चूल्हा छोड़कर कमरे में चली गई । दोनों ही बातोंमें मशगूल थे । अचानक राधाके उत्तरने दोनोंको चौंका दिया । दोनोंकी ही आँखें उसीकी ओर जा लगीं । उसका चेहरा देख उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ ! आँखें लाल थीं, पलकें अब भी गीलीं ।

काशीनाथ पूछ बैठा—“तू रो क्यों रही थी राधा ?”

“नहीं तो !”—राधाने धीरेसे कहकर भट मुँह फ़िरा लिया और आगे बगैर कुछ कहे पुनः कमरेके भीतर चली गई ।

काशीनाथ कुछ देर गंभीर रहा । फिर खाटसे उठ खड़े होकर बोला—“अच्छा चाची, अब चलता हूँ । अब्दुलके घर जा रहा हूँ ।

इन्तजार कर रहा होगा ।”

“जब देखो तब अब्दुलके घर !” —चाची तुनककर बोलीं—
इन मुसलमान-तुरुकोंका साथ तू नहीं न छोड़ेगा रे ?”

काशीनाथने हँसकर जवाब दिया—“जिनके बीच रहना है उनका साथ करना कोई गुनाह तो नहीं चाची ! और तुम जानतीं नहीं कि अब्दुल कितना अच्छा लड़का है ?”

“हाँ, अच्छा तो है !” —चाचीने अगत्या समर्थन किया—“मगर अपने धरम-करमका ख्याल तो रखना चाहिए ? यह तो अच्छा नहीं कि उसके घर जाकर खा भी लेते हो ? जरा भी विचार नहीं रखते !” क्षणभर चुप रहकर तर्जनी हिलाकर फिर बोलीं—“लेकिन कहे देती हूँ, रोटी यहीं आके खाना !”

काशीनाथ हँस पड़ा । मुस्कराते हुए बोला—“अब से ख्याल रखा करूँगा चाची !... अच्छा, रोटी भी यहीं आकर खाऊँगा !” —कहकर मुस्कुराता हुआ अब्दुलके घरकी ओर चल पड़ा ।

[३]

राधा पेशावर आ गई । उसके साथ माँ भी । आशामाईके मन्दिरके निकट पुराने ढंगकी एक बड़ी-सी कोठीमें काशीनाथका बासा था । कोठीके निचले तल्लेके गलीवाले कमरे किरायेपर चढ़े थे, जिनमें केराना चीजोंकी दुकानें थी । यह काशीनाथकी निजकी कोठी थी जिसे दस साल पहले उसके पिता लाला गोपालदासने खरीदा था । चारसह्रमें कई किते मकानों के रहते भी उन्होंने इस बड़ी कोठीको अपने धन और वड़प्पनके विज्ञापनके लिये ही खरीदा था । नकद दो लाख रुपये छोड़कर मरे थे । अपने चार सगे-सौतेलोंमें काशीनाथ मझला था । लालाजी अपनी मौजूदगीमें ही पुत्रोंमें जाय-दादका बटवारा कर गये थे । काशीनाथके हिस्से पेशावरकी यह कोठी तथा नकद ५० हजार पड़े । पिताके रहते भी वह जब कभी छुट्टियोंमें घर जाता, अक्सर चाचीके घर खाता और सोता भी । फिर पिताके देहान्तके बाद अपनी चाची और राधाका मोह ही उसे चार-सह्र ले जाता ।

बहुत आर्जु-मिन्नत और अनुनय-विनयके बाद चाचीको राजी कर पाया था पेशावरमें साथ रहनेके लिये । अपने पुरखोंकी उस डीहसे चाचीको बड़ा मोह था । होना भी चाहिये । जीवनके सुख-दुःखकी स्मृतियाँ उसके साथ ही तो जुड़ी थीं । हृदयपर बिछोहका भारी बोझ लिये ही वे चारसह्रसे विदा हुई थीं । लकड़ीके बने छोटे छोटे चार कमरे, आँगनके एक किनारे एक छोटा-सा कुआँ, लकड़ी के दो सन्दूक, एक आलमारी, दो पलंग, तीन खाटें यही कुल सम्पत्ति वे चारसह्र छोड़ आई थीं । जब वे चारसह्र से बस में सवार हो पेशावर को आ रही थीं, चारों ओरके हरे-भरे मैदान और मील-मीलके अन्तर

पर बहती स्वात, सालिम और खेयाली नदियोंकी अमल-घबल धाराको पीछे छोड़ते उन्हें ऐसा लग रहा था मानो वे सदाके लिये उनसे बिछुड़ रही हों। किन्तु धीरे-धीरे पेशावरके इस आलीशान मकानसे भी उनका रिश्ता-नाता जुड़ता गया। इस बीव वे चारसहसे कई बार हो भी आई थीं, और इस बार-बारके आवागमनने क्रमशः एकके साथ जुड़े हुए मोहको दूसरेके साथ जोड़ना आरम्भ कर दिया था। अब पेशावरका यह मकान उनके लिये स्वाभाविक बन गया था।

राधाको किसी स्कूलमें दाखिल न कराकर घरपर ही उसके पढ़ने-पढ़ानेका प्रबन्ध किया गया। चाचीको यह बात पसन्द भी आई। इस प्रकार उनकी लाड़ली सदा उनकी नजरोंके सामने रहती। यों काशी, राधाको बाहर भी ले जाता; खेल-तमाशे और सिनेमा-थियेटर दिखाता; सभा-सोसाइटियोंमें उसे साथ लेकर जाता; किन्तु चाचीको यह बात पसन्द न थी। मन-ही-मन काशीको कोसती भी। अपने प्यारके इन परिन्दोंके आचार-व्यवहारकी अधिक आजादी उन्हें खलती थी। संस्कारके जिस संसारमें वे पली थीं, उसे देखते हुए यह स्वाभाविक ही था। काशीनाथ इसे समझता था। वह चाचीकी तुनक-मिजाजीको, उनके क्षोभ-विक्षोभको क्षणभरमें ही अपने प्यार-भरे मजाकोंसे उड़ा देता। बरबस आई हुई हँसीके बवंडरमें चाचीके मनका विषाद यों ही बिला जाता।

×

×

×

राधा प्रसन्न थी ऐसे शिक्षकको पाकर। इससे पूर्व दो-तीन शिक्षकोंसे गुजर चुकनेके बाद ही इन नये मास्टरजीको वह श्रद्धा करने लगी थी। अब उसे पूरा विश्वास हो चला था कि अपने इन मास्टरजीके प्रतापसे पंजाब विश्वविद्यालयके सफल मैट्रिक परीक्षार्थियोंमें वह उत्तम स्थान प्राप्त करेगी ही। बाकायदा स्कूल-कालेजमें दाखिल होकर पढ़ने-वाली अपनी कई सखी-सहेलियोंकी योग्यता उसके इस विश्वासमें कारण थी। क्या साहित्य, क्या गणित; क्या इतिहास और क्या भूगोल हर

विषयमें अपने मास्टरजीके अव्याहत प्रवेशपर वह आश्चर्य-चकित थी। राधाने संस्कृत भी ली थी। मास्टरजीके मुखसे अपनी पाठ्य-पुस्तकके संगृहीत संस्कृत पद्योंके वाचन और प्रवचनपर वह मुग्ध हो जाती। मास्टरजी जब अपने चहरेपर सहज-स्वाभाविक मुस्कान लिये, किसी गम्भीर विषयको भी बड़ी आसानीसे, सीधे-सादे शब्दोंमें समझाना आरम्भ करते, पतली भौंहोंके नीचे उनकी छोटी-छोटी आंखोंसे मानो प्रतिभाका अजस्र प्रवाह फूटता प्रतीत होता। उनके रह-रहकर उठे ओठोंके भीतरसे चमकती दन्त-पंक्ति अपनी आभा दिखाके मानो छिप-छिप जाती। साँवले चेहरेपर चेचकके घने-गहरे दागोंमेंसे यौवनकी उद्दाम उद्दीप्ति भाँकती रहती। और राधा अपनी बड़ी-बड़ी आंखोंसे एक-टक ताकती बड़ी आकांक्षासे इस प्रतिभाको मानो आत्मसात् करती रहती; इस परिणत प्रतिभाके संयोगसे मानो अपनी बाल प्रतिभामें चैतन्य भरती रहती।

काशीनाथने कहा था—“बड़ी मुश्किलसे इस रत्नको तुम्हारे पास ला सका हूँ राधा ! देखना, इसके ज्ञानका लाभ उठानेसे चूकना नहीं।...अफसोस ! यदि राजन गये साल बी. ए. में बैठ पाता, यूनि-वर्सिटीमें पहली पोजीशन (स्थान) उसकी निश्चित थी। इस भद्दी काली शक्लमें गजबकी प्रतिभा छिपी है राधा !”

और राधाने पूछा—“मास्टरजी गत वर्ष बी. ए. में बैठ क्यों नहीं पाये भैया ?”

“क्योंकि ‘मंजूरे खुदा’ नहीं था।”

राधा हँस पड़ी। खिल्लो उड़ते हुए बोली—“यह खुदाकी दुहाई सुनकर लगता ऐसा है कि मेरे भाई साहब शायद ईश्वरपर अब विश्वास करने लगे हैं ?”

“तुम भी खूब लाल-बुझकड़ हो राधा ! यह तो महज एक मुहावरा है। काशीनाथ खुदा क्या, खुदाके बापको भी नहीं मानता।”

गनीमत थी कि चाची वहाँ मौजूद न थीं। नहीं तो काशीनाथपर अभी गुस्साभरी मीठी फटकारोंकी झड़ी लम जाती।

राधाने जरा जोरसे हँसकर पूर्व प्रसंगके छोर पकड़कर फिर पूछा—“हाँ भैया, मास्टरजी बी. ए. में बैठ क्यों नहीं पाये ?”

“ऐन परीक्षाके मौकेपर बीमार पड़ गया अभाग ! देखतीं नहीं उसके चेहरेपर माता शीतलाका तोहफा ? एक तो यों ही इस शक्नको सँवारते वक्त कुदरतकी अक्ल कहीं सो गई थी, तिसपर यह दूसरा इनाम ! कोढ़में खाजकी तरह ! मौनके मुँहसे निकल आया समझो इसे । समझाकर हार मान गया हूँ । कहता है ‘अब परीक्षा नहीं दूँगा ।’ फार्म भी भरा जा चुका है, फीस भी भेजी जा चुकी है, फिर भी कहता है कि परीक्षामें नहीं बैठूँगा ।”

“क्यों ?”

“जाने क्यों ? ... शायद अगले काँग्रेसी आंदोलनमें शामिल होगा । मैं राजनको बड़ा चाहता हूँ राधा ! चाहता हूँ कि किसी तरह वह इस साल बी. ए. में बैठ जाय, और बैठ जानेपर फर्स्ट पोजीशन तो लेकर ही रहेगा । फिर हम दोनों एक साथ आई. सी. एस. की कंपिटिशन (प्रतियोगिता) में बैठेंगे, और साथ-साथ इंग्लैंड जायेंगे । प्रो० बनर्जी भी इसे बड़ा चाहते हैं । वे भी बड़े दुखी हैं कि इसने परीक्षा न देनेका फैसला कर लिया है । सभी कहते हैं, इस जैसा जहीन लड़का आज तक इस्लामिया कालेजमें आया न था ।”

राधा जरा हिचकिचाती हुई बोली—“लेकिन...लेकिन सुनती हूँ कि...आई. सी. एस. की परीक्षा के लिए ‘पर्सनाल्टी’ (व्यक्तिव) भी देखते हैं । तो मास्टर जी.....।”

“ओहो !”—काशीनाथने मुस्कराते हुए चुटकी ली—“तो अपने मास्टरजीकी पर्सनाल्टी तुम्हें पसन्द नहीं ? कह दूँगा राजनसे । तब पास भी नहीं फटकेगा तुम्हारे ! फिर दे लेना मैट्रिककी परीक्षा इस साल !”

“नहीं भैया, नहीं ! ऐसा नहीं !”—राधा जरा शरमाकर, हड़-बड़ाकर प्रतिवाद करती हुई बोली—“मेरे कहनेका यह मतलब नहीं ।

मेरा मतलब तो.....”

“हाँ-हाँ, मैं समझ गया तुम्हारा मतलब। सफाई पेश करनेकी जरूरत नहीं।” काशीनाथने मुस्कराते हुए कहा—“राजनकी पर्सनाल्टी तो उस वक्त खिलती है राधा, जब वह बोलना शुरू करता है। जब वह सबानोंका जवाब देने लगता है, उसकी दिमागी खूबसूरती उसकी जिस्मानी खूबसूरतीको बिल्कुल ढक देती है।... और जहाँ तक शकल-सूरतकी बात है, सो तो इस राजनकी शकलसे भी भद्दी शकलके कई आई. सी. एस. मैं देख चुका हूँ।”

“ठीक कहते हैं आप !”—राधा खुश होकर बोली—“मनुष्यका दिमाग इतना तेज हो सकता है, यह मास्टरजीको देखकर ही मैं जान पाई हूँ ! इनके केवल कुछ दिनोंके पढ़ानेसे ही हर विषयमें मेरी आँखें खुलती जा रही हैं। अच्छा, तो मैं भी इस बारेमें उनसे कहूँ ? क्यों ?”

“कहो, जरूर कहो ! शायद मान जाय।”—फिर जरा मुस्कराते हुए—“औरतोंकी बात वह जल्द मान जाता है। और यदि वह कहनेवाली खूबसूरत हुई तो कहना ही क्या ? और तिसपर तुम तो उसकी शिष्या ठहरी ?”

राधा लज्जासे लाल हो उठी। झल्लाकर बोली—“आप भी भैया, जो मुँहमें आता है, बोल देते हैं ! मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता !”—कहकर कुछ नाराज-सी वहाँसे उठकर अपने कमरेमें चली गई।

×

×

×

राधा, राजनके परीक्षामें शामिल होनेके सम्बन्धमें उससे कुछ पूछते, कुछ कहते शरमा रही थी। जब भी वह इस सम्बन्धकी चर्चा छेड़ना चाहती, काशीनाथका वह मजाक उसे याद आ जाता। अचानक उसके चेहरेपर सुर्खी छा जाती। सोचती—“यदि भैयाको मालूम होगा, फिर मजाक करेंगे। और यदि मेरे आग्रहपर मास्टरजी कहीं

मान गये, तो भैयाकी बन आयगी। जब-तब हर घड़ी क्या-कुछ कहकर चिढ़ायेंगे। मुझे क्या पड़ी है पूछने की, और पूछकर अपने सिर बला मोल लेने की? यों ही तो अक्सर भैया पूछा करते हैं—‘तुमने कहा नहीं राजनसे?’ और कहकर मुस्कुरा देते हैं। मैं नहीं पूछती। वे परीक्षा दें या न दें, मुझे क्या?’ लेकिन अपनी उत्सुकताको अधिक दिन दबा रख सकनेमें वह असमर्थ रही। एक दिन अपना पाठ पढ़ लेनेके बाद, नौकरको चाय लानेकी आज्ञा दे वह इस प्रसंगको छेड़ ही बैठी।

“सुना है मास्टर जी,” उसने पूछा—“कि आपने परीक्षामें शामिल न होनेका निश्चय कर लिया है?”

“हां राधा!”

“क्यों?”

“क्योंकि ऊब गया हूँ कालेजकी पढ़ाईमें, इन परीक्षाओंमें बैठने से। क्या फायदा ‘थर्ड-क्लासी’ अँग्रेजोंकी लिखी किताबें पढ़-पढ़कर परीक्षा पास करनेसे?”

राधा जरा चौंक पड़ी! फिर कुछ सन्तुष्टाती हुई बोली—“अब तक तो परीक्षा देते ही आये थे। इस बार बैठ जाते। डिग्री मिल जाती। अब केवल कुछ महीनोंकी ही तो बात है?”

“क्या करूँगा डिग्री लेके?”

“डिग्री लेके लोग क्या करते हैं?”

“लोग नौकरी करते हैं। अँग्रेजोंके दिये ऊँचे-ऊँचे ओहदोंपर पहुँचते हैं।”

“आपको इन सब चीजोंसे घृणा है क्या?”

“हां!”

राधा चुप हो गई। निगाहें उसकी नीची हो गईं। सामने मेजपर रखी पाठ्य-पुस्तकोंपर नजर गड़ाये ही फिर धीरेसे वह बोली—“भैयाकी बड़ी इच्छा है कि आप इस वर्ष बी० ए० अवश्य कर लें और उसके बाद उनके साथ ही आइ० सी० एस० की कंपिटिशनमें बैठें।

वे आपके साथ ही इंगलैण्ड जाना चाहते हैं ।”

सुनकर राजन बड़े जोरसे ठठाकर हँस पड़ा । इस विचित्र हँसीसे राधा चौंक पड़ी । इस बार अपनी अचरजभरी बड़ी-बड़ी आँखोंसे एक-टकसे राजनको वह ताकने लगी ।

“जिन तत्वोंसे बने होकर लोग आई० सी० एस० बना करते हैं”,— राजनने कहना शुरू किया—“मैं उन तत्वोंसे नहीं बना हूँ भाई ! राजनका जन्म आई० सी० एस० बननेके लिये नहीं, बल्कि आई० सी० एस० नौकरशाहीको समाप्त करनेके लिये हुआ है राधा !”—कहते-कहते उसका चेहरा एकाएक तमतमा उठा—“मैं अंग्रेजी शासनकी इस गोरी मशीनका काला पुर्जा नहीं बनना चाहता !” फिर दायें हाथकी मुट्ठी बाँधकर—“बल्कि इस सारी मशीनरीके पुर्जे-पुर्जेको चकनाचूरकर अपने देशके इञ्च-इञ्चसे विदेशी शासनको मिटाकर अपने देशमें अपना राज्य और सुराज्य कायम करना चाहता हूँ राधा !”

राधा कुछ सहम गई । लेकिन साथ ही उसके किशोर हृदयमें उत्साहका मानो सागर उमड़ पड़ा । वह देख रही थी अपने मास्टरजीके चेहरेपर उभरी हुई वह आभा, जिसमेंसे शत-प्रतिशत ईमानदारी अपनी किरणें उस वक्त भी बिखेर रही थी ।

उत्साहको दबाकर, गला साफकर वह धीरेसे बोली—“लेकिन आई० सी० एस० परीक्षामें सफल होकर भी तो देशके लिये लड़ा जा सकता है ? उस परीक्षाको पास कर लेने, और उसके हर कल-पुर्जेकी जानकारी प्राप्त कर लेनेपर उस मशीनरीको नष्ट करना कहीं आसान बन जायगा, वनिस्वत इसके कि उससे बिल्कुल अलग रहा जाय । सुभाषबाबू जैसे लोग भी तो आई० सी० एस० पास कर चुके हैं, लेकिन उन्होंने उस गोरी मशीनरीका काला पुर्जा बननेसे साफ इनकार कर दिया । अब वे कहीं अधिक जानकारीके साथ उस मशीनरीको नष्ट करनेमें लगे हैं ।”

उत्तरमें राजनने पुनः एक उपेक्षाकी हँसी हँसकर कहना शुरू

क्रिया—“देशके सबसे बड़े नेता महात्मा गांधीने कौनसी आई० सी० एस०की परीक्षा पासकी है राधा ? बल्कि कहना चाहिये कि अपने निजी जीवन-संग्राममें उन्हें औरोंकी अपेक्षा बहुत कम सफलता मिली । लेकिन देशकी आजादीके संग्राममें, इस शासन-मशीनरीको नष्ट करनेकी ओर कदम बढ़ाने में उन्हें औरोंकी अपेक्षा कहीं अधिक सफलता मिली है । और आई० सी० एस०की नौकरी ठुकरानेवाले श्रीसुभाष वसु भी उन्हींके पीछे चलकर अपने अभीष्टकी ओर अपना कदम बढ़ाये जा रहे हैं ?”

राधा निरुत्तर हो गई । प्रतिभाके रहते भी एक सामान्य शिक्षित किशोरीके लिए एक महापंडितके तर्कोंके समक्ष टिके रहना आसान न था । फिर भी वह बोली—“लेकिन उसकी असलियतको जान लेना कोई बुरी बात तो नहीं मास्टरजी ?”

“उस परीक्षामें बिना बैठे भी उसकी असलियत जानी जा सकती है राधा, ठीक उसी तरह जैसे बिना स्कूल-कालेजकी पढ़ाईके भी अध्ययनशील, अध्यवसायी और प्रतिभाशाली व्यक्ति विश्वविद्यालयोंकी उपाधिधारियोंकी अपेक्षा भी कहीं अधिक बुद्धिमान और विद्वान बन जाते हैं । अपने जातीय इतिहासके महत्वपूर्ण निर्माताओंमें ऐसे अनेक उदाहरण तुम्हें मिलेंगे, जिन्होंने बिना किसी बड़ी शिक्षण-संस्थाका मुँह देखे ही अपने कार्योंसे अपने जातीय इतिहासकी धारा ही पलट दी है, विश्वके इतिहासकी गति ही बदल दी है ।”

राधा अब चुपचाप जिज्ञासा-पूर्ण नेत्रोंसे राजनकी ओर देखने लगी । राजनने फिर कहा—“आज सोवियत संघका भाग्य-विधाता स्तालिन किसी विश्वविद्यालयका उपाधिधारी न होकर भी अपनी प्रवृत्तियोंसे सारे संसारको हिला रहा है । वह संसारकी ऐतिहासिक गतिको व्यवस्थित करनेमें पूर्णतः सचेष्ट है । जर्मनीका उदीयमान नेता हिटलर सेनाका एक सामान्य सैनिक था, लेकिन उसके व्यक्तित्वमें आज जर्मनीका धनी तबका अपने उद्धारकी आशा प्रगट करने लगा है ।

और, अफगानिस्तानका अमानुल्ला, जिसने अपनी क्रांतिकारी प्रवृत्तियोंसे प्रतिक्रियावादी संसारको चौंका दिया था, एक महज अपढ़ पठान सरदार ही तो है ? फिर क्या आवश्यकता है आई० सी० एस० परीक्षा पासकर आजादीके मैदानमें आनेकी, और तब कहीं गोरी सत्ताको नष्ट करनेके प्रयत्नमें लगनेकी ?”

इतनेमें नौकर ‘ट्रे’ में चायका सरंजाम लिये वहाँ आ पहुँचा। उसे भेजपर रखकर वह कमरेसे निकल गया।

नीचेसे चाची आकर एक बार कमरेको झाँककर बोली—“काशी नहीं आया अभी ? लड़केको भूख भी नहीं लगती आज-कल ?”

“अभी तो नहीं आये चाची !”—राधाने जवाब दिया—“शायद आष कुछ देरसे आर्येंगे ?”

“अच्छा, तो तुम लोगोंके लिए कुछ और भी भेज दूँ ? कोई और मिठाई-सिठाई ?”

“जरूरत पड़नेपर आवाज दे दूँगी चाची ! अभी तो भैयाका हिस्सा भी हमी लोग निबटार्येंगे।”

चाची नीचे चली गई। राधा चुपचाप चायकी दो प्यालियाँ और नाश्तेकी दो तश्तरियाँ सजाकर उनमेंसे एक-एक राजनकी ओर बढ़ाकर बोली—“मेरे भैया भी तो आजादीकी लड़ाईमें भाग लेना चाहते हैं। लेकिन उनका विचार है कि पहले आई० सी० एस० बन जें, फिर पूरी तैयारीके साथ आजादीकी लड़ाईमें शामिल हों।”—कहकर अपनी तश्तरीमेंसे एक बर्फीका टुकड़ा मुँहमें डालकर धीरे-धीरे वह चाय पीने लगी, और रह-रहकर राजनकी ओर जिज्ञासा-भरी आँखोंसे देखने लगी।

“भैया तुम्हारे किसी और मोहमें फँसे हैं राधा !”—राजनने चायके कुछ घूँट पीकर जवाबमें बताया—“वे संसारको अपने त्यागकी महिमा दिखाना चाहते हैं। पहले आई० सी० एस० बनेंगे, फिर उसकी नौकरी ठुकरायेंगे, और फिर माननीय नेता बनेंगे। क्योंकि देखता

तो ऐसा ही हूँ कि इन स्वतन्त्रताके सैनिकोंमें भी मान-सम्मान उसीका अधिक होता है, जिसके पास जीवन-यापनके विशाल साधन पहलेसे ही मौजूद हों, जो पहलेकी अपेक्षाकृत अधिक सुविधाकी स्थितिको त्याग आया हो, लेकिन स्वल्प साधनका सैनिक अपने जीवन-यापनके समस्त सहारेकी बलि देकर भी उस सम्मान और पदको नहीं प्राप्त कर पाता जिसे धनी और साधन-सम्पन्न देशभक्त बड़ी आसानीसे प्राप्त कर लेते हैं।”

अपने मास्टरजीकी यह बात राधाको अच्छी नहीं लगी। एका-एक उसके चेहरेपर विरक्तिकी लाली दौड़ गई। अपनी आँखें राजनकी आँखोंमें भरकर, चायकी रकाबी मेजपर रखते हुए कुछ रुखाईसे वह बोली—“तब आप मेरे भैयाको नहीं जानते मास्टरजी !”

राजन भट स्थितिको सन्हालते हुए बोला—“जानता हूँ राधा, बड़ी अच्छी तरह जानता हूँ। नाराज मत होओ ! काशी मेरा प्रिय मित्र है। अपने प्रति उसके परम प्रेमको भी जानता हूँ। और यह भी जानता हूँ कि तुम्हारा यह आग्रह भी शायद उसीसे प्रेरित होकर है। बुरा मत मानना राधा, राजन कभी तुम्हारा शिक्षक बनना स्वीकार नहीं करता यदि वह काशीनाथको प्यार न करता होता।”

राधा कुछ अप्रतिभ हो गई। इस वार उसके मनमें एक ईर्ष्या-मिश्रित आनन्दका उदय हुआ। वह चुपचाप राजनको ताकने लगी।

राजन अब चायकी प्याली खालीकर उसे मेजपर रखकर फिर बोला—“तुम्हारा भैया एक कोमल, निष्कपट हृदयका महत्वाकांक्षी युवक है राधा ! साय ही प्रतिभाशाली भी है। देशके लिये उसके दिलमें दर्द है। और यह नवयुवकोंका दिल है जो सत्यके कहीं समीप होता है। किन्तु काशीनाथमें संकल्पकी वह दृढ़ता नहीं, जिसके द्वारा वह निश्चित लक्ष्यकी ओर बढ़ता ही जाय। मुझे संदेह है कि वह आई० सी० एस० पास करके उस गोरी शासन-मशीनरीका ‘काला पुर्जा’ बननेसे इनकार कर सकेगा। उसका लोभ संवरण कर सकेगा। और तब उस

मशीनरीका पुर्जा बने रहकर 'देशभक्त' बने रहनेकी इच्छा या दावा करना उसका गलत होगा, उपहसनीय होगा। इसीलिये मैं इस विचारमें काशीनाथके साथ नहीं हूँ राधा !”

राधा निरुत्तर हो गई। साथ ही उसके दिलमें कुछ उलझन भी पैदा हो गई, कुछ खीझ भी। ऐसे महान पद और पदाधिकारियोंकी ऐसी स्पष्ट कटु आलोचना सुननेको उसका दिल कतई तैयार न था। अबतकके उसके बद्धमूल संस्कारपर यह एक करारा और कठोर प्रहार था। राधा अब चारसदा जैसे क्षुद्र नगरकी एक सामान्य वासिन्दा न होकर पेशावर जैसे आधुनिकता-संपन्न बड़े शहरकी सभ्रांत निवासिनी थी। चारसदा रहते समय कभी उसने इस ओहदेका नाम तक न सुना था। किन्तु अब उसके बय, विद्या और जानकारीकी सीमा भी बढ़ती जा रही थी। अपनी धनी घरोंकी सखी-सहेलियोंके मुखसे पारस्परिक संभाषणोंमें आई० सी० एस० की चर्चा अक्सर वह सुना करती। स्कूल-कालेजमें पढ़नेवाली कई लड़कियाँ अभीसे किसी आई० सी० एस० की मेम बननेकी महत्वाकांक्षा अपने मनमें पाल रही थीं। जाने-अनजाने राधाका दिल भी इस प्रकारकी आकांक्षाओंसे अछूता न था। इसमें सफल होना किसी भी नारीके सौभाग्यकी चरमता मानी जाती। सो, उस सौभाग्यकी चरमताका मूल उस 'परम पद' पर ऐसा कटु आक्षेप सुनकर वह कुछ अनमनी-सी हो गई। फिर उसे याद आई वह कहावत—'अंगूर खट्टे हैं'। लेकिन राजनपर यह कहावत कैसे लागू हो सकती है, जबकि उसके लिए अंगूर दुर्लभ नहीं है। उस मधुर अंगूरको प्राप्त करनेके लिये उसके सिर्फ राजी होनेभरकी देर है। मददगारोंकी कमी नहीं। रुपये-पैसेसे काशीनाथ मदद करेगा और अन्य प्रकारसे प्रो० बनर्जी जैसे प्रभावशाली लोग। अतः उस परम पदको प्राप्त करनेकी पूरी क्षमतावालेके मुँहसे ऐसी आलोचना अमंगल नहीं कही जा सकती। उसे झुठलाया नहीं जा सकता।

राधाका मन इस उलट-पेंचीमें पड़ा हुआ था। विचारोंके द्वन्द्वने इस क्षण उसके चेहरेपर एक मधुर गंभीरता ला दी थी। उसका स्वभाव-सुन्दर मुख बड़ा रमणीय बन गया था। पलकें नीचे झुकी थीं। खिड़कीसे छन-छनकर आ रही पश्चिमके सूर्यकी हल्की किरणें उस मुखसे टकराकर मधुर दीप्तिकी सृष्टि कर रही थीं। और राजन अपनी छांटी-छोटी आँखोंसे इस रमणीयताको मानो जी-भरकर पीनेमें लवलीन था। अपनी विचार-मुद्रामें राधाको यह पता भी न था कि उसके मास्टरजीकी आँखें उसके मनोहर मुखपर गड़ी है। जब तन्द्रा उसकी भंग हुई, अपनी ओर लगी राजनकी आँखें देखकर वह चौंक उठी। उसके चेहरेपर सहसा शर्मकी सुर्खी उभर आई। एक बार उड़ती निगाहोंसे अपने वक्ष-स्थल और पहिनावेकी ओर देख भट वह उठ खड़ी हुई। बोली—“आपके लिये एक प्याली और चाय मास्टरजी ?”

“राजनने मना करते हुए कहा— “अब और नहीं राधा ! एक-दो बार और भी पी चुका हूँ। अधिक पीनेसे अब खुश्वी करती है। और खासकर तबसे, जबसे शीतला माताने कृपा कर दी है।”

राधा फिर कुर्सीपर बैठ गई। उसके मनमें सहानुभूतिका भाव जाग्रत हो उठा। सहानुभूतिभरे स्वरमें वह बोली—“आप एक छोटी-सी दवा करके देखें मास्टरजी ! बल्कि मैं इसी वक्त बाजारसे मंगवाये देती हूँ। शुद्ध नारियलके तेलमें कपूर मिलाकर रोज लगाया करें। कुछ महीनोंमें ही उसके सारे दाग मिट जायेंगे।”

राजनने हँसकर जवाब दिया—“ दागोंके मिटनेसे खुशकी तो नहीं मिटेगी भाई ? इन घने-गहरे दागोंको मिटा सकनेकी क्षमता दुनियाकी किसी भी दवामें नहीं है राधा ! यह साथ जायेंगे। नारियलके तेलमें कपूर मिलाकर मलनेसे मामूली दाग मिटते हैं, ऐसे गह्वे नहीं। और मैं यह सब करूँ ही किस लिये ? दाग मिट जानेपर भी सुन्दर तो बनूँगा नहीं। जो शरीरसे पहलेसे ही प्रकृतिकी सर्वोच्च

विडम्बनाका पात्र है, उसका बाहरसे सुन्दर बननेका प्रयत्न तो और भी विडम्बना है राधा !”

राधाके कोमल हृदयको एकाएक एक गहरी वेदना खरोंच गई । वह राजनकी ओर एक बार सहानुभूतिकी आँखोंसे देखकर मन-ही-मन बोली—“आः ! यदि इस शरीरमें सुन्दरता होती ! मानव जाति-का एक अनुपम रत्न !”

वह मन-ही-मन सृष्टिकर्ताको बारंवार धिक्कारने लगी । इतनेमें बेहराने आकर चौकठके बाहरसे ही जताया—“कोई एक मुगलमान बुढ़िया मास्टरजीके इन्तजारमें नीचे गलीमें खड़ी है ।”

राजन चट कुर्मीसे उठकर बोला—“अच्छा, नमस्ते राधा !”—कहकर भट कमरेसे निकल पौडियोंपरसे खट-खट करता मकानके दरवाजेसे बाहर गलीमें आ गया । उस मुसलमान बुढ़ियाका नाम सुनकर राजनकी इस जल्दबाजीने राधाके मनमें कौतूहल पैदा कर दिया । उसने खिड़कीसे झाँककर नीचे गलीमें देखा, राजन झुककर ‘सलाम अम्मी’ कहकरयुर्कमें ढकी उस बुढ़ियाका अभिवादन कर रहा था ।

बुढ़िया युर्कके भीतरसे ही बड़े व्याकुल स्वरमें बोली—“रहीमकी हालत वड़ी खराब है बेटा ! रजिया तुझे कबसे याद कर रही है । तेरे घरपर गई । सुना कि लालाके घर पढ़ाने गया है । फिर पूछती-पाछती किसी तरह यहाँ तक आई । चल बेटा, जल्दी चल ! अपने उस दोस्त हकीमको भी साथ लेता चल ।”—कहकर वह सिसकने लगी ।

“रोओ मत अम्मी ! भैया चंगा हो जायेंगे ।”—कहकर राजन उस बुढ़ियाके आगे-आगे चल पड़ा और साथ ही राधाके मनमें एक और गम्भीर कौतूहलके भाव भी छोड़ता गया ।

[४]

राजनको अपने मित्र डा० प्रेमनाथसे मुलाकात न हो सकी । वह अकेला ही रहीम खानकी माँके साथ उनके घर पहुँचा । रहीम खानकी बीवी रजिया, राजनको देखते ही उसपर बरस पड़ी— 'दुनियामें बहुतेरे बन्दे देखे राजा भाई, लेकिन तुम जैसे नहीं । हम मर जाँय, गड़ जाँय, मगर तुम क्यों खबर लेने लगे ? क्या हुआ था आखिर ? जरा-सी बातपर लूठकर आना-जाना बन्द ? भाई-भाईका रिश्ता टूट जाय ? आखिर क्या कहा था उन्होंने ? उम्रमें बड़े हैं, अगर कुछ जवानसे निकाल ही डाली तो क्या छोटा इस कदर बेरहम बन जाय ? हम सब कलसे भूखे हैं ! मरीज तबीयतके आदमी ठहरे । देखो तो क्या हाल हो गया है उनका !"—कहकर राजनका हाथ खींचती उसे उस कमरेमें ले गई जहाँ रहीम खान खाटपर आँख मूँदे पड़े थे ।

"यह लो !"—रहीम खानको उद्देशकर रजिया बोली—"आ गये तुम्हारे भाईजान ! लड़ो तुम दोनों, और शामत आये मुझ गरीबपर !" और कहकर भट कमरेसे बाहर हो गई ।

रहीम खानने करवट फेरकर एक बार राजनको देख लिया । फिर दूसरी ओर मुँह करके लेट गये । उन्होंने राजनसे चूँ तक नहीं किया । कोई बात तक नहीं पूछी ।

मारे संकोचके राजनका शिर नीचा हो गया था । बगलकी दूसरी चारपाई पर बैठा कुछ सोच रहा था । थोड़ी देर बाद जब उसने शिर उठाकर देखा, देखते ही कुण्ठित हो गया । रहीम खान रूमालसे बार-बार अपनी आँखें पोंछ रहे थे । राजनका दिल भर आया । इस प्रकृत्रिम स्नेहके आँसूने अचानक उसके मानव मनपर घोर प्रहार

कर दिया। वह अपनेको सम्हाल न सका। चट उठकर रहीम खानके पैर पकड़कर—“मुझे माफ नही करेंगे भैया ?”—रुहते-कहते वह स्वयं भी फूट पड़ा।

रहीम खान चट पैर खींचकर उठ बैठे। अपनी बांहोंमें राजनको जकड़कर बिलख-बिलखकर रोने लगे।

रजिया तब तक एक हाथसे तश्तरीमें अंगूर, अनार और सर्दी तथा दूसरे हाथमें दूधसे भरा गिलास लिये वहाँ आ पहुँची। इन भिन्न-धर्मीय भिन्न-रक्तीय दो इन्सानोंको इस प्रकार एक-दूसरेसे जकड़कर रोते देख वह भी उच्छ्वसित हो उठी। हाथकी चीजें चट भेजपर रखकर कमरेसे बाहर हो गई।

कुछ देर बाद वह फिर कमरेमें आई। रहीम और राजन तब तक शान्त होकर अलग-अलग बैठे हुए थे। राजनने रजियाकी ओर देखा। उसकी बड़ी-बड़ी खूबसूरत आँखोंकी भीगी पलकें, गोरे सुन्दर मुखड़ेपर सद्यः रुदनकी लाली देखकर राजन पुनः विचलित हो उठा। भरे गलेसे बोला—“तुम क्यों रो रही थीं भाभी ?”

और रजिया जरा दूसरी ओर मुँह करके भरे गलेसे बोली—“और तुम क्यों रो रहे थे भैया ?”

आँखें पुनः एक बार चुन्नीके छोरसे पोंछकर, गला साफकर अब राजनकी ओर मुँह करके वह बोली—“अच्छा, अब बस करो ! कुछ खा-पी लेते-जाओ !”

राजनने कहा—“मैं तो अभी-अभी चाय पीके आ रहा हूँ भाभी !”

“जानती हूँ।”—रजिया मुस्कुराकर जरा व्यंग्यके स्वरमें बोली—“लालाके घर पी होगी। अभीरोंकी चाय ठहरी। हम गरीब अभीरोंकी चाय कहाँसे लायें ? अगर तुम.....”

“बस करो भाभी !”—राजनने रोकते हुए कहा—“अगर ऐसी बात जवानसे निकाली तो.....”

“तो फिर भाग जाओगे। फिर हम लोगों पर नाराज होकर।... यही न ?”

राजन शरमा गया। चेहरे पर सुखी उभर आई। बोला—“अपने कसूरकी मुझे काफी सजा मिल चुकी है ! अब बस करो !..... इन गरीबोंसे मुझे जो कुछ मिला, जो कुछ मिल रहा है.....”

राजनका गला गीला बन गया। धरे स्वरमें बोला—“भाभी, जिसके माँ नहीं, बाप नहीं, भाई नहीं, बहन नहीं, उन सबकी जगह लेकर इस अभागे बदनसीबके मरे दिलको जिन्दा बनानेवाले तुम गरीबोंको, तुम दिलके शाहन्शाहोंको इन्सानी दुनियाका मैं शाहन्शाह समझता हूँ भाभी !”—कहते-कहते कृतज्ञताके उठते उफानोंसे हृदय उसका आन्दोलित हो उठा—“मैं अपने इन गरीबोंपर संसारके सारे अमीरोंको बारूँ भाभी !”

रजिया कुछ शरमा गई, लेकिन हृदय उसका एक अभिनव स्नेहके उफानसे अभिभूत हो उठा। वह जरा दबे स्वरमें बोली—“अच्छा, अब खाओ ! बातें न बनाओ ?”

“मैं बातें बना रहा हूँ भाभी ?”

रजिया उसका चेहरा देख हँस पड़ी और साथ ही उसकी आँखोंसे स्नेहके दो बूँद भी लुढ़क पड़े। मुस्कुराती हुई जरा बल देकर बोली—“नहीं, भैया मेरे ! कैसे तुम्हें यकीन दिलाऊँ कि तुम सच बोल रहे हो ?.....अच्छा, अब कुछ खाओ ! नहीं खाओगे तो तुम्हारे भाई साहबकी भूख-हड़ताल कैसे टूटेगी ? मैं तो तंग आ गई हूँ तुम दोनों से। अच्छा, नहीं खाते हो तो मैं चली। जैसा जीमें आवे करो !”—कहकर वह दरवाजेकी ओर बढ़ चली।

राजन चट आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़कर खींचते हुए बोला—“अब नहीं भाभी ! लो, यह खाता हूँ। लेकिन तुम्हें भी साथ देना पड़ेगा। और अम्मीको भी बुला लो ! सब जने साथ खायेंगे।”

“हमारे लिये तन्दूरकी रोटी और शलगम-प्याजकी भाजी भरी रखी है। हम खा लेंगे। अभी तुम दोनों खाओ !”

“उस तन्दूरकी रोटी और भाजीको आज मैं भी खाऊँगा।”

“तुम खाओगे हमारे हाथकी रोटी और भाजी ?”—रजिया अचरजसे आँखें फाड़कर बोली—“जात-धरमका ख्याल नहीं तुम्हें ?”

राजन ठठाकर हँस पड़ा—“इस जात-धरमको तो मैंने कबका तलाक दे रखा है भाभी ! लेकिन तुम दोनों जबरन मुझे जात-धरमसे चिपकाये रखना चाहती हो ! बार-बार कहता हूँ, आर्जू करता हूँ, भाभी, तुम्हारे ही हाथकी रोटी खाऊँगा, मगर तुम हो कि मुझपर रहम नहीं करती ! आखिर क्यों ? यही न, कि मैं हिन्दू बना रहूँ और हिन्दू बना रहकर ही तुम्हारा भाई, तुम्हारा देवर बना रहूँ ? तुम सोचती हो कि तुम्हारे हाथकी रोटी खानेसे मेरी जात चली जायगी, धरम चला जायगा। अपने भाईके जात-धरमका तुम्हें इतना मोह है, लेकिन यह नहीं जानती कि इससे तुम्हारे भाईको कितनी तकलीफ पहुँचती है ? भाभी, जो जात-धरम किसी भी शकलमें मुझे तुम लोगोसे जुदा रखे मैं उसे कतई माननेको तैयार नहीं !”

रजिया उसके मंतव्यको खंडित करते हुए बोली—“इतने दिन हमारी रोटी न खाकर भी क्या तुम हमसे जुदा थे ? मैं तो अधिक कुछ नहीं जानती भैया, लेकिन इतना जरूर जानती हूँ कि दिलका मिलाप ही सबसे बड़ा मिलाप है, रोटीका मिलाप नहीं। सैकड़ों-हजारों कोस दूर रहकर भी, दिलकी सच्ची मुहब्बत हमें पास रख सकती है, मगर बिल्कुल पास रहकर भी, एक थालमें रोटी खाकर भी हम एक-दूसरेसे जुदा रहते हैं अगर हमारे दिल जुदे हों। भैया मेरे ! तुम्हारे भाई साहबके साथ तुम्हारे मुल्क में लगातार आठ-नौ साल रह चुकी हूँ। वहाँके बन्दे देखे। मुसलमानोंकी तादाद वहाँ दालमें नमकके बराबर है। गाँवके लोग सब भोले-भाले। हिन्दूमुसलमानोंका

छुआ नहीं खाते, मगर कितना मेल है उनमें ? इमाम साहबके ताजियेमें क्या हिन्दू क्या मुसलमान सब साथ शामिल होते हैं। हिन्दुओंके बच्चे ताजियेमें अपने हाथसे कागज साटते हैं। हिन्दू औरतें ताजियेपर तिलचोरी चढ़ाती हैं, मुरादोंकी मन्नत मानती हैं। और मुसलमान भी हिन्दुओंकी कथामें जाकर परसाद खाते हैं। मगर एक मजहबके माननेवाले और एक थालमें खानेवाले मुसलमान भी आपसमें खून-खुनामा कर छोड़ते हैं। शिया-सुन्नियोंका भगड़ा में तुम्हारे ही मुल्कमें रहते वक्त देख चुकी हैं। फिर तुम्हारा यह कहना कितना गलत है कि हमारी रोटी न खाकर तुम हमसे जुदा हो जाओगे ?”

इस अपढ़-गँवार नारीके मुखसे इतने सीधे-सादे शब्दोंमें इस अकाट्य सत्यको सुनकर राजनको बड़ा आश्चर्य हुआ ! वह समझे हुए था कि रजिया क्या जाने इन सब बातोंको ? वह अपने सरल-शुद्ध हृदयसे केवल सरल-शुद्ध स्नेह ही दान कर सकती है। उसमें अन्य बातोंको समझने अथवा सत्यको इतनी सरलतासे विश्लेषित करनेकी शक्ति कहाँसे आ पायेगी ?

राजनने आश्चर्यभरे स्नेहके स्वरमें पूछा—“तुम भी यह सब जानती हो भाभी ?”

“क्यों ?”—रजिया अपनी बड़ी-बड़ी आँखों और पतले सूखे ओठोंपर जरा मुस्कुराकर बोली—“यह कौन-सी बड़ी बात है भैया ? क्या इसके लिए भी मदरसेमें जानेकी जरूरत है ? क्या पढ़े-लिखे लोग ही सब कुछ जानते हैं, सब कुछ समझते हैं ?”

“नहीं भाभी, यह बहुत बड़ी बात है। अफसोस, कि पढ़े-लिखे लोगोंमें बहुत कम इसे जानते हैं, बहुत कम इसे समझते हैं। या जानकर और समझकर भी नहीं जानते या नहीं समझते। बल्कि इन पढ़े-लिखे लोगोंने ही इस सचाईके खिलाफ जेहाद छेड़ रक्खा है। इन्सानको इन्सानसे अलग करनेका अपना पेशा बना रखा है।”

“रखने दो भैया ! अपन तो जानते हैं, सभी अल्लाके बन्दे हैं । दिल भी यही कहता है । शायद इन मदरसोंकी किताबोंमें अल्ला और दिलकी बातें नहीं लिखी होतीं ? इसीसे हमारे मौलवी-मुल्ले हिन्दुओंको काफिर कहकर उनके खिलाफ नफरत पैदा करते हैं, और तुम्हारे अरिया समाजवाले भी तो यही करते हैं ?”

“करते हैं भाभी, जरूर करते हैं ! और लगता है कि जिस जहरको ये लोग फैला रहे हैं, वह एक दिन जरूर हमारा सत्यानाश कर देगा !”

“अल्लाका खैर मनाओ भैया ! हम सब उसीके बन्दे हैं । जो अल्लाके बन्दोंको उसके बन्दोंके खिलाफ उभाड़ता है, वही काफिर है, वही पापी है ! धरम-मजहबसे परे भी एक सचाई है उसे तुम्हींको देखकर समझ पाई थी भैया ! नहीं तो तुम हिन्दू और हम मुसलमान, तुम बनारसी और हम पठान, फिर भी लगता है कि दुनियामें तुमसे सगा, तुमसे अपना हमारा कोई नहीं । अगर एक दिन भी न देख पाऊँ, कलेजा फटने लगता है !”—कहते-कहते रजियाकी आँखें भर आईं । भरे स्वरमें बोली—“यही देखो, रूठकर कहा कि अब नहीं आऊँगा । और सिर्फ दो ही दिन नहीं आये । लगता था, क्या हो जायगा ! एक तो पहलेसे ही मरीज । तुम्हारे भाई साहबने पंथ-पानी तक छोड़ दिया ! कहो, अब इस सचाईको साबित करनेके लिए और कौन-सा सबूत ढूँढ़ना पड़ेगा ?”

राजनको लगा कि वह एकाएक किस स्वर्गीय साम्राज्यमें आ पहुँचा ? इस अपढ़-गँवार भिन्न-धर्मीय महिलाके मुखसे इन हार्दिक उद्गारोंको सुन-सुनकर उसका मन उल्लसित हो रहा था । उसका हृदय बोल उठा—“काश, यदि सारी दुनिया इन्हीं दिलोंसे भरी होती ! अक्षर-ज्ञान-शून्य इस महिलाके सीधे-सादे शब्दोंसे अखंड सत्यकी जो ज्योति छिटक रही है, उसी सत्यको समझने और उसपर चलनेमें पढ़े-लिखे लोग कितनी गलती, कितना प्रमाद कर बैठते हैं !”

अब राजन कुछ क्षमापनके स्वरमें बोला—“मुझे माफ करना भाभी ! बड़ा गुनाह हो गया मुझसे ! अपने कमीनेपनसे तुम लोगोंको बड़ी तकलीफ पहुँचा दी !”

राजनकी पलकोंमें पानी आ गया ! अब वह रहीमखानसे हाथ जोड़कर बोला—“भैया, अब तो अपना रोजा तोड़िये ! ज्यादा शमिदान कीजिये !”—कहकर उमने सरदाका एक टुकड़ा अपने मुँहमें डाल लिया ।

रहीम खानने भी चुपचाप पारणा आरम्भ की ।

अब राजन रजियासे आग्रह-पूर्वक बोला—“भाभी, अब तुम भी रोजा तोड़ो ! उठो यहाँसे !”—कहकर हाथ पकड़कर उसे मोटेपरसे उठाने लगा ।

रजिया अपना हाथ छुड़ाकर मुस्कुराती हुई बोली—“रखो ये नखरे अपने । उन्हें तो खा लेने दो । श्रीरतोंकी जात मरदों जितनी भुक्खड़ नहीं होती ।”

रहीम खान कुछ ऊपरी रखाइसे बोले—“क्या मैं तेरे हाथसे या तेरे मुँहसे खा रहा हूँ जो तू भी यहाँ बैठी रहे ? जा राजू, ले जा इसे बावर्चीखानेमें !”

रजियाने जवाब दिया—“अच्छा, खाओ ! बातें न बनाओ ! मैं दतनी भूखी नहीं हूँ । अम्मीको परोस आई हूँ खाना । बनारसी अब मदरमेसे आ ही रहा होगा । उसीके साथ खाऊँगी ।”

इतनेमें एक सात-आठसाला गोरा-चिट्ठा, बड़ी-बड़ी काली आँखों-वाला लड़का एक हाथमें पाटी और दावात तथा दूसरे हाथसे बगलमें बस्ता दबाये वहाँ आ पहुँचा । आँगनमें पैर रखते ही दूरसे ही बोला—“अम्मी ! चाचाजीके घर भी गया था, मगर मिले नहीं । कहाँ गये चाचाजी ?”—कहता हुआ कमरेके द्वारपर आ पहुँचा ।

रजिया वहाँ बैठी मुस्कुरा रही थी । अन्दर कमरेमें कदम रखते ही लड़केने ज्यों ही राजनको खाटपर बैठे देखा, झट पाटी, दावात

और बस्ता रजियाकी गोदमें फेंक, उछलकर राजनकी गोदमें जा बैठा। अपने नन्हे-नन्हे हाथोंसे कसकर उसकी गर्दन पकड़कर—
“तुम बड़े बुरे हो चाचाजी !”—कहकर उसकी छातीमें मुँह छिपा लिया।

राजनने भी बच्चेको छातीसे जकड़कर उसके सुन्दर मुखड़ेको उठाकर चूम लिया। फिर मुस्कुराकर बोला—“हाँ भई बनारसी खान ! बड़ा बुरा है तेरा चाचा ! बेच दे किसी पठानके हाथ इस बुरे चाचेको !”

बनारसी उसकी गर्दन पकड़े ही अपने अंगोंको हिलाता हुआ बोला—“नहीं बेचूँगा, नहीं बेचूँगा ! मेरा चाचा बड़ा अच्छा है !”—और कहकर फिर उसकी छातीमें छिप गया।

रहीम खानका फलाहार अब समाप्त हो चुका था। बीमारीके कारण कुछ दिनसे रोटी, दाल, भाजी और गोश्त आदि गुरु-पाकी भोजनसे वे परहेज कर रहे थे। रुमालसे हाथ-मुँह पोंछते हुए रजियासे बोले—“अब जा ! देर न कर !”

राजनने कहा—“आज मैं भी यहीं रोटी खाऊँगा। चलो भाभी, मैं और बनारसी आज साथ खायेंगे। क्यों बेटा बनारसी, ठीक है न ?”

बनारसी क्षणभर अचरजभरी आँखोंसे उसे देखकर फिर एकाएक खुशीमें उछलकर बोला—“मैं चाचाजीके साथ खाऊँगा रोटी ! मैं चाचाजीके साथ खाऊँगा !”

रजियाने डाँटकर कहा—“चुप ! चाचाजी तेरी रोटी खायेंगे रे ?”

बनारसी जरा अप्रतिभ हो गया। उसने पूछा—“क्यों अम्मी, क्यों नहीं खायेंगे ?”

रजियाके कुछ जवाब देनेसे पहले ही राजन फट बोल पड़ा—
“जरूर खाऊँगा बनारसी ! तेरे ही साथ रोटी खाऊँगा ! अम्मी तेरी

झूठ बोल रही है।" फिर जेबसे एक रुपया निकालकर उसके हाथ थमाते हुए—“जा तो बेटा, मिठाई तो खरीद ले आ रुपयेकी ? हम सब मिलके मिठाई खायेंगे आज !”

बनारसी रुपया लेकर खुशीमें उछलता पलक मारते अदृश्य हो गया।

अब राजन रजियासे जरा गम्भीर होकर बोला—“तुम कितनी बड़ी गलती अभी करने जा रही थीं भाभी ?”

“कैसी गलती भैया ?”—रजिया जरा अकचकाकर बोली।

“यही कि, तुम उस बच्चेसे अभी कहने जा रही थीं कि चाचा तेरी रोटी नहीं खायेंगे। क्योंकि वे हिन्दू हैं, तुम मुसलमान हो।”

“तो बुरा क्या हो जाता ?”

“बहुत बुरा हो जाता ! क्या यह कम बुरा होता कि इस बच्चेको तुम मुझसे छीन लेतीं ?”

“रजियाकी समझमें कुछ नहीं आ रहा था। वह राजनकी बातपर दंग रह गई ! अचरज-भरे स्वरमें बोली—“छीन कैसे लेती भैया ?”

“ऐसे भाभी, कि ज्यों ही यह बच्चा समझता कि मैं यहाँकी रोटी इसलिये नहीं खाता कि मैं हिन्दू हूँ और तुम लोग मुसलमान, इसके दिलमें अभीसे अलगावके अंकुर पैदा होने लगते। बच्चोंमें किसी नई चीजको गहराईके साथ समझनेकी कुदरती हरकत होती है। उसके दिलमें अभीसे जो बात जड़ जमाने लगेगी, उसका मिटना मुश्किल हो जायगा। और इस अलगावके जहरीले बीज फैलानेवालोंकी न हिन्दुओंमें कमी है, न मुसलमानोंमें। फिर तुम्हीं बताओ भाभी, कि यह कितना बुरा होता ? मेरा प्यारा बच्चा मुझसे छिन नहीं जाता ?”

उसकी बात सुनकर दोनों चुप रहे—रजिया भी, रहीम खान भी।

राजनने फिर कहा—“अब मेरे सामने यहाँ रोटी खाने-न-खानेका सवाल नहीं, सवाल है बनारसीको खोने-न-खोने का। और यह मैं किसी

भी सूरतमें वर्दाश्त नहीं करनेका कि मेरा बनारसी मुझसे खो जाय !”

“राजू !”—प्रब रहीम खान आहिस्तेसे बोले—“अल्ला जानता है इस दिलको कि तुम हमारे लिए क्या हो ?”—एकाएक उनकी आँखें भर आई—“फिर भी, तुम्हें अपनी रोटी खिलानेसे परहेज रखनेका ‘मकसद मेरा यह था कि मैं उन मुसलमान लीडरोके मुँहपर जूते मारूँ,”—कहते-कहते उस मरीजके स्वरमें सहसा आग उबल उठी—“कि जो यह कहकर हिन्दू-मुसलमानको एक-दूसरेसे अलग रखना चाहते हैं, उनमें फूट डालना चाहते हैं, कि चूँकि हिन्दू हमारा छुआ नहीं खाते, हमसे रोटी-बेटी नहीं करते, इसलिए उनसे हमारा इन्तजाम अलग होना चाहिए, हमारा सब कुछ अलग होना चाहिए । लेकिन कौन बताये इन शैतानोंको, कि अग्ने हरामजादे, अग्ने बेदीन, जरा अकल और ईमानका साथ करके सोच तो, कि एक ही मजहबके होकर भी, अपनेको मुसलमान कहकर भी, ये शिया-मुन्नी क्यों आपसमें लड़ते हैं ? ये युरपके कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट एक उयी ईसामसीहको मानकर भी, क्यों एक-दूसरेके खूनकी होली खेलते रहे और अब भी खेल रहे हैं ? जर्मन और अंग्रेज एक ही प्रोटेस्टेंट फिरकाको मानते हुए भी क्यों एक-दूसरेके जान-मालपर हावी होकर खूनकी नदियाँ बहाई और अब भी बहानेकी सोच रहे हैं ? ये लोग एक-दूसरेका छुआ भी खाते हैं, रोटी-बेटीका रिश्ता भी रखते हैं, एक ही मजहबको मानते भी हैं, फिर भी तो एक नहीं हो सके ? और उयी युरपके स्विटजरलैंडमें अलग-अलग नस्लोंके लोग एक झंडेके नीचे बड़े अमन और मुहब्बतसे रह रहे हैं । लेहाजा, मजहबकी बुनियादपर या उसकी आड़ लेकर इस तरहकी बेहदा बातें कहनेवालोंपर गुस्सा भी आता है, तरस भी । सचाई तो यह है कि, यह अंग्रेजोंकी—इन फिरंगियोंकी हिन्दुस्तानमें हमेशा बने रहनेकी, हिन्दुस्तानको कमजोर करनेकी चाल है । ये अंग्रेज इस तरहकी बेहदा बातें करनेवालोंको हर साल खानबहादुर, रायबहादुर, सरदारबहादुर, नवाब और नवाबजादा वगैरहके ओहदे दे-देक

इनकी तादाद बढ़ाते जा रहे हैं ! और इस तरह अपनी हुकूमतकी जड़ मजबूत करते जा रहे हैं !”

कहते-कहते रहीम खान हाँफने लगे । थककर फिर बिछीनेपर लेट गये । सारा बदन पसीनासे तर-बतर हो गया ।

राजन भट उनके सिरहाने बैठकर पंखा झलने लगा और रजिया घबड़ाहटभरी आँखोंसे उन्हें देखने लगी ।

राजन रजियाकी घबड़ाहट दूर करते हुए बोला—“कुछ नहीं भाभी ! कमजोरीमें जरा जोशमें आकर बोल गये । उसीकी हारारत है । अभी ठीक हो जाता है ।”

इतनेमें बनारसी भी मिठाईकी भरी पोटली लिए उछलता-कूदता और दौड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा । हाँपता हुआ बोला—“लो चाचाजी, ले आया मिठाई ! चलो, बैठके खायें !”

लेकिन खाटपर अपने पिताको उस स्थितिमें पड़ा देख वह एका-एक अप्रतिभ हो गया । वह भी घबड़ाहटकी आँखोंसे उन्हें देखने लगा ।

राजन उस बच्चेके भय-विचलित चेहरेपर पसीजकर बोला—“अम्मीको दे दो मिठाई बेटा ! अभी चलता हूँ खाने । जरा अम्माको नींद आ जाय ।”

रहीम खान अब तक बहुत कुछ स्वस्थ हो चुके थे । आहिस्तेसे बोले—“जाओ राजू ! तुम लोग खाते जाओ ! अब मैं ठीक हूँ ।”

सुनकर रजिया भी आश्वस्त हो गई, बनारसी भी । सभी रसोई-घरकी तरफ चल पड़े ।



[५]

सब सन्ध्याके लगभग पाँच बजे थे । राजन रहीम खानके घरसे निकलकर विचारोंमें डूबा हुआ जा रहा था । यद्यपि छुआछूतके संस्कारको वह कबका तलाक दे चुका था, किन्तु अपनी मुक्त-संस्कारताको कार्यतः परिणत करनेका यह पहला ही अवसर था । इसे भी वह कबका कर चुका होता यदि रहीम खान इसमें बाधक न बने होते । इस पठान-परिवारके अकृत्रिम स्नेहके अधीन राजनका मन कभी उनकी इच्छाके विरुद्ध जानेका साहस न करता । सो आज, अपनी भिन्न-धर्मीय भिन्न-रक्तीय स्नेहमयी भाभीके हाथकी रोटी खाकर परम्पराकी रूढ़िसे वह मुक्त हो गया । उसका मन अनिर्वचनीयतामें खोकर उसे कहाँ ले जा रहा था उसे स्वयं भी पता न था । आज उस कच्छी मुहल्लेकी गलीमें पठानोंके देहाती होटलोंके आगे भेंस और ऊँटके लटकते मांसके लोथड़ोंपर करोड़ों मक्खियोंकी चिपटी कतारें, और नीचे कच्चे-पके मांस और कवाबके ढेरपर भनभनाती मक्खियोंके झुंड उड़ानेमें व्यस्त पठानोंके चंचल गन्दे हाथोंको देखकर भी वह देख नहीं पा रहा था । मांस-कवाबकी चिरोनी दुर्गन्ध आज उसे मुँह-नाकपर रूमाल डालनेको बाध्य नहीं कर रही थी । गाढ़े खट्टरकी सिलवारों, मैले कुर्तों और मैले साफ़ोंमें सजे हुए; चेहरेपर मस्त-मौला-पनका भाव लिये हुए; मानव सभ्यताके आदिम अवशेषोंसे अब भी बड़े चावसे चिपके हुए फटेहाल पठान, आज उसके दिल-दिमाग-को आन्दोलित नहीं कर पा रहे थे । सद्यः सन्तोष और आनन्दके आधिक्यसे मन उसका जड़ीभूत हो गया था । वह चुपचाप धीरे-धीरे जा रहा था कि अचानक 'नमस्ते मास्टरजी !' इस अभिवादनसे चौंककर देखा, तो सामने राधा और काशीनाथ मुस्कुराते खड़े थे ।

“कहो जी जोगीराज !”—काशीनाथने मीठी चुटकी लेते हुए कहा—“आज तो बड़ी गहरी समाधि लगी थी ? भले आदमी, इस समाधिके लिए तो तुम्हारी वह अकेली निराली कोठरी ही ठीक है ? कम-से-कम बाट-घाटको तो समाधिका पाठ न पढ़ाया करो !”

राजन अब तक सम्हल चुका था। बोला—“इस नेक सलाहके लिए अपने नेक साथीको धन्यवाद !” फिर जरा मुस्कुराकर—“यह युगल जोड़ी आज इधर कैसे चल पड़ी ?”

राधाके चेहरेपर मुस्कुराहटके साथ एक हल्की लाली उभर आई। वह चुप रही।

काशीनाथने फिर कहा—“भले आदमी, यह तो भला कच्ची सड़क है। ताँगों और कारोंकी आमदरफ्त इधरसे कम होती है। अगर इस प्रकार सदरकी पक्की सड़कोंपर समाधि लगने लगे तो सीधे यमराजके खातेमें ही नाम लिख जाय। पिछले महीने बाल-बाल ही तो बचे थे ?”

राजनने मुस्कुराकर जवाब दिया—“मेरे सच्चे साथियोंकी तादाद बनी रहे, फिर यमराजके बही-खाते धरे ही रह जायेंगे।”

काशीनाथने कहा—“सोचा, बहुत दिन हो गये पंचतीर्थीको देखे। सो आज इधर ही चल पड़े।”

राजनने देखा, वह सचमुच पंचतीर्थीके बगलवाली सड़कपर खड़ा है। उसने भी कहा—“चलो !”

इस पठानपुरी पेशावरके एक बगलमें यह पंचतीर्थी अपने विन्यास और बनावटमें किसी भी प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थकी याद दिला देती। इसकी परिधिमें प्रविष्ट होते ही यह भूल जाते कि हम भारतकी इस सुदूर पश्चिमोत्तर सीमाके पठान-प्रदेशमें हैं। विभिन्न सम्प्रदायके साधुओंका जमघट; अन्य हिन्दू तीर्थोंकी तरह यहाँ भी फटे चीथड़ोंमें लिपटे हिन्दू भिखमंगोंकी टोलियाँ; यहाँ भी तुलसीदासी रामायणका रंग जमा हुआ। वहाँ उस वक्त भी भिखमंगे अपने पाकशास्त्रके प्रयोगसे

घातावरणको धूमिल बना रहे थे ।

पंचतीर्थोंके पाँच कुण्डोंको कोई सीता, राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नके नामपर बताते और कोई पाँचों पाण्डवोंके नामपर । जो भी हो, इन कुण्डोंमेंसे अधिकतर छोटे तालावों और बावड़ियोंकी शक्लके हैं, गन्दे पानीसे भरे हुए । किन्तु एक कुण्ड रूपसे भी कुण्ड जैसा ही, सदा स्वच्छ जलसे लबालब भरा हुआ । कहते हैं कि अर्जुनने अपने तीरसे पाताल छेदकर यहाँ पानी निकाला था । इसके सबूतमें कुण्डकी पेंदीमें नीचेसे निरन्तर निकलती जल-राशिकी ओर सकेत कर दिया जाता । और कुछ लोग इसका सम्बन्ध सीताके पातिव्रत्यके माहात्म्यसे भी जोड़ा करते । किन्तु जो भी हो, आधुनिक संस्कारके व्यक्तियोंका मन भी इसी कुण्डपर रमता । वे उसका पानी पीते; शीष्म ऋतुमें चुभक-चुभककर शीतल स्नानका आनन्द लेते । सो, काशीनाथ, राधा और राजन अन्य कुण्डोंकी उपेक्षा करते सीधे वही जा पहुँचे । यद्यपि भूख ज्यादा न थी, किन्तु जलपानका अनुपान साथ लेते गये थे, कुछ भीठे और नमकीन । हाथ-मुँह धोकर एक साफ जगह देखकर तीनों जने जा विराजे ।

राधाने रुमाल खोल दी । अलग-अलग हिस्सा न लगाकर समूहसे ही समूहको खाना था । राजनने नमकीनका एक जरा-सा टुकड़ा मुँहमें रखते हुए कहा—“आज मैं पूरी तरह साथ न दे सकूँगा । पेटमें रत्तीभर भी जगह नहीं ।”

“नसरे मत करो !”—काशीनाथने कहा—“पेटमें जगह बनानेसे बनती है ।”

“आज बनानेसे भी नहीं बनेगी ।”

“क्यों ? कहीं माल-वाल छके हो क्या ?

“हाँ मित्र ! आज जो माल छका हूँ जीवनमें कभी छका न था । उसीकी तृप्ति आज अंग-अंगमें, मनके कोने-कोनेमें व्यापी हुई है।”—कहते-कहते उसके काले-कलूटे चेहरेपर परितृप्ति और आनन्दकी

आभा उभर आई ।

राधा उसे आश्चर्य-चकित आँखोंमें देखने लगी और काशीनाथ बर्फिका एक टुकड़ा मुँहमें डालकर उसकी खिल्ली उड़ाते हुए बोला—
“तभी आज इतनी गहरी समाधि लगी थी न ?” हाँ, तो यह कौनसी तृप्ति है भाई ? क्या हमें उसका हिस्सा नहीं मिलेगा ? यह मित्रोंका काम नहीं कि अकेले ही मजे लूटो ।”

“जरूर मिलेगा मित्र ! मिलकर मजे लूटो !”

“लुटाओ भी तो ?”—फिर जरा रुककर—“बेईमान, मेरा इन्त-जार तक नहीं किया आज तुमने, और भाग निकले कहींकी एक बुर्का-पोश बुढ़ियाके साथ ? वह कौन थी बुढ़िया, जी ?”

“मेरी माँ ! मेरी अम्मी !”

मुनकर काशीनाथ जरा अप्रतिभ हो गया । उसका परिहास-तरल चेहरा एकाएक प्रशान्त बन गया । किन्तु राधाके मनमें आश्चर्य और उत्सुकताका बवडर उठ खड़ा हुआ ! हाथमें अधखाये समोशेका टुकड़ा लिये अपनी बड़ी-बड़ी आँखें फैलाकर राजनको ताकने लगी ।

“आपकी माँ ?”—आश्चर्यभरे स्वरमें वह बोली—“वह तो मुसल-मान थी मास्टरजी ?”

“हाँ राधा, वह मुसलमान थी ! सच्चा मुसलमान !”

“तो क्या आप भी ?” कहते-कहते वह रुक गई ।

राजन ठठाकर हँस पड़ा । मुस्कुराता हुआ बोला—“हाँ राधा, मैं भी मुसलमान हूँ !”

राधा दंग रह गई ! उसी प्रकार आश्चर्य-विजड़ित आँखोंसे देखती रह गई ?”

राजन फिर हँसा । हँसता हुआ बोला—“सब भ्रष्ट हो गया राधा ! तुम्हारा सब कुछ खराब कर दिया । इतने दिन साथ खाता रहा । तुम्हारी जाति ले ली, धर्म ले लिया । तोबा तोबा !”—कहकर

उसने दोनों हाथसे अपने दोनों कान पकड़ लिये ।

राजनका यह अभिनय देख काशीनाथ भी ठठाकर हँस पड़ा ।

राधा जरा सम्हलकर, फिर भी घबड़ाहटभरे स्वरमे बोली—
“नहीं नहीं, ऐसा नहीं मास्टरजी !”

“तो कैसा राधा ?”

“कुछ नहीं ! लेकिन आप मुसलमान तो नहीं है ? ऐसा लगता तो नहीं है ?”

“और यदि मुसलमान होऊँ ?”

राधा चुप रही ।

“तो नफरत करोगी ? परहेज करोगी ?”

“नहीं नहीं ! ऐसा नहीं !”

“तो फिर कैसा ? बताओ न । डर क्यों गई ? घबड़ा क्यों गई ?”

“नहीं, डरी तो नहीं ! घबड़ाई तो नहीं ! यों ही जरा.....”

पठानोंके प्रदेशमे पैदा होकर भी, दिन-रात उनसे घिरे रहकर भी अपने परम्परागत संस्कारोंसे अभी राधा मुक्त कहाँ हो पाई थी । मुसलमान म्लेच्छ होते हैं ; अछूत होते हैं; उनका छुआ खानेमे जाति चली जाती है; धर्म चला जाता है; और यह जाति-धर्म ही सुरक्षित रहकर इहलोक-परलोकमें मनुष्यकी रक्षा करता है; प्राण भले ही जाय, पर धर्म न जाय इत्यादि बद्धमूल संस्कारोंके बलपर ही तो मुठ्ठीभर हिन्दू उस मुस्लिम-बहुल पठान-प्रदेशमें अपना पृथक् अस्तित्व आज तक कायम रखे हुए थे । और इन धार्मिक संस्कारोंके आधार-पर ही तो आज हिन्दुस्तानके दो टुकड़े हो गये । और इन्हीं संस्कारोंके बलपर ही तो लाखों हिन्दू-मुसलमान आपसमें कट मरे; बाप-दादोंकी डीहसे उजड़कर दर-दरकी खाक छाननेपर मजबूर हो गये; सब कुछकी तिलांजलि दे दी, किन्तु अपने धर्म-गत एवं विश्वास-गत संस्कारोंकी तिलांजलि नहीं ही दी । और इसी प्रकारके संस्कारोंके बलपर ही

तो हजारों वर्षोंसे विश्वके कोने-कोनेमें उत्पीड़ित और तिरस्कृत होकर भी यहूदी जाति आज तक अपना पृथक् अस्तित्व कायम रख सकनेमें समर्थ हो सकी है। और इस प्रकारके संस्कार ही तो मनुष्य-मनुष्यमें अलगावके बीज बोते हैं। सो, उसका मास्टरजी भिन्न-धर्मी हैं, समान-धर्मी नहीं, इस आशंकासे ही राधा कुछ विचलित हो गई। अपने मनोभावोंको छिपानेकी चेष्टा करके भी छिपा न सकी।

“डरो मत राधा !”—राजनने मुस्कुराते हुए कहा—“मुझे भी हिन्दू ही कहते हैं। मेरे भैया-भाभी भी दिलसे यही चाहते हैं कि मैं सदा हिन्दू ही बना रहूँ। लेकिन आज मैंने उनकी एक भी न सुनी। अपनी भाभीके हाथकी साग-रोटी खा ही डाली। आज मैं मुसलमान भी बन गया राधा ! और उसीकी तृप्ति आज मेरे रोम-रोममें रम रही है। आज मैं बड़ा खुश हूँ भाई !”

अब राधा आश्वस्त हुई। उसके जी-में-जी आया। बोली—“तो इससे क्या हुआ ? मेरे भैया तो अक्सर अपने मुसलमान दोस्तोंके घर खा आते हैं। मुसलमानोंके घर खानेभरसे कोई थोड़े ही मुसलमान बन जाता है ?”

“तुम्हारे भैया खा आते हैं इसलिये।”—राजनने हँसकर जवाब दिया—“नहीं तो तुम भी मुसलमानोंके घर खानेवालोंको माफ नहीं कर सकती।”

“क्यों ?”

“तुम्हारी इस उदारतामें अपने प्यारे भैयाका मोह जो काम कर रहा है। चाचीजीको ही देखो। बिल्कुल पुराने विचारोंकी होकर भी अपने प्यारके इस पुतलेकी हर हरकत को सिवा माफ करनेके वे कर ही क्या सकती हैं ?” कहकर उसने काशीनाथकी ओर मुस्कुराती आँखोंसे देखा।

“वाह भाई !” काशीनाथने मानो झल्लाकर कहा—“तुम भी पूरे घपोंचू हो राजन ! लगे शास्त्रार्थ करने ! छोड़ो इन बाह्यात बातोंको।

थोड़ा-सा तो बच रहा है। आग्रो, हाथ बटाओ !”—कहकर बची मिठाईमें निबटनेमें वह लीन हो गया।

उसकी बातपर किसीने ध्यान नहीं दिया। अपने हाथके बचे समोशोंको समाप्त करके राधा बोली—“अच्छा मास्टरजी ! आपके ये भैया-भाभी हैं कौन ?”

“सच्चे मनुष्य, सच्चे इन्सान राधा ! और इस संसारमें मेरे सबसे नजदीकी, सबसे समीपी !”—कहते-कहते राजनके स्वरमें कुछ गीलापन आ गया।

“आपके सबसे नजदीकी ? सबसे समीपी ?”—राधा राजनके शब्द दुहराती हुई बोली—“लेकिन ये तो मुसलमान हैं न ?”

“क्या एक मुसलमान एक हिन्दूका समीपी नहीं बन सकता ? और एक हिन्दू एक मुसलमानका ?”

इनमें काशीनाथ बची-खुची मिठाई और नमकीनको चट करके हाथ भाड़ता हुआ उठ खड़ा हुआ और बोला—“हाँ भाई, तुम दोनों शास्त्रार्थ करो और मैं जरा शीघ्रसे निबटकर आता हूँ।”—कहकर कुण्डके किनारे जाकर उसने जी-भरकर पानी भिया और पुजारीसे लोटा लेकर पासके खेतकी ओर चलता बना।

राजन और राधाने उसकी ओर कोई खास ध्यान नहीं दिया। राधा चुपचाप राजनके मुँहकी ओर देखती रही।

राजनने फिर कहा—“इस मुस्लिम परिवारमें सबसे मेरा सम्पर्क शुरू हुआ, तभीसे मैं सोचने और समझने लगा हूँ राधा, कि किसी विशेष धर्म या विश्वासके घेरेमें रहकर भी सभी मनुष्य मनुष्य हैं। एक दूसरेके समीपी और आत्मीय बन सकते हैं बशर्ते कि उनका दिल बड़ा हो; उनके दिलमें धर्म या विश्वासकी कट्टरताके बजाय मानव-स्नेहका अस्तित्व हो !”

“लेकिन इन धार्मिक पुस्तकोंमें भी तो इन्हीं सब बातोंकी शिक्षा दी जाती है मास्टरजी ?”

“हाँ राधा, लगभग संसारका हर धर्म भाईचारा, प्रेम, सत्य, अहिंसा और करुणा आदि उत्तम तत्त्वोंका उपदेश देता है, पर ये सब आज तक उपदेश ही बने रहे । इस्लामने भाईचारेके नामपर जाने कितने निरीह इन्सानोंका खून बहाया; ईसाइयतने प्रेम-धर्म-प्रचारके नामपर मनुष्योंमें अप्रेमका बीजारोपण किया; और हिन्दू धर्म अहिंसा, सत्य और करुणाका उपदेश दे-देकर भी हिन्दुओंका हिंसा, असत्य और अकरुणासे निम्तार न कर सका ।”

राजनकी बातपर राधाको बड़ा आश्चर्य हुआ ! जीवनमें पहली बार ऐसी बातें सुनकर उसके कोमल श्रद्धालु हृदयको बड़ा धक्का लगा । कुछ रूखे स्वरमें वह बोली—“आप नास्तिक हैं मास्टर-जी, इसीसे ऐसी बातें करते हैं !”

राजन खिलखिलाकर हँस पड़ा । बोला—“हाँ राधा, इसीसे तो मैं नास्तिक हूँ । इसीसे तो इन पाखण्डके गढ़ोंके प्रति मेरा जरा भी विश्वास नहीं है ।”

राधा दंग रह गई ! आश्चर्यके स्वरमें बोली—“क्या कहते हैं आप ? क्या धर्म पाखण्डका गढ़ होता है ?”

“नहीं तो क्या ?” राजनने दृढ़ स्वरमें जवाब दिया—“मन, वचन और कर्मका समन्वय न होना ही पाखण्ड कहा जाता है, और चूँकि इन धार्मिक उपदेशों और धार्मिक आचरणोंका परस्पर समन्वय नहीं देखा जाता, अतः मेरे इस मन्तव्यपर न क्रुद्ध होनेकी जरूरत है न क्षुब्ध होनेकी !”

राजनकी दृढ़ मुद्रासे किशोरी राधा कुछ सहम गई ! वह चुपचाप आँखें फैलाये राजनको देखती रही ।

“हाँ राधा !” —राजनने इस बार मुस्कुराकर कहना आरम्भ किया—“जब तुम संसारके धार्मिक और राजनीतिक इतिहासोंको पढ़ोगी और मनन करोगी, तो बड़ी आसानीसे मेरे इस मन्तव्यका मतलब समझ जाओगी । संसारका कोई भी धर्म बिना राज्याश्रयके

फूला-फला ही नहीं। जिस धर्मके पीछे जितनी ही प्रबल राज्य-शक्ति रही, उसका प्रचार भी उतना ही व्यापक हुआ। और चूँकि संसारके हर धर्मके प्रचारमें राज्य और राजनीतिका हाथ रहा है, और चूँकि राज्य और राजनीतिका संचालन सदासे पाखण्डियोंके ही हाथ रहा है, अतः उनके बलपर फूलने-फलनेवाले धर्म पाखण्डके गढ़ नहीं तो क्या ?”

राधाके कोमल अपरिपक्व मस्तिष्क एवं हृदय राजनके इन कठोर तर्कोंके प्रहारसे तिलमिला उठे। वह क्रुद्ध होकर बोली—“कैसी बातें करते हैं मास्टरजी आप ? यदि धर्म पाखण्डके गढ़ हैं, तो उनके माननेवाले पाखण्डी हुए ? तो इस्लामके माननेवाले ये भोले-भाले पठान पाखण्डी हैं ?”

“नहीं राधा, ये तो कतई पाखण्डी नहीं। ये तो अनेक अर्थोंमें सच्चे इन्सान हैं।”

“तो फिर ?”

“तो फिर यही कि इनका धार्मिक विश्वास भी अन्ध-विश्वासके आधारपर ही टिका है। मेने तो धर्मके प्रचारकों और पुरस्कर्ताओंके बारेमें कहा है, सामान्य जनताके बारेमें नहीं !”

राधा कुछेक क्षण निगाहें नीची किये कुछ सोचती रही। फिर बोली—“किसी भी धर्मका महत्व या बढ़प्पन उसके माननेवालोंकी तादादके आधारपर आँका जाता है। और धर्मके माननेवालोंमें अधिकतर अन्ध-विश्वासी जन-समूह ही है। क्योंकि कोई भी धर्म सामान्य जनताका विश्वास और सहयोग पाकर ही आगे बढ़ता है। तो फिर जनताके धर्मको आप पाखण्डका गढ़ बता रहे हैं ?”

“हाँ राधा ! यह तो मैं पहले ही बता चुका हूँ कि कोई भी धर्म बिना राज्याश्रयके आगे नहीं बढ़ा। यदि किसी धर्मको सामान्य जनताका व्यापक विश्वास अथवा सहयोग प्राप्त हुआ है तो राज्यके प्रभावसे या राज-दंडके डरसे। दूर जानेकी जरूरत नहीं। हिन्दुस्तानमें

इस्लामके प्रचारका इतिहास तुम पढ़ चुकी हो । उसपर जरा गौर करो । यदि यहाँ इस्लामके प्रचारके लिये अरबसे कुछ मौलवी-मुल्ले ही आये होते, उस प्रचारके पीछे यदि यहाँ और संसारके शक्तिशाली इस्लामी राज्योंका हाथ न होता, तो क्या तुम सोच सकती हो कि हिन्दुस्तानमें इस्लाम इस तरह बढ़ पाता ? उसके अनुयायियोंकी संख्या करोड़ों तक पहुँच पाती ? और यदि सुदूर अतीतके धार्मिक इतिहासको देखो, तो क्या बौद्ध धर्मका इतना विश्व-व्यापी प्रचार हो पाता यदि उसके पीछे अशोक और कनिष्क जैसे प्रबल सम्राटोंका हाथ न होता ?”

राधाने यद्यपि भारतके प्राचीन इतिहासका अध्ययन नहीं किया था, किन्तु भारतवर्षमें मुस्लिम राज्य और धर्मका संक्षिप्त इतिहास वह पढ़ चुकी थी । सो, राजनके इस उत्तरसे वह निरुत्तर हो गई । कुछ देर सोचती रहनेके बाद इस बार जरा सहमे स्वरमें उसने पूछा—“यदि धर्म राज्य और राजाओंके बलपर ही आगे बढ़ता, फूलता और फलता है, तो मैं पूछ सकती हूँ कि मुस्लिम साम्राज्यके नष्ट होनेपर भी हिन्दुस्तानमें अब भी इस्लाम क्यों कायम है ? इस्लामी राज्यके समयमें भी क्यों यहाँ हिन्दू धर्म कायम रहा ? और आज अंग्रेजोंके राज्यमें ईसाई मतको जिस प्रकार बढ़ना चाहिये था, क्यों नहीं बढ़ पा रहा ?”

राधाके इस बारके तर्कसे राजन कुछ प्रभावित हुआ । वह बोला—“दीर्घकालीन मुस्लिम साम्राज्यके समयमें ही यहाँ इस्लामकी जड़ मजबूत हो चुकी थी राधा ! और एक बार किसी धर्मकी जड़ मजबूत हो जानेपर उसका मिटना आसान नहीं होता । अपने बाप-दादोंके वाह्यत धर्म-मतको भी कोई पढ़ा-लिखा समझदार भी ठुकरा सकनेमें अपनेको असमर्थ पाता है । फिर जिस अपढ़ जन-समाजके सदियोंके अन्ध-विश्वासके आधारपर ही जिस धर्मकी नींव जमी हो उसके अस्तित्वको मिटाना कैसे आसान हो सकता है ? और यही बात मुस्लिम राज्यके समयमें हिन्दू-धर्मके अस्तित्वके सम्बन्धमें भी कही

जा सकती है। रह गई आज अंग्रेजी राज्यमें ईसाई धर्मके धीमे प्रचारकी बात। सो इसमें भी कारण है। सन् १८५७ के गदरका इतिहास तुमने नहीं पढ़ा ? उस विद्रोहने अंग्रेजोंकी आँखें खोल दीं। उन्होंने समझ लिया कि यदि उन्हें हिन्दुस्तानपर हुकूमत करना है तो जनताके धार्मिक आचार-विचारोंमें हस्तक्षेपकी खुली नीतिसे उन्हें बाज आना ही पड़ेगा। अतः उन्होंने छिपे हस्तक्षेपकी नीति अपनाई। आज इस राज्य-शक्तिके छिपे एजेंटके रूपमें देशी-विदेशी ईसाई मिशनरी हिन्द-के पिछड़े इलाकोंमें अपने धर्म-मतका प्रचार करके ईसाइयोंकी संख्या नहीं बढ़ा रहे ? उन्हें राज्यकी ओरसे खुली या छिपी सहायता नहीं दी जा रही ?”

राजनके तर्कोंके थपड़े खा-खाकर राधाकी नजरोंमें सत्य मानो नंगा नाचने लगा। फिर भी उसे कुछ पूछने की इच्छा हुई, किन्तु वह चुप रही।

राजनने फिर कहा—“राधा ! भगवान बुद्धने अहिंसा और करुणाका उपदेश दिया; ईसामसीहने प्रेमका; हजरत मुहम्मदने भाई-चारेका; और गुरु नानकने भक्तिका। किन्तु इन समस्त धर्मोंके प्रचारके साधन उनके सिद्धांतोंके विपरीत ही रहे। सम्राट् अशोकको अहिंसाका अवतार कहा जाता है, किन्तु इससे कोई भी समझादर इन्कार नहीं कर सकता कि अहिंसावादी बौद्ध-धर्मके प्रचारके पीछे छिपी हिंसा-शक्ति भी काम कर रही थी। क्योंकि कोई भी साम्राज्य चाहे धार्मिक हो या अधार्मिक, उसे कायम रखनेके लिये सैन्य-शक्तिकी आवश्यकता होती ही है। और कोई भी इतिहास-वेत्ता इस तथ्यसे कैसे इनकार कर सकेगा कि अहिंसावादी अशोकका साम्राज्य भी शस्त्र-शक्तिसे रहित नहीं था ! और शस्त्र-शक्ति तथा हिंसाका अन्योन्याश्रय संबन्ध ठहरा। और यही बात ईसाइयत और इस्लामके प्रचारके संबन्धमें भी लागू होती है जहाँ धार्मिक इतिहासके पन्ने-पन्ने राजनीतिक खूनसे रंगे दीखते हैं।”

“लेकिन हिन्दू-धर्मके प्रचारके बारेमें तो यह बात लागू नहीं

होती मास्टरजी ?”

राजन हँस पड़ा। मुस्कराते हुए बोला—“पहले ही बता चुका हूँ राधा, कि संसारके किसी भी धर्मका व्यापक प्रचार विना हिंसा-शक्ति, विना राज्य-शक्तिके कभी हुआ ही नहीं ! फिर हिन्दू-धर्मका प्रचार ही कैसे इस नियमका अपवाद रह जायगा ?.....यह मानता हूँ कि हिन्दू-धर्म किसी व्यक्तिके नामके साथ जुड़ा हुआ धर्म नहीं है। इसके आद्य संस्थापकका निश्चित पता किसीको आज भी नहीं है। किन्तु समय-समयपर इस धर्मपर आए हुए हमलेको रोकनेके लिये जितनी वाक्-शक्ति और तर्क-शक्तिकी आवश्यकता पड़ी है, उतनी राज्य-शक्ति और शस्त्र-शक्तिकी भी। जब बौद्ध धर्म वैदिक धर्मपर छा गया, उसका अस्तित्व खतरोंमें पड़ गया, तो मौका देखकर ब्राह्मण पुण्यमित्रने अपने स्वामी बौद्ध राजा बृहद्रथकी हत्याकर ब्राह्मणधर्मके अस्तित्वकी रक्षा की और बादमें इसी ब्राह्मण-धर्मको जिसे वैदिक अथवा हिन्दू धर्म कहा जाता है, गुप्त सम्राटोंने अपने शस्त्र-बलसे आगे बढ़ाया। यदि शंकराचार्यने बौद्धधर्मका उसकी जन्म-धरतीसे उच्छेद किया तो उसमें उसी वाक्-शक्ति या तर्क-शक्तिके पीछे हिन्दू राजाओंकी शस्त्र-शक्ति भी काम कर ही रही थी राधा !”

राधा अब कुछ मुग्ध-सी, निरुत्तर-सी चुपचाप सुनती जा रही थी। और राजन कुछ आवेशमें आ गया था। वह बोलता गया—“दूर जानेकी जरूरत नहीं। गुरु नानकदेवने भक्तिको आश्रय लेकर सिक्ख-धर्मका प्रचार किया, और दसवें गुरु गोविन्दसिंहजीने इस भक्ति-प्रधान धर्मको शस्त्र-प्रधान धर्म बना दिया, जिसका परिणाम हुआ राजा रणजित सिंहके नेतृत्वमें पंजाबमें सिक्ख-राज्यकी स्थापना। और इस राज्य-शक्तिको सहारा पाकर पंजाबके सामान्य जन-समुदायमें सिक्ख धर्मका प्रचार भी खूब हुआ। लेकिन यही सिक्ख-धर्म सिक्ख-राज्यकी सीमा-से बाहर बिन्कुल समादर न पा सका। और सिक्ख-राज्यकी समाप्तिके साथ ही इस धर्मके प्रचारमें भी शिथिलता आ गई। इसलिये संदेहकी

कोई गुंजायश नहीं रह जाती राधा, कि संसारका कोई भी धर्म अपने मूल धार्मिक सिद्धान्तोंके आधारपर जनतामें समादर नहीं पा सका है, बल्कि उसके समादर और व्यापक प्रचारमें राजनीति और राज्य-शक्तिका ही सहारा रहा है। और चूँकि राजनीति और उसके आधारपर टिकी राज्य-शक्ति स्वार्थ, पाखंड और नृशंसताका गढ़ रही है, अतः इस स्वार्थ, पाखंड और नृशंसताके आधारपर फैलनेवाले धर्म-मतको मैं हृदयसे कतई माननेको तैयार नहीं हूँ राधा !”

यद्यपि राधाके ज्ञानकी सीमा अभी बहुत कुछ सीमित थी, तथापि इन तीन वर्षोंसे निरन्तर काशीनाथके सहवाससे वह राजनीतिक मत-मतान्तर और देश-विदेशकी परिस्थितियोंमें बहुत कुछ अवगत हो चुकी थी। राजनके चुन हो जानेपर उसे सहसा एक दलील सूझी, जिसके आधारपर अपने महापंडित मास्टरजीको पछाड़नेका मनसूबा वह बाँध बैठी।

प्रफुल्ल मनसे वह बोली—“सोवियत रूसमें हो रहे सामाजिक संगठनकी आप अवसर तारीफ किया करते हैं। भैया भी, आप भी। और आप मार्क्सके भक्त भी हैं। लेकिन रूसकी मार्क्सवादी क्रांतिमें कितना खून बहा, कितनी हत्याएँ हुईं यह शायद सभी जानते हैं। तो, उस रूसी क्रांतिके इतिहासके पन्ने क्या किसी धार्मिक इतिहासके पन्नोंसे कम रक्त-रंजित हैं मास्टरजी? मार्क्सवादी आदर्शका प्रचार भी शस्त्र-शक्ति और राज्य-शक्तिके सहारे ही नहीं हो रहा? फिर केवल धर्मके प्रति ही आपका यह आक्रोश क्यों? राज्य-शक्ति और राजनीतिके सहारे फैल रहे मार्क्सवादके प्रति भी क्यों नहीं?”

राधाके इन लच्छेदार प्रश्नोंसे राजन मन-ही-मन प्रभावित हुआ, प्रसन्न भी। उसे आशा न थी कि राधा अभी ऐसे तर्क पेश कर सकेगी। यद्यपि इस नव-तरुणीकी प्रतिभापर वह मन-ही-मन मुग्ध था। वह और भी मुग्ध होकर मुस्कुराकर बोला—“मानता हूँ राधारानी, तुम्हारी इस दलीलके जोरको। लेकिन जरा गहराईमें जाकर सोचने

और समझनेकी कोशिश तुमने नहीं की। संसारके ६५% मेहनत-कशोंकी कमाईपर संसारके ५% लोगोंकी हरामखोरी चलती है। शेष पंचानवे प्रतिशत लोगोंका जीवन भूख और भविष्यकी आशंकामें घिस-पिसकर मरा-मिटासा है। इस जीवनमें जैसे कोई जीवन ही नहीं देखता। मार्क्सने संसारके इन्हीं ६५% लोगोंको संसारके उन ५% लोगोंके निर्मम शोषणके खिलाफ आगाह किया था। उसने संसारभरके श्रमिकोंको संगठित होकर संसारभरके इन शोषकोंके हाथसे समाज और शासनकी सत्ता छीन लेनेकी सलाह दी। अपने अधिकारोंके लिये, अपनी रोटीके लिये, मनुष्यकी तरह जीनेके लिये अपने शोषकोंके भुकावले अहिंसाके आचरणका उपदेश देकर उनकी आंखोंमें धूल डालनेकी मार्क्सने कोशिश नहीं की। मार्क्सवादमें पाखंड नामकी कोई चीज नहीं है राधा !”

राधा कुछ देर चुप रही। फिर जरा मुस्काती हुई बोली—
“धार्मिक सिद्धान्तोंका प्रचार भी जनताके कल्याणके नामपर ही हुआ है, मास्टरजी ! और मार्क्सवाद भी जनताकी भलाईकी ही दुहाई देता है। फिर यदि धर्मोंके प्रचारमें पाखंडका हाथ रहा है, तो मार्क्सवादके प्रचारमें भी यही अभियोग क्यों नहीं पेश किया जा सकता ?”

राधाके इस विकसित बुद्धि-वैभवपर राजन आश्चर्य-चकित हुआ, मन-ही-मन प्रसन्न भी। वह भी मुस्काकर प्रसन्न स्वरमें बोला—“तुमने ठीक कहा राधा ! संसारके किसी भी वादकी आड़में पाखंडका प्रपंच रचा जा सकता है। लेकिन एक बातपर तुमने विचार शायद नहीं किया। धर्म विशेषकर अलौकिक और अदृश्य बातोंकी दुहाई देकर जनताके शिरपर सवार हुआ है। उन अदृश्य विषयोंकी आड़में चिर-काल तक, सदियों तक जनताको धोकेमें रखा जा सकता है, रखा जाता रहा भी है; किन्तु मार्क्सवादकी आड़में यह धांधली चिर-काल तक नहीं चल सकती। क्योंकि मार्क्सवाद लौकिक और दृश्य विषयों अर्थात् सांसारिक जीवनकी सुख-सुविधाओं और मनुष्य-मनुष्यमें सक्रिय समताके नामपर

ही जनतामें समादर प्राप्त करता है। यदि मार्क्सवादी शासन-व्यवस्था जीवनकी इन लौकिक और बुनियादी समस्याओंका समाधान करनेमें असफल रही, तो उसका अधिक दिनों तक टिके रहना न आसान है, न सम्भव ही है। अतः मार्क्सवादमें पाखंडके लिये लंबी या खुली छूटकी मुंजायश नहीं है राधा !”

राधा चुप हो गई। लगा कि उसे सन्तोषजनक उत्तर मिल गया। राजन लेखिन बोलता गया—“और रह गई रूसी क्रांतिमें हिंसा और हत्याकी बात। सो, जरा दिलपर हाथ रखकर सोचो तो राधा, कि इन सबके लिए जिम्मेदार कौन है ? वहाँके वही मुट्ठीभर रूसी शोषक ही तो, जो अपनी सत्ता कायम रखनेके लिये विदेशी मुफ्तखोरोंकी मदद लेकर अपने देशी मजदूरोंके खूनकी होली खेलनेकी किसी भी कोशिशसे बाज नहीं आये ?” कहते-कहते राजनका चेहरा तमतमा उठा—“राधा, मार्क्सने मुट्ठीभर मुफ्तखोरोंको मिटाकर संसारसे सदाके लिये शोषणको विदा कर सारी दुनियाको एक सुखमय विशाल परिवारमें परिणत करनेका सपना देखा, सोचा और विचारा, और अपने विचारोंको मूर्त रूप देनेके लिये संसारके शोषितोंसे अपील की, उनकी आँखोंमें अंगुनी डाल-डालकर उनके शत्रुओंसे उन्हें सावधान किया, उन्हें रास्ता दिखाया, और अन्तमें अपने इन विचारोंके लिये गहरी कीमन चुकाकर संसारसे विदा हो गया !”—कहते-कहते राजनकी आँखोंमें आँसू आ गये।

राजन भाववेशमें आ गया था। राधाने उसके भाव-विह्वल चेहरेको देखा और शिर झुका लिया। मार्क्सकी जीवनी वह पढ़ चुकी थी। किस प्रकार अपने विचारोंके कारण शासकोंका कोपभाजन बनकर उसे एक देशसे दूसरे देशोंमें भटकना पड़ा था। किस प्रकार उसे भूख और गरीबीकी निन्दगी बसर करनी पड़ी थी। अपनेमें सुखोपभोगके सारे साधन जुटा सकनेकी क्षमताके रहते भी संसारके शोषितोंका पक्ष लेनेकी खातिर उसे कम कीमन नहीं चुकानी पड़ी थी।

इतनेमें शीघ्रसे निबटकर काशीनाथ वहाँ आ पहुँचा। राधाको शिर झुकाये देख दूरसे ही बोला—“क्यों राधा, शास्त्रार्थका रंग तो खूब जमा दीखता है ? एकाएक शिर झुकाके बैठ गई ?” फिर राजनको लक्ष्य करके—“क्यों भाई पण्डितराज, अपने सारे पाण्डित्यका जोर अभीसे उस अबोध लड़कीपर अजमाकर उसे निकम्मा न बना देना !” फिर लोटाभर पानी लाकर राधा के आगे रखकर वह बोला—“लो, जरा पानी पीकर दिल ठंडा कर लो। कहीं ज्ञानकी गर्मीसे वह झुलस न जाय। और चलो घर। सूरज डूब चुका।”

राधा उठ खड़ी होकर बोली—“आज मास्टरजीने बड़ी नई-नई मार्कोंकी बातें बताई हैं भैया ! मैं आज बहुत खुश हूँ।”—कहकर एक हल्की अँगड़ाई लेकर वह कुंडकी ओर चली गई।

“देखना, कहीं खुशीमें पागल न हो जाना !”—कहकर काशीनाथ लोटा लौटाने पुजारीके पास चला गया और क्षणभर बाद ही वापस आ गया। फिर तीनों जने घरकी ओर चल पड़े। महाराजा रणजीत सिंहके किलेके पाससे होते हुए काशी और राधा अपने आशामाई मुहल्लेमें चले गये और राजन किस्साखानीमें स्थित अपने बासेकी ओर।

अलग होते समय राधाने कहा—“मैं तो पूछना चाहती थी आपके भैया-भाभीके बारेमें मास्टरजी, लेकिन बीचमें धर्मकी बात छिड़ गई। सो चलिये न मेरे घरपर ! उनके बारेमें बता दीजियेगा।”

“नही राधा, अब समय नहीं है। फिर किसी दिन।”—कहकर राजन लंबे-लंबे डेग भरता आगे चलता बना।

[६]

सामने मेजपर किताब खोले राधा चुपचाप बैठी थी। अपनी चिकनी चमकीली कोमल अंगुलियोंपर अपने कोमल कपोलका बोझ रखे, जाने क्या कुछ सोच रही थी। पंचतीर्थसे वापस आनेके बादसे उसके मनमें एक अशान्ति, एक बेचैनी-सी उठ खड़ी हुई। किन्तु मनकी इस अशान्ति और बेचैनीमें, तथ्यको अधिगत करनेकी उत्कंठा में, एक अनिवंचनीय प्रसन्नता भी छिपी थी। उसके स्वभाव-सूखं चेहरेपर विचारोंकी ऊमियाँ उमड़-उमड़कर उसके नैसर्गिक सौन्दर्यको और भी उभार रही थीं। चार्ची आशामाईके मन्दिरमें कथा सुनने गई थीं। काशीनाथ अपने कमरेसे निकलकर धीरे-धीरे जाकर राधाके कमरेके चौखटके निकट खड़ा हो गया। राधाकी उस मुद्राको देख वह स्तब्ध रह गया! कुछ क्षण वही खड़े-खड़े टेबुल-लेपकी रोशनीमें राधाके विचार-चर्चित चेहरेको वह देखता रहा। सहसा उसका हृदय बोल पड़ा—“अहा! राधा कितनी सुन्दर है!”

फिर एकाएक उसके दिलमें शरारत सूझी। कमरेमें प्रविष्ट होकर बड़े जोरकी एक ताली बजाकर बोला—“हः!”

राधा चौंक पड़ी और काशीनाथ खिलखिलाकर हँस पड़ा।

हड़बड़ाकर कुर्सीसे उठ खड़ी होकर राधा बोली—“आइये, बैठिये भैया!”

काशीनाथ मेजकी दूसरी तरफकी कुर्सीपर बैठ गया। उसने अपना स्वाभाविक हँसोड़पन जारी कर दिया। किन्तु आज वह और दिनों-की तरह उसके हँसी-मजाकमें चांचल्य अथवा चुलबुलेपनका परिचय नहीं दे पा रही थी। वह जब-तब हँसती अवश्य थी, किन्तु वह हँसी गम्भीरताके बोझसे दबी होती।

“क्यों राधा ?”—एक समय काशीनाथ झुल्लाकर बोला—“इस तरह मनहूस क्यों बन गई ? राजन अपनी मनहूसीका बोझ तुमपर तो नहीं डाल गया ?”

“नहीं भैया !”—राधाने ओठोंपर बलात् मुस्कुराहट लाकर जवाब दिया—“मनहूस क्यों होऊँगी ? ठीक तो है !”

“नहीं राधा, लगता है तुम विचारोंकी उलट-पेंचीमें पड़ गई हो । देखो, अभीसे इस उलटपेंचीमें पड़ी कि खत्म ! अभी तो खूब हँसो, खूब खेलो ! उस अभागकी तो सोचनेकी आदत मानो मर्कट पेटसे ही पड़ी हुई है ।”

“इस प्रकारके विचारोंकी उलट-पेंचीमें पड़ना कोई बुरी बात तो नहीं ? यह तो सीभाग्यकी बात है भैया कि.....और इसके लिये आप क्या कम जिम्मेदार हैं ? धीरे-धीरे इस मूर्ख अनाथको आपने ही तो.....”

राधा आगे बोल न सकी ।

काशीनाथ उसकी बड़ी-बड़ी भरी आँखोंको देखकर जरा कृत्रिम क्रोधमें दायीं हाथ उठाकर बोला—“मैं चपत मार दूँगा राधा ! जब-तब यह अनाथ-अनाथकी रट मुझे जरा भी अच्छी नहीं लगती। क्या अब भी तुम्हारे दिलसे दुराव दूर नहीं हुआ ?”—कहकर काशीनाथ उठ खड़ा हुआ और कमरेसे बाहर निकल गया ।

राधा बेचारी घबड़ा उठी । वह कृतज्ञताके आवेशमें यह भूल गई थी कि ऐसे शब्दोंके प्रयोगका क्या तात्पर्य निकल सकता है । उसके भैयाके दिलको कितना धक्का पहुँच सकता है । एक-दो बार पहले भी इस अनाथ शब्दका अनजाने प्रयोगकर वह काशीनाथके दिलको दुखा चुकी थी । इस बार व्याकुल होकर वह उठी और झट काशीनाथके कमरेमें जाकर उसके गलेसे लिपट गई । चुपचाप रोने लगी । उसकी समझमें नहीं आ रहा था कि क्या कहकर अपने भैयासे माँफी माँगे ।

काशीनाथ अपनी पलंगपर बैठा था । प्यारसे उसकी पीठपर हाथ

सहलाता रहा। काशीनाथका हृदय भी भर आया था। उसकी आँखें भी गीली हो उठी थीं। कुछ देर बाद स्नस्थ होनेपर प्यारभरे स्वरमें वह राधासे बोला—“तुम अभी क्या सोच रही थीं राधा?”

राधा अब काशीनाथसे अलग होकर कुर्सीपर बैठ चुकी थी। किन्तु वह चुप रही।

काशीनाथने मुस्कुराते हुए फिर पूछा—“क्यों, नाराज हो गईं क्या? नहीं बोलोगी मुझसे?”

राधाने अपने भैयाके मुस्कुराते चेहरेको देखा। वह स्वयं भी मुस्कुरा उठी। और इस मुस्कुराहटमें कुछ क्षण पहलेकी सारी मनहूसी एकाएक बिना गई।

“कुछ नहीं भैया!”—राधा बोली—“यही जरा मास्टरजीकी बातोंपर सोच रही थी। पूछना चाहती थी उनके भैया-भाभीके बारेमें, लेकिन बात छिड़ गई धर्म-मजहबकी। आप तो नहीं थे उस वक्त, लेकिन मास्टरजीने धर्म-मजहबके बारेमें ऐसी-ऐसी बातें बताईं कि सबसे उसीके बारेमें सोच रही हूँ। और, यह मास्टरजी भी क्या हैं मानो ज्ञानका खजाना ही।”—कहते-कहते उसका चेहरा सतोप और एसन्नतामें प्रफुल्ल हो उठा।

“हाँ भई!”—काशीनाथने मुस्कुराकर मीठा ताना मारा—“तारीफ तो करनी ही हुई। तुम्हारे मास्टरजी जो ठहरे!”

“हाँ ss!”—राधा तुनककर बोली—“जैसे केवल मैं ही तारीफ करती होऊँ? क्या आप नहीं करते? मैं तो दिन-रात आपके मुँहसे यही सुना करती हूँ—‘मेरा राजन ऐसा है, मेरा राजन वैसा है।’ यदि मैं भी कहूँ ‘आपके मित्र जो ठहरे?’”

काशीनाथ ठठाकर हँस पड़ा। वातावरण प्रसन्न हो उठा।

मुस्कुराते हुए उसने कहा—“अगर मैं राजनसे कह दूँ कि राधा तुम्हारी निन्दा कर रही थी, तुम्हारे विचारोंका मजाक उड़ा रही थी, तो?”

“तो, मेरे भैयाजी झूठ बोलना कबसे सीख गये ?”

“जबसे अपनी इस बहिनजीका साथ हुआ राधा !”

इस बार राधा और काशी दोनों ही खिलखिलाकर हँस पड़े। इस हार्दिक हँसीके बवंडरमें मनहूस गंभीरताका जर्जा-जर्जा उड़कर बिला गया।

“भैया !”—अब राधा पूरे स्वस्थ चित्तसे बोली—“मास्टरजीका कहना है कि, चूँकि संसारके सारे धर्मोंके व्यापक प्रचारका सहारा राजनीति और राज्य रहा है, और चूँकि राजनीति और राज्यका आधार पाखंड और नृशंसता रहे हैं, इसलिये वे संसारके किसी भी धर्मको कतई माननेको तैयार नहीं है। मैं तो अभी ज्यादा कुछ पढ़ी नहीं हूँ, लेकिन जितना ही पढ़ी हूँ उसीके आधारपर जब सोचती हूँ तो लगता है कि मास्टरजीका कहना बिल्कुल ठीक है।.....मास्टरजीने कैसी पतेकी बात बंताई भैया !”

और काशीनाथने उसी प्रकार मुस्कराते हुए फिर मीठी चुटकी ली—“हाँ भाई, तुम्हारे मास्टरजी जो ठहरे ?”

“आपको तो हर बातमें मजाक ही सूझता है !”—राधा तुनककर बोली—“मजाक छोड़िये ! उस दिनकी बात याद आ गई। इसी धर्मके मामलेमें पादरी हेगनोरसे आपकी कैसी झड़प हो गई थी ? उस पादरीके कहनेका तरीका ऐसा था मानो सारी दुनिया और दूसरे धर्मोंके मानने-वाले मूर्ख हैं, बेवकूफ हैं। कितने हल्के ढंगसे वह बता रहा था कि संसारके अन्य सारे धर्म झूठे और एकमात्र क्रिश्चियन धर्म ही सच्चा है। एकमात्र ईसासमसीह ही ईश्वरका पुत्र और पैगम्बर है। इसलिये सारे संसारको ईसाई धर्म स्वीकारकर ईश्वर-पुत्र ईसाकी शरणमें आ जाना चाहिये। अब सोच रही हूँ कि कितने मूर्ख होते हैं ये धर्मके प्रचारक लोग ?”

अब काशीनाथ सीधा होकर बैठ गया। गंभीर होकर बोला—“संसारके सारे धर्म फूलते-फलते ही हैं मूर्खताके आधारपर राधा ! नहीं तो क्या कारण है कि धर्मके नामपर लाखों-करोड़ों बेगुनाहोंका खून

बहता आया है और आज भी उसकी संभावना बिल्कुल मिटी नहीं है ? और आश्चर्य तो यह है कि ऐसे धर्म-युद्धोंकी नेतागिरी ऐसे लोगोंके हाथ होती है जिनका स्वयं धर्म या धार्मिक जीवनसे कोई सम्बन्ध नहीं होता ! उन मूर्ख धर्म-योद्धाओंके खूनसे वे अपने अधिकार और नेतागिरीकी बुनियाद पक्की करते हैं !”

“सो ही भैया !”—राधाने कहा—“पिछले महीने में चाचीके साथ ‘सनातन-धर्म-महासभा’ के वार्षिकोत्सवमें गई थी । महामहोपाध्याय पं० चन्द्रशेखरजी शर्मा अपने व्याख्यानमें बता रहे थे—‘धर्मका लक्ष्य मनुष्यको इहलोक-परलोकमें सुखी बनाना है । धर्ममें सारे संसार और मानव-समाजको धारण करनेकी शक्ति है । धर्मकी रक्षा करनेमें इहलोक-परलोकमें धर्म उसकी रक्षा करता है । और नष्ट होनेपर वही धर्म उसका नाश कर देता है । इसलिये प्राण देकर भी हमें धर्मकी रक्षा करनी है । सनातन धर्म ही सत्य, सनातन और अनादि है । और मूर्ति-पूजा तथा वर्ण-व्यवस्था ही इस सत्य धर्मका मुख्य आधार है ।”

“जो सत्य है, अपनी सचाईके बलपर ही जीवित रहेगा ।”—काशीनाथने मुस्कराते हुए कहा—“सचाई छिप नहीं सकती बनावटके वमूलोंसे । सो, जो सत्य और सनातन है उसके लिये महामहोपाध्यायजीको चिन्तित होनेकी जरूरत न थी । लेकिन उनसे पूछे कौन ? वहाँ बोलने और सुननेवाले सब एक ही थैलेके चट्टे-बट्टे जो ठहरे ? और इस सत्य-सनातनकी दुहाई तो उस पादरी हेंगनोर जैसी ही हुई राधा ? अपने धर्मको कौन सत्य और सनातन नहीं मानता ?”

काशीनाथ अब बोलनेके आवेशमें आ गया । उसकी वाणीमें उसका सामान्य संस्कृत-ज्ञान भी अब प्रस्फुटित होने लगा । वह बोलता गया—“जैनियोंने अपने धर्मको सत्य-सनातन सिद्ध करनेके लिये अनेक तीर्थ-करोंकी कल्पना की, और अपने धर्मका आदि-सम्बन्ध लगभग ढाई हजार वर्ष पहले पैदा हुए केवल महावीरसे न जोड़कर सत्ययुगमें पैदा हुए किन्हीं ऋषभदेवसे जोड़ा, जिन्हें सनातन-धर्मी भगवान विष्णुका अवतार

मानते हैं। इसी प्रकार बौद्धों ने अपने बुद्ध भगवानकी विशिष्टता दिखानेके लिये, अपने धर्मको सत्य-सनातन सिद्ध करनेके लिये, ब्राह्मणोंके अवतारवादकी नकल करके बुद्धके अनेक पूर्ववर्ती जन्मोंकी कल्पना की जिनकी मनगढ़न्त और अविश्वसनीय कथानकोंसे बौद्ध वाङ्मयका सारा जातक-ग्रन्थ भरा पड़ा है। और महामहोपाध्यायजीने जिस मूर्तिपूजाको अपने सनातन-धर्मका आधार बताया था, उस मूर्तिपूजाको आस्तिक ब्राह्मणोंने नास्तिक बौद्धोंमें ही लिया है ऐसा विद्वानोंका मत है। और जिस वर्ण-व्यवस्थाको सनातन-धर्म जन्मके आधारपर मानता है, इसी सनातन-धर्मके मान्य ग्रन्थ 'गीता' ने उसे गुण-कर्मके आधारपर माना है—'चानुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण-कर्म-विभागशः'। और हँसी तो आई उस दिन उस गुरुद्वारेके उस ग्रन्थीकी बात सुनकर, जो बता रहा था कि गुरु नानकदेवजी अवतारी पुरुष थे, उनके अवतारके बारेमें बाल्मीकी रामायणमें भी लिखा हुआ है।"

काशीनाथके मुखसे धर्मकी ऐसी मीमांसा सुनकर राधाको बड़ा आश्चर्य हुआ। अब तक वह यही समझे बैठी थी कि उसका सरल-हृदय हँसोड़ भैया क्या जाने इन सब गंभीर बातोंको? किन्तु अपने उसी भैयाके मुखसे अपने मास्टरजी जैसा ही विश्लेषण सुनकर वह तो मुग्ध हो गई! अपने स्वरमें आश्चर्य-मिश्रित प्रसन्नताके भाव उड़ेलती हुई वह बोली—“तो, यह सब मेरे भैयाजी भी जानते हैं? मैं तो समझे हुए थी कि.....”

काशीनाथ जोरसे हँस पड़ा। राधाके अन्तिम वाक्यका शेषांश पूरा करते हुए वह बोला—“.....मेरे मास्टरजी ही सब कुछ जानते हैं! यही न राधा? हाँ भई, तुम्हारे मास्टरजी जो ठहरे?”

राधाके चेहरेपर शर्मकी सुर्खी उभर आई। शिर नीचे झुक गया। शिर नीचा किये ही धीरेसे बोली—“नहीं भैया! ऐसा नहीं। लेकिन.....”

“नहीं बहन!”—काशीनाथ राधाकी कुंठा दूर करते हुए मीठे

स्वरमें बोला—“शरमानेकी जरूरत नहीं है। मैंने भी यह सब तुम्हारे मास्टरजीसे ही सीखा है। वी० ए० हो जानेके बादसे अधिकतर यही सब आजकल राजनसे उनके बासेपर जाकर पढ़ा करता हूँ। राजन केवल तुम्हारा ही नहीं, मेरा भी मास्टरजी हैं राधा !”

राधाका दिल एकाएक खिल उठा। वह अपने पूर्व प्रसंग पकड़कर बोली—“आर्य-समाजी मूर्ति-पूजा को नहीं मानते, लेकिन जब कभी आर्य समाज-मन्दिरमें गई है, वहाँ स्वामी दयानन्दका विशाल फोटो बड़े आदरसे टंगा देखकर में दग रह गई हूँ ! मैं नहीं समझती कि मूर्तिपूजाके खंडक ये आर्य-समाजी स्वामी दयानन्दकी इस कागजी मूर्तिका अपमान किसी-भी तरह बर्दाश्त कर सकेंगे ?”

और काशीनाथने हँसकर जवाब दिया—“और यदि इसपर कुछ शंका करो तो आर्य-समाजी प्रचारक तुम्हें बतायेगा कि यह तो सफाई-के लिये टंगा हुआ है। हद हो गई मूर्खताकी भी ! क्या स्वामी दयानन्दजी वहाँ झाड़ू लगाया करते हैं ? वहाँ भी अब सिवा पोंगा-पन्थीपन-के और कुछ नहीं रहा राधा ! घोर संकीर्णता है वहाँ भी ! जो आर्य-समाज किसी समय घोर प्रगतिशील-सा दीख रहा था आज वही घोर संकीर्ण बन गया है ! आज वह भी एक महज दुकानके और कुछ नहीं रहा राधा !”

राधा अब उत्माहित हो बोल उठी—“सिख और मुसलमान भी मूर्ति-पूजाके विरोधी हैं, लेकिन याद है आपको पिछले सालकी बात जो हमने पंजा-साहबमें देखी थी ? गुरु नानकदेवजीके पंजेकी छापपर सिक्ख नर-नारी किस प्रकार लोटा भर-भरकर जल उड़ेल रहे थे, और माथा टेक-टेककर मन्तों माने जा रहे थे ? और जब हम उस ऊँची चोटी-पर बली कंधारीकी समाधि देखने गये थे, किम प्रकार मुसलमान औरतें नीचेसे पानी भरकर घड़े और रोटियाँ ला-लाकर उसपर चढ़ा रही थीं, माथा रगड़-रगड़कर मुरादें पूरी करनेकी जुहारें किये जा थीं ? इसे क्या मूर्ति-पूजा नहीं कहेंगे भैया ?”

“हाँ, सो ही सोच लो ! और गुरु नानकदेव और बली कंधारीकी

करामातकी वह कहानी ? इस बीसवीं सदीका कौन पढ़ा-लिखा समझदार इन मनगढ़न्त बातोंपर विश्वास कर सकेगा ? वस, समझ लो कि संसारभरके धर्मा और मजहबोंकी गाड़ी इन्हीं ग्रन्थ-विश्वासों और बनावटी बातोंपर चला करती है जिनका समझ-गूँझसे कोई सम्बन्ध नहीं होता, कोई रिश्ता-नाता नहीं होता । लेकिन अफसोस, कि जनताके ही ग्रन्थविश्वासोंपर फूल-फलकर भी धर्म-शक्ति सदासे जन-शक्तिके साथ विश्वासघात ही करती आई है । वह सदासे जन-शक्तिके मुकाबले शोषक-शक्ति और राज-शक्तिका ही साथ देती आई है । ऐसे उदाहरणोंसे संसारका सारा इतिहास भरा पड़ा है, राधा ! फिर राजन जैसा एक पढ़ा-लिखा ईमानदार क्योंकर इन जन-शक्ति-विरोधी तत्त्वोंको शिर झुकायेगा ? क्योंकर वह अपनी अभिजाता और ईमानदारी-को बट्टा लगायेगा ?”

इतनेमें नीचेसे चाची आ गई । दोनोंको बात-चीतमें उलझे देखकर खिसियाकर बोली—“अपनी बकवासमें तुम लोगोंको खाना-पीना भी याद नहीं रहता !” और फिर राधाको उद्देश करके—“क्या कहकर तुझे समझाऊँ राधा ! इतनी बड़ी हो गई ! तुझे इतनी भी फिकर नहीं कि कम-से-कम काशीके खाने-पीनेकी खोज-खबर तो रखा करे ? तू तो औरत होकर पैदा हुई है ? तुझे तो यह सब शोभा नहीं देता राधा ? देख तो उसका चेहरा ! दिन-रात पढ़-पढ़के क्या बनता जा रहा है !”

काशीनाथ खिलखिलाकर हँस पड़ा—“लोग कहते हैं कि काशी दिनों-दिन मोटा होता जा रहा है, और तुम हो कि मारे फिकरके मरी जा रही हो चाची !”

“अच्छा, चल ! बकवास बन्द कर ! थाली परोप दी गई है ।”

काशीनाथ कृत्रिम घबड़ाहटके साथ उठ खड़ा हो हुए बोला—“बन्द कर दिया चाची ! यह लो, चला चाची ! चलो राधा, उठो ! बड़े जोरकी भूख लगी है ।” कहकर कमरेसे बाहर हो गया । पोढ़ियोंसे खट-खटकर उतरता नीचे रसोई-घरकी ओर चला गया ।

[७]

राधाको मानो नई आँखें मिलीं । उसे लगा कि वह अब तक अन्धी थी । भोजनके उपरान्त अपने बिल्लीनेपर पड़ी-पड़ी वह सोचने लगी—“सारा संसार ही अन्ध-संस्कारके फंदेमें पड़ा हुआ है और वह समाज भी जो अपनेको आँखोंवाला, सभ्य, सुसंस्कृत आदि जाने क्या-क्या समझे बैठा हुआ है । चर्म-चक्षुसे परे प्रज्ञा-चक्षुसा जैसे सबमें अभाव है । लेकिन मास्टर-जीसे ही सुन चुकी हैं कि—‘मनुष्यकी तो बात ही क्या, अन्य प्राणीके भी चर्म-चक्षुके अतिरिक्त एक द्विती प्रज्ञा-चक्षु भी होती है । जिस प्रकार यह सारा जड़-जगत् अनन्त-अपार शक्तिका स्रोत होकर भी तब तक जड़ ही बना रहता है जब तक वैज्ञानिक चेतना और क्रियाका संयोग उसकी द्विती अपार-शक्तिको उभार नहीं देता । इसी प्रकार मनुष्यकी ज्ञान-चक्षु भी तब-तक अन्धी, निकम्मी और निःशक्ति ही बनी रहती है, जब तक उसमें किसी विशिष्ट ज्ञानके योगसे चेतन्य नहीं आ जाता’। तो अब तक मैं अन्धी थी । सत्यको असत्य और असत्यको सत्य मानती आ रही थी । परम्परासे चली आई बातें ही हमारे समझ-बूझके साधन हैं । मास्टरजीने ही तो उस दिन कहा था—‘राधा, किसीकी सुनी-सुनाई, पढ़ी-पढ़ाई बातको बगैर तर्कके, बुद्धि और विचारकी कसौटीपर बारबार कसे बिना ही आँख मूँदकर स्वीकार कर लेना वस्तु-तत्त्वके साथ घोर विश्वासघात है । आँखवाला होनेका दावा करके भी वह वास्तवमें अंधा होता है । मैं नहीं चाहता राधा, कि मैं स्वयं भी जो कुछ कहूँ तुम उसे सत्य मानकर ही स्वीकार कर लो । क्योंकि ज्ञान अनन्त है । जिसे हम आज सत्य मान रहे हैं, वही कल असत्य भी सिद्ध हो सकता है । बुद्धिकी विवेक-शक्तिपर, उसकी तर्क-शक्तिपर किसी भी रूपमें रोक लगानेवाला मानव समाजका घोर शत्रु होता है राधा !

मास्टरजीने कभी स्वयं सर्वज्ञ होनेका दावा नहीं किया। उन्होंने ही तो कहा था—‘जो भी व्यक्ति सर्वज्ञ होनेका दावा करे उसे या तो मूर्ख समझो या धूर्त।’ लेकिन उन्होंने आज मेरे हृदयमें जो ज्योति जगा दी है उसके सहारे अपने भावी जीवन और ज्ञानका पथ तो प्रशस्त करूँगी ही। कितना बड़ा लाभ है यह !”—सोचते-सोचते अपने मास्टरजीके प्रति उसके हृदयमें सहसा श्रद्धा और प्रेमका उफान उठ आया। उस समय उसके मनकी आँखोंमें वह काला-कलूटा कुरूप राजन संसारका सबसे सुन्दर, सबसे अभिलषणीय प्रतीत हुआ। क्षणभरके लिये उसके हृदयमें अनजाने ही अभिलाषाकी बाढ़ उमड़ पड़ी—“काश, इस महाविभूतिको मैं पा सकती !”

इस प्रकार बहुत रात बीते तक विचारोंकी बन्ध्यामें डूबती-उतराती वह एक समय अनजाने गाड़ी निद्राकी आँचलमें जा छिपी। काफी दिन उठे तक सोती रही। वह स्वयं न जगकर जगाई जाकर जगी। चाची अपने हाथसे उसकी देहको हिलाते हुए बोल रही थीं—“यह अभीसे कौनसा कुलच्छन सीख रही है राधा ! यह आदत तो ठीक नहीं ! अब तो तू बच्ची नहीं ! जिस घरकी औरतें सूरज उगने तक सोती रहें उस घरसे लछ्मी रुठ जाती है। उठ उठ ! देख तो, दिन कितना चढ़ आया !”—रहकर उसे फिर हिलाने लगीं।

राधा अब निद्रासे तन्द्रामें पहुँच गई थी। उस तन्द्रिल दशामें ही माँकी मीठी फटकार उसके कानोंमें पहुँच रही थी। लेटे-लेटे ही जरासी अगड़ाई लेकर करवट बदलकर फिर सो गई। इस बार चाची बड़े जोरसे उसे झकझोरकर नाराज होकर बोलीं—“उठती क्यों नहीं ? काशी नाराज हो रहा है ! राजन बैठा इन्तजार कर रहा है !”

अंतिम वाक्यके कानमें पड़ते ही राधा तड़-फड़ पलंगपर उठ बैठी। दोनों हाथोंसे आँखें मीजकर एक गहरी अगड़ाई लेकर वह नीचे उठ खड़ी हुई। फिर सीधे स्नानागारकी ओर चली गई। जल्दी-जल्दी नित्य-क्रियासे निबटकर नहा-धो कपड़े बदलकर आधा घण्टे बाद काशीनाथके

कमरेमें वह आ पहुँची जहाँ राजन काशीनाथके साथ बैठा चाय-पानी कर रहा था। राधा चुपचाप हाथ जोड़ 'नमस्ते' करके भेजसे सटी एक दूसरी कुर्सीपर जा बैठी।

“बड़ी गहरी समाधि लगी थी देवीजीकी ?”—काशीनाथ राधाकी खिल्ली उड़ाते हुए मुस्कराकर बोला—“लगता है गुरुजीकी छाया पूरी तरह चेलीजीपर भी छाती जा रही है।” फिर मिठाई और नमकीनकी तश्तरी उसकी ओर बढ़ाकर—“यह लो अपना हिस्सा। चाय तो ठंडी हो गई। मैंने बड़ा इंतजार किया तुम्हारा, लेकिन तुम्हारे गुरु-देवता नहीं ही माने। बड़ा पेटू है तुम्हारा गुरु राधा !”—और कहकर जोरसे हँस पड़ा।

“क्यों नहीं ?”—राधा ओठोंपर मुस्कराहट लाकर बोली—“अपना दोष दूसरोंके मत्थे मढ़नेमें मेरे भैयाजी है ही बड़े माहिर।”

“देखो राजन !”—काशीनाथने कहा—“तुम्हारी चेलीकी इस बढ़ती हुई गुरु-भक्तिसे मैं तो डर रहा हूँ भाई ! यदि अभीसे इतना पक्ष लेने लगी तो मैं बेचारा तो कहींका नहीं रहूँगा।”

राजन मुस्कराता हुआ चुप रहा। राधाने भी जरा मुस्करा दिया।

“एक कप और तो पियेंगे ही मास्टरजी !”—राधा राजनको लक्ष्य करके बोली—“मैं अभी लिये आती हूँ।”—कहकर वह केतली लिये स्वयं नीचेकी ओर चल पड़ी, क्योंकि नौकर किसी कामसे बाजार चला गया था।

राजनने अपने लिये मना किया, लेकिन काशीनाथने टिटकारी भरी—“अरी ले भी तो आओ ! यहाँ भीमसेनके छोटे भैया तो मौजूद है ही।”

पाँच मिनटके बाद राधा चायसे भरी केतली और कुछ खानेका सामान लिये वहाँ आ पहुँची।

राधा अपनी आँखें नीची किये राजन और काशीकी प्यालियोंमें चाय उड़ेल रही थी, कि काशीनाथने कहा—“यह सब कुछ तो तुम अपने मास्टरजीके लिये लाई हो ? तो मास्टरजीके ही आगे परोसो।

मास्टरजीसे ही तो पूछकर गई थीं न लाने, भैयाजीसे तो नहीं ?”

“भैयाजीसे पूछनेकी जरूरत क्या,”—राधा निगाहें नीची किये मुस्क-राती हुई बोली—“जब कि बगैर पूछे ही वह सब कुछ हड़पनेको तैयार रहते हैं ? पूछा तो जाता है उससे जो पूछनेपर भी मना कर देता है ।”

काशीनाथ ठठाकर हँस पड़ा—“तुम यह धूर्तता कहाँसे सीख आईं राधा ?”

“अपने भैयाजीसे भैया !”

इस बार राजन भी जोरसे हँस पड़ा और राधा भी हँस पड़ी, और तीनोंके कह-कहसे एक बार सारा कमरा गूँज उठा ।

फिर चायका दंगल आरम्भ हुआ । कुछ फल-फ़ूट भी चाचीजी नीचेसे लेती आईं । चाचीके चले जानेपर चाय पीते-पीते ही राजनने कहा—“आज इस कुयेले में तुम्हें तकलीफ इसलिये दी है राधा, कि महीनेभरके लिये मैं बाहर जा रहा हूँ । कल संध्याको जब बासेपर पहुँचा तो एक चिट्ठी मिली । जाना बहुत जरूरी है वहाँ ।”

सुनते ही राधाका चेहरा मुरझा गया ! क्षणभर पहलेका उसका चमकता चेहरा क्षणमात्रमें उदासीसे भर गया ! निराशाभरे आश्चर्यके स्वरमें वह बोली—“क्या ? बाहर जा रहे हैं आप ? फिर मेरा क्या होगा ?”—कहते-कहते ही उसकी आँखोंमें पानी छलक आया—“परीक्षा नजदीक आ गई, और आप अब.....”

राधाने चुन्नीके छोरसे आँखें पोंछ लीं ।

राजन पिघल गया । उसकी निराशा दूर करते हुए झटपट वह बोल पड़ा—“नहीं राधा, घबड़ाओ नहीं ! तुम्हारा सब कुछ ठीक करके जाऊँगा ।”

राधा कुछ आश्वस्त हुई—“तो फिर नहीं न जायेंगे अभी ?”

“जाना तो जरूरी है राधा ! परसों शामको जाऊँगा ।”

“तो फिर ?”

“तो फिर यही कि इस बीच तुम्हें सब पढ़ा-लिखाकर जाऊँगा ।

राधा पुनः व्याकुल होकर बोली—“केवल इस तीन दिनमें क्या होगा मास्टरजी ?”

“फिर तुम घबड़ा उठी ! पगली, इस तीन दिनमें तो पूरे तीन वर्षका काम पूरा किया जा सकता है, और यह तो भला महीनेभरका काम है !”

“कैसे होगा मास्टरजी ?”

“मैं दिन-रात तुम्हें पढ़ाता जाऊँगा, और तुम ध्यान लगाकर निगलती जाना ! फिर महीनेभरमें सबको पचा लेना । सब ठीक हो जायगा । मैंने तो सालमें सिर्फ हफ्तेभरकी पढ़ाईमें ही सारी परीक्षाएँ पासकी हैं राधा !”

राधा कुछ शान्त हुई । फिर उसने पूछा—“कहाँ जायेंगे आप ?”

“यह मेरी आदतके खिलाफ है कि बता दूँ, कहाँ जाऊँगा ।”

राधा चुप रही, किन्तु काशीनाथ मजाकके स्वरमें बोला—“हाँ भई, बात-तो ठीक है कि कहीं कोई जानकर तुम्हारा हुलिया न खराब कर दे ।” फिर राधासे—“अपने सम्बन्धकी करीब हर बातको रहस्यके पर्देसे ढके रखनेकी तुम्हारे मास्टरजीकी आदत है राधा ! शाबाशी तो तुम्हें तब दूँ अगर इस आदतके खिलाफ जेहाद छेड़कर इसे मटियामेट कर दो ! चाहनेपर औरतें क्या नहीं कर सकतीं ?”

राधा अपने चेहरेपर उभरी हुई लालीको मधुर मुस्कराहटमें छिपाती हुई बोली—“अपने भैयाजीकी सलाह गाँठ बाँध रखती हूँ । मौका मिलनेपर इस्तेमाल करके देखूँगी ।”

“मौका मिला हुआ ही है अभी । अभी ही इस्तेमाल करके देख लो न !”

“तुम्हें कोई काम नहीं है काशी ?”—राजनने हस्तक्षेप किया—“अभी तो बता रहे थे कि कोर्ट जाना है । फिर ?”

काशीनाथको धक्के याद आ गया । हड़बड़ाकर कलाईपर बँधी घड़ीकी ओर देखकर बोला—“हाँ भई, याद नहीं रहा ! दस मिनट लेट हो ही गया ! कोर्ट जानेसे पहले जरा बकीलके घर नी जाना

था । मुझे तो शक्त नफरत है इस मुकदमेबाजी से । लेकिन कल क्या ? गेहूँके साथ घुन भी पिसता ही है । ये मेरे भाई लोग जो न करा लें मुझसे ! अच्छा राधा, तुम लोग निबटो सरस्वती माता से, और काशीनाथ चला नरकपुरीसे निबटने !”—कहता हुआ वह उठ खड़ा हुआ, और पेगपर टंगी हैटको शिरपर रख कमरेसे बाहर हो गया ।

मेजपर इतिहासकी पुस्तक फैलाये राधा कुर्सीपर बैठी थी। दाहिने हाथकी अंगुलियोंमें पेन्सिल थामे, हथेलीपर गाल रखकर वह विचारोंमें लीन थी। तितपहरी सूर्यकी किरणों खिड़कीसे छन-छनकर उसके विचार-विकसित चेहरेके गुलाबीपनपर एक मोहक चकाचौंध पैदा कर रही थी। वह मन-ही-मन अवाक थी इस बातपर कि कैसे कुल तीन दिनमें ही इतनी स्पष्टतासे उसके मास्टरजीने उसे सारी पाठ्य-पुस्तकें पढ़ा डालीं ! जो पहले पहाड़ लग रहा था, बिल्कुल आसान बन गया ! उसे लग तो ऐसा रहा था कि दिन-रातके परिश्रमके बिना भी, केवल मास्टरजीकी पढ़ौनीके बलपर ही वह परीक्षामें सफल हो जायगी। लेकिन चलते समय मास्टरजीने कड़ी ताकीद कर दी थी परिश्रम करके हर विषयको बुद्धिपर बैठा लेनेकी, ताकि उत्तर-पुस्तकें लिखते समय कलम जरा भी रुकने न पाये, उसे बुद्धिका अक्षुण्ण सहयोग प्राप्त होता रहे। कुल महीनाभर ही तो शेष है। केवल पास ही होना तो उद्देश्य नहीं ? श्रेणी भी आनी ही चाहिये। परिश्रममें शैथिल्य लाना बड़ी गलती होगी !

वह फिर सोचने लगी—“यह मास्टरजी भी क्या अद्भुत व्यक्ति हैं ? भैयाने बताया कि अपने संबंधकी हर बातको रहस्यके पर्देसे ढके रखनेकी उनकी आदत है। अंतिम दिन आग्रह भी किया उनके उन मुसलमान भैया-भाभीके बारेमें बतानेके लिये, किन्तु घड़ीकी ओर देख वे यह कहकर टाल गये कि ‘अब गाड़ीका समय समीप है। फिर कभी बताऊंगा।’ अच्छा, तो परीक्षा समाप्त हो लेने दूँ ! फिर भैयाके कहे अनुसार जरूर जेहाद छोड़ूँगी उनके इस आदतके खिलाफ ! उनके संबंधकी हर बात जानकर ही दम लूँगी !” फिर कुछ सोचते-

सोचते हृदयमें एक छिपी अज्ञात आकांक्षाकी लहरोंसे उसके अंग-अंगमें रोमांच हो आया।

अब वह इतिहासकी पुस्तक अलगकर गणितके प्रश्न हल करनेमें लग गई। देशके समस्त विश्व-विद्यालयोंकी मैट्रिक परीक्षाके विगत तीस वर्षोंके गणितके प्रश्न पुस्तकके परिशिष्टमें दे दिये गये थे। उन्हें वह हल कर रही थी। बिल्कुल भूली हुई थी कि दरवाजेपरसे आवाज आई—“अब जरा इधरसे भी निबटो राधारानी ! ये देखो कौन हैं ?”

काशीनाथकी आवाजसे चौककर राधाने मुड़कर देखा। देखते ही हड़बडाकर उठ खड़ी हो दरवाजेकी ओर वह दौड़ पड़ी—“नमस्ते कमला बहिन ! तुम कब आईं ? कबसे खड़ी हो यहाँ ?”—कहती उसका हाथ पकड़ खींचती हुई बड़े प्रेमसे अन्दर ले आई। दोनों एक साथ पलंगपर बैठ गईं। राधा उसके गर्दनमें लिपट गई।

“अच्छा, तुम कबसे खड़ी थी यहाँ ?”—उसकी गर्दन पकड़े ही राधाने पूछा।

“भला कैसे जानोगी तुम ?”—कमलाने मुस्कराकर जवाब दिया—“सुना है कि आज-कल तुम इस तरह पढ़नेमें पिनल पड़ी हो कि दीन-दुनिया तककी खबर नहीं रखती ? सखी-सहेलियोंके घर आना-जाना तक बन्द ? आखिर क्या करोगी इतना पढ़-लिखकर ? मैं भी तो बहुत दिनोंसे तुम्हारी राह देखती रही। हारकर आज खुद चली आई। रास्तेमें तुम्हारे भाई साहेब मिल गये। दरवाजेपर आकर उन्होंने ही इशारेसे आगाह कर दिया कि जोगनके ध्यानमें खलल न डालू ! लेकिन पाँच-सात मिनट इन्तजार करनेपर भी जब देखा कि ध्यान अपने-आप नहीं टूट रहा, तो तुम्हारे भाई साहेबने खलल डालनेकी शरारत कर ही डाली। लेकिन मेरा कोई कसूर नहीं राधारानी !”

राधा उसकी गर्दन छोड़ चुकी थी। काशीनाथ वहाँ था नहीं कि उसे उलहने देती। मुस्कराकर कमलाको ही उलहने देती बोली—

“कसूर क्यों नहीं ? तुम भी भैयाके साथ हो गई ? उन्हें तो हर बात-में मेरी खिल्ली उड़ानेकी मानो लत-सी पड़ गई है । लेकिन तुम्हें तो बोलना चाहिये था ?”

“अच्छा !”—हाथ जोड़कर कमला मुस्कुराती हुई बोली—“मेरा कसूर माफ हो रानीजी !”

“नहीं, माफ नहीं होगा !”—कहकर राधा पुनः उमकी गर्दनसे लिपट गई और आने मुन्दर ओठोंसे कमलाके मधुर ओठोंसे सटाते हुए बोली—“लो, यह कसूरकी सजा !” क्षणभरके लिये दोनोंका हृदय इस समान-जातीय चुम्बन और आलिंगनके रोमान्ससे ग्रान्दोलित हो उठा ।

अपने कमरेसे कहीं काशीनाथ न आ धमके इस संकोचके भयसे भट दोनों जरा अलग भी हो गई ।

“नाराज होनेकी बात नहीं बहन !”—कमला राधाके कोमल हाथ अपने हाथमें ले दबाते हुए मुस्कुराकर बोली—“क्या हुआ अगर हमने जरा मजा ले ही लिया ? हमारी खुशीसे तुम्हें नफरत है क्या ?”

और राधा भी मुस्कुराकर उसके कानके निकट मुँह ले जाकर—“तुम भी कम नट-खट नहीं हो भाभी ! विधाताने अच्छी जोड़ी चुनी है !”

और कमला भट उसे एक हाथसे धकेलकर अचानक चेहरेपर भाई हुई सुर्खीको मुस्कानके आवेगमें छिपाती हुई बोली—“धत् ! कूर हट ! जैसा भाई वैसी ही बहन ! राम मिलायो जोड़ी, एक साँवल एक गोरी !”

राधा मीठा धक्का खाकर पलंगपर लुढ़क पड़ी और लगी हँसने । हँस ही रही थी कि चाची नीचेसे आ गई । कमलाने भट पलंगसे उठ खड़ी होकर बड़े आदरसे चाचीके पैर छूए ।

और चाची चट उसे आलिंगनमें बाँधकर उसकी ठोड़ी छूकर बोलीं—“आखिर इतने दिन बाद तुम्हें देख पाई बेटी ! बही ओ देखा बसहारेके

मेलेमें—जब्वेमें—तबसे आज ही देख रही हैं । मामेके घरसे कब आई बेटी ?”—कहती कमलाको पलंगपर बैठा स्वयं एक बेंचपर बठकर—“सोच ही रही थी कि एक रोज आऊँगी देखने ! मगर राधा-ने आजकल घरसे निकलनेसे मानो सौगन्द खा ली है !...अच्छा, कहो तो बिटिया ! इतना पढ़-लिखके, अपनी सेहत गँवाके, परीच्छा पास करके औरतें क्या करेंगी भला ? मेने नहीं पढ़ा, तेरी माताजीने नहीं पढ़ा, तो क्या हम लोगोंका गुजारा नहीं हुआ ? आखिर हमीने तो तुम्हारी जैसी लड़कियोंको कोखसे निकाला ? अगर हम कुछ सिखियाकी बात कहें, तो तुम लोग हँस पड़ती हो!...अगर औरतें भी पढ़ा ही करें तो घर-दुआर किसके सिर रहेगा ? हमारी शोभा तो घरमें है ! जिस घरमें जायँ, वहाँकी बन जायँ ! घरका इन्तजाम, मरदोंकी देख-भाल, खाने-पिलाने और बाल-बच्चोंको सम्हालनेका काम क्या कम है हम लोगोंके लिये ? फिर पढ़-लिख के, सेहत बिगाड़ के...”

चाची बोलही जा रही थी और राधा एवं कमला छिपी आँखोंसे हँसती एक-दूसरेको देखती जा रही थीं । कमला पेशावरके रायबहा-दुर वंशीधर कपूरकी एकमात्र कन्या थी । लड़के तो कई थे, पर लड़की यही एकमात्र होनेके कारण कमला बड़े लाड़-प्यारमें पली थी । यद्यपि काशीनाथ और कमलाकी पारिवारिक आर्थिक स्थितिमें कोई समानता न थी, किन्तु काशीनाथ जैसा प्रतिभावान सुदर्शन नवयुवा कमला या कमलाके माँ-बापके लिये उपेक्षाका पात्र न था । जिसने बी० ए० प्रथम श्रेणीमें पास की हो; जो आई० सी० एस० की तैयारी कर रहा हो; महत्वाकांक्षी हो; जिसमें स्वास्थ्य और सौन्दर्यका सुन्दर समन्वय हो; उसे भला कौन नव-युवती नापसन्द करेगी ? और कौन माँ-बाप नापसन्द करेगा ? वर्षोंसे कमला और काशीनाथ एक-दूसरेके प्रति झुक भी रहे थे, और अब तो निश्चित हो चुका था कि इंग्लैंड-से वापिस आते ही दोनों संसार-धर्ममें प्रविष्ट हो जायेंगे । कमला भी सामान्य कन्या न थी । वह भी थी प्रतिभाकी पुतली ही । डाक्टरी पढ़

रही थी। उम्रमें काशीनाथसे पाँचक साल कम थी। स्वस्थ और सुन्दर। सुशील भी। क्योंकि नये प्रकाशमें आकर भी वह पुराने विचारके लोगोंसे घृणा अथवा अवज्ञाका व्यवहार नहीं करती। उसे काशीनाथके घर अकेले आने-जानेमें रुकावट भी न थी। जब वह आती चाचीजीको पुराने ढंगसे ही अभिवादन करती। जरा भी अहंभाव या उच्छृंखलताका प्रदर्शन न कर उनकी बातें सुनती, अपनी सुनाती।

चाची बोल ही रही थीं कि उधरसे काशीनाथ आ गया। बोला—“तुम्हारी कमलारानी तो देशभरके तीर्थोंका चक्कर लगा आई है, चारोंधाम का, चाची !”

“अच्छा !”—चाची आश्चर्यसे उल्लसित होकर बोलीं—“तो तीर्थ भी कर आई ? चारों धाम हो आई बिटिया ?”

“नहीं चाचीजी !”—कमलाने प्रतिवाद किया—“चारों धाम नहीं, सिर्फ तीन ही धाम ! बदरी-केदारकी यात्राका अभी मौसम नहीं था। बाकी सब देख आई है।”

“अच्छा, तो कैसे चली गई तीरथ करने और हम लोगोंको खबर तक नहीं दी ?”

“बनारससे ही चली गई चाचीजी ! मामाके घरके लोग जा रहे थे। उन्होंने जोर डाला। मेरी इच्छा थी ही। अन्धेको चाहिये दो आँखें। यों चलते वक्त बिट्टी तो मैं डालती गई थी।” फिर काशीनाथकी ओर लज्जा-लसित आँखोंसे देखकर—“क्यों ? बिट्टी नहीं मिली आपको ?”

“नहीं मिली ! रास्तेमें ही खो गई होगी !”—कहकर काशीनाथ झट कमरेसे निकल गया।

राधा हँस पड़ी, और चाची भी मुस्कुरा उठीं।

अचानक उत्पन्न लज्जाके वातावरणको दूर करती कमला बोली—
“बड़ी अच्छी-अच्छी जगहें देखीं चाचीजी ! जगन्नाथपुरी, सेतुबन्ध
मारी, द्वारकाधीश। और भी बहुत-बहुत चीजें !

बड़ा मजा रहा चाचीजी ! तरह-तरहके लोग, तरह-तरहके पहिनावे, तरह-तरहके खान-पान, तरह-तरहके रूप-रंग, और तरह-तरहकी बोलियाँ ! समुद्र देखा; समुद्रकी लहरें देखीं; समुद्रपर चलते हुए बड़े-बड़े जहाज देखे; बड़ी-बड़ी नदियाँ देखीं; झील और सरोवर देखे ! और.....”

और उधरसे पुनः काशीनाथ आकर भट बीचमें ही बोल पड़ा—
“और, मैंने कमलाके मामे देखे; मामियाँ देखीं; भाभी और भतीजियाँ देखीं ।”

राधा खिलखिलाकर हँस पड़ी और कमला भी । चाची लेकिन जरा कृत्रिम नाराजीके स्वरमें—“तू कहाँसे बीचमें आ टपका रे ?”

“आसमानसे चाची !”—कहकर मेजके पास कुर्सीपर वह जा बैठा । फिर बोला—“तुम्हारी कमलारानी शायरी कर रही थीं चाची ! तो मैंने भी दो तुक जोड़ दिये तो बुरा क्या किया ? माराज क्यों हो उठीं ?”

पुनः एक सामूहिक संयत हँसीके कहकहेसे सारा कमरा गूँज उठा । चाची कमलाको लक्ष्यकर प्यारभरे स्वरमें मुस्कुराती हुई बोलीं—
“देख तो बेटा, इस हरबोंगेकी चाल ! यह जनमभर ऐसा ही रह जायगा । जरा इसे पीट-पाटकर दुरुस्त रखना !”

सुनकर कमलाकी कनपट्टी तक लाल हो उठी । उसकी आँखें झुक चलीं । काशीनाथने देखा कि राधाका चेहरा शरारती मुस्कानसे मानो फूट पड़ना चाहता है । उसने जरा क्रोधका अभिनय करते हुए कहा—“तुम मुझे नहीं न बैठने दोगी चाची ?”—कहकर वह जानेके लिये उठ खड़ा हुआ ।

“बैठ !”—चाची मुस्कुराकर प्यारके स्वरमें मना करती हुई बोलीं—
“हो क्या गया ? क्या मैं अपने बच्चोंके साथ जरा हँसनेसे भी गई ?”

लेकिन काशीनाथ कमरेसे बाहर हो गया था । चाची चिल्लाई—
“अरे काशी ! काका ! इधर तो आ बेटा ! एक जरूरी बात कहनी है

तेरेसे !”

फिर भी काशीनाथ नहीं मुड़ा। चाचीने राधाको इशारा किया। वह भट दौड़ी जाकर काशीनाथका हाथ पकड़े उसे खींचती ले आई।

वह कुर्सीपर बैठकर बोला—“कहो, क्या कहना है ?”

चाची अपने परिहास-तरल चेहरेको जरा गंभीर बनाकर बोलीं—
“बेख, कमल तो देशभरके तीरथ कर आई। बड़ी अच्छी-अच्छी बातें सुना रही थी कि तू बीचमें ही टपक पड़ा। बोल, अपन कब चलेंगे ? कब चलेंगे चारों घाम करने ?”

“जरा राधाकी इम्तहान खत्म होल्लेने दो चाची ! फिर सब जने साथ चलेंगे। बिलायत रवाना होनेसे पहले तुम्हें सब कुछ दिखाके जाऊंगा !”

चाची तुनककर बोलीं—“यह बिलाइत जानेकी क्या बला तूने घुसा ली अपने मगजमें ? जब देखो तब बिलाइत ! वही बिलाइतकी बात ? क्या बिलाइत गये बगैर कोई बड़ा नहीं बनता ? कमलके पिताजी कौनसे बिलाइत गये ? मगर उनसे बड़ा आज कौन है पेशावरमें ?”

“मे बड़ा बनने बिलायत नहीं जाऊंगा चाची ?”

“तो क्या करने आयगा ?....बहू लाने ?”

फिर एक बार सामूहिक हँसीके फीव्वारेसे सारा कमरा खिल उठा।

“चाची !”—राधा जरा शरारती मुस्कुराहटके साथ बोली—
“जुहारी बहू-रानी भी साथ बिलायत जा रही हैं, भैयाजीपर नजर रखने। डरो नहीं चाची !”

कमला चेहरेपर सुर्खी लिये राधाकी ओर जरा लपकी, किन्तु वह पहलेसे ही सामंजस थी। हँसती हुई कद जरा पीछे खिसक गई।

काशीनाथने कहा—“मे बिलायत जाऊंगा कुछ सीखने चाची ! कुछ किन बड़ा बनकर बड़े कोर्भोंकी पोख जानूंगा। फिर वापस जाके देशकी सेवा करूंगा ! सच नहीं ?”

“सच नहीं क्या बात ! यह देश-सेवा भी तो वही चीज है ! कैसे समझाऊं तुझे ? मेरी बात मानता कौन है ? सेवाकी सेवामें सोम जाऊँगी

खाते हैं, जेल जाते हैं। और भी.....नहीं बेटा, हाथ जोड़ती है। यह सब न सोचा करो बेटा !”—कहते-कहते उनकी आँखें सजल हो उठीं।

“तुम तो हर ऐसी बातमें रो पड़ती हो चाची !”—काशीनाथने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा—“तुम यह क्यों भूल जाती हो कि लाठी खानेवाले, जेल जानेवाले भी तो किसी माँकी ही आलाद हैं ?”

चाची चुप हो गईं। चुपकेसे बोलीं—“जिसके बहुतेरे हों, एक जेल भी चला गया तो क्या ? मगर मैं तो सोचके मारे मरी जा रही हूँ कि तू बिलाइत चला जायगा। फिर मैं कैसे रहूँगी ?”

उनकी आँखोंसे चट दी बड़े बूँद झर पड़े। काशीनाथ भट चाचीकी बगलमें बेंचपर जा बैठा। चाचीके पैर छूकर बड़े प्यार-भरे स्वरमें बोला—“तुम रोओ मत चाची ! इसीलिए तो राधाको तुम्हारे पास छोड़े जा रहा है। जैसा बेटा, वैसी ही बेटी ! अगर मान गया, तो राजनसे भी कहूँगा कि वह तुम्हारे ही पास रहे।”

सुनकर मन-ही-मन राधाको बड़ी प्रसन्नता हुई। चाचीने कहा—“मगर तू तो चला ही जायगा ?...और इस राजनका ही क्या भरोसा ? यह तो तुझसे भी अगिया-बैताल है। सुनती है अभीसे गाँधीजीकी सुराजी लड़ाईमें शामिल होनेकी तैयारीमें है। इसीसे पढ़ाई-लिखाई भी छोड़ बैठा है।”

“इसीसे तो अभाग बिलायत न जा सकेगा। सोचा था, दोनों साथ जायेंगे। कितना अच्छा रहता !...अच्छा चाची ! तुम भी चलो न बिलायत ? राधा भी चलेगी। सब जने साथ-साथ रहेंगे ! कितना अच्छा रहेगा !”

“हाँ भैया !”—राधा उल्लसित होकर बोल पड़ी—“रहेगा बड़ा अच्छा !” फिर कमलाकी ओर देखकर मुस्कुराती हुई—“और अभी भी साथ रहूँगी ! सारा घर-बार ही साथ रहेगा !”

कमलाने इस बार सबकी आँखें बचा राधाको कसकर एक चकोटी

काट ली। राधा चिहूँक उठी। व्यथाको दबा, हँसकर जरा पीछे खिसक गई।

“देख तो भला इस लड़केकी अक्कल !”—काशीके प्रश्नके उत्तरमें चाची बोलीं—“मे भला इस चौथेपनमें जाऊँगी बिलाइत ? अपने धरम-करमसे हाथ धोने ? ” फिर कमलाकी ओर लक्ष्यकर—“सच्ची बिटिया, भ। रही है बिलाइत ? मगर औरतें क्या करेंगी बिलाइत जाके ?...यह सब अंग्रेजी पढ़नेका कुफल है। सबकी मत-गत खराब कर दी है इस पढ़ाईने।”

चाचीको छोड़ तीनों जने खिलखिलाकर हँस पड़े। चाची बेचारी दब गई।

अब चाची राधाको लक्ष्यकर उपालंभके स्वरमें बोलीं—“पता नहीं तुझे भी कब अक्कल आयेगी राधा ! इतने दिनपर तो कमल-बेटी आई, और तुमने नाश्ता-पानी तकके लिये नहीं पूछा ? आते ही लगी हँसने ! और सब भूल गई !”—कहकर नौकरको आवाज देती वे दरवाजेकी ओर उठ चलीं।

“नहीं चाचीजी !”—कमला उन्हें मना करती हुई बोली—“अभी-अभी तो घरसे चाय पीके चली हूँ। परेशान न हों आप।”

“परेशान क्यों होऊँगी बिटिया !”—चाची मुड़कर बीलीं—“चाय भी कोई चीज होती है ? वह तो पानी है। अब तक गल-पचकर खतम भी हो गई होगी। और घर तुम्हारा कौन नजदीक है ? सदर यहाँसे पूरे तीन मील दूर है। आते-आते भूख तो लगी ही होगी !”

“हाँ चाची !”—काशीनाथ बीचमें ही बोल पड़ा—“इन्हें न लगी हो, मुझे तो लगी ही है।” फिर पेटपर हाथ फेरते हुए—“बड़े जोरकी लगी है चाची ! जरा मँगाओ माल-वाल अच्छी तरह।”

“तू तो जनमका पेढू ही रहा !”—कहकर वे स्वयं नीचे चली गईं। बीसेक मिनट बाद नौकरके हाथ ट्रे में चायका सरंजाम तथा स्वयं एक थालमें कुछ फल, मिठाई और नमकीन लिये वहाँ आ पहुँचीं। तब

तक राधा, कमला और काशीमें राजनके बारेमें बातें छिड़ी थीं ।

“अब बातें छोड़ !”—चाची राधासे बोलीं—“उठ ! मेहमानको नाश्ता-पानी करा !”

राधाके उठनेसे पहले ही कमला उठ खड़ी होकर बोनी—“मैं मेहमान हूँ चाचीजी ? मे ही सबके लिये ठीक किये देती हूँ ।”

राधाने भट मेजपरसे पुस्तकें हटाकर उसपर एक साफ मेजदान फैला दिया । कमलाके साथ मिलकर सारी चीजें सजा दीं । फिर तीनों जने बैठ गये । चाची अलग बेंचपर बैठ गईं ।

सबका चाय-पानी आरंभ हुआ । चाची बोलीं—“काशी, तू तो विलाइत चला जायेगा, फिर राधाका क्या परबन्ध होगा ? क्या यह यों ही पड़ी रहेगी ? उमर बीतती ”

राधा बीचमें ही झुल्लाकर बोली—“तुम भी चाची, जब-तब ऐसी ही बातें छेड़ देती हो ! जैसे पेटका पानी ही नहीं पचता !”

चेहरेपर उभरी सुखीको छिपानेका प्रयत्न करती नीची निगाह किये वह चाय पीनेमें लग पड़ी ।

कमला अपनी कोमल अंगुलियोंसे एक बार उसे खरोंचा देकर मुस्कुराती हुई बोली —“अपनी बार चीख क्यों पड़ी राधारानी ?” फिर चाचीको उद्देश करके—“हाँ चाचीजी, कोई इतजाम हो ही जाना चाहिये इनका ! नहीं तो हम सहेलियोंकी जान खा लेंगी !”

“कई बार तो बता दिया चाची !”—काशीनाथ भी झुल्लाकर बोला—“कि राधा अपना वर आप चुनेगी । स्वयंवर रचायेगी । क्या पड़ी है हम दोनोंको सिर खपानेकी, फिकरसे मरनेकी ? हमारा फर्ज है पढ़ा-लिखा देनेका । सो पढ़-लिख रही ही है । इसके बाद वह जाने, उसका काम जाने ।”

चाची भी झुल्लाकर बोलीं—“जब भी कहूँगी, वही एक रटा-र टाया जवाब सुना देगा ! जाने आजकलके लड़के-लड़कियाँ भी क्या बनते जा रहे हैं ?”

अब काशीनाथ जरा गम्भीरतासे बोला—“तुम समझती हो चाची, कि तुम्हारी राधा अब तक वही चारसहेंकी राधा है ? लेकिन यह क्यों नहीं सोचतीं, कि उस राधा और इस राधामें आज जमीन-आसमानका फरक पड़ गया है ? आज राधा हजारों वर्ष पहलेके युगकी बात जान गई है; मौजूदा युगकी बातें जानती है; और आनेवाले युगके बारेमें दिन-रात सोचा करती है। सतरह-अठारहकी उम्र आजके युगमें कोई बड़ी बात नहीं मानी जाती चाची ! मैं जब तक लौटकर आऊंगा कोई ज्यादा फर्क नहीं पड़ेगा। फिर भी यह राधाकी मर्जीपर ही मनहसर करता है कि वह शादी करे या न करे। और अगर अब भी वह अपनी मर्जीसे किसीको पसंद कर ले, उससे शादी कर लेना चाहे, तो हमारा यह फर्ज नहीं कि बीचमें किसी भी तरहका अड़ंगा खड़ा करें।”

सुनकर राधाका मन नाच उठा। अपने भैयाके प्रति स्निग्ध कृतज्ञताके भावसे उसका रोम-रोम पुलकित हो उठा। लेकिन शिर नीचा किये चुपचाप नाश्ता करनेमें लगी रही। कमलाने फिर धीरेसे एक मीठी चकोटी उसे काट ली।

“तो जनमभर क्वारी ही रहेगी ?”—चाचीने निराश होकर कहा।

“यह भी उसकी मर्जीपर ही मनहसर करता है।”—काशीनाथने दृढ़ स्वरमें जवाब दिया—“आजकल पढ़ी-लिखी बहुतेरी लड़कियाँ जीवनभर क्वारी ही रह जाती हैं। उस बार राधाकी बीमारीमें जो बंगालिन लेडी डाक्टर आई थी वह अब तक क्वारी ही है।”

“अब तक क्वारी ही है !”—चाचीने शिर ठोककर आश्चर्यभरे स्वरमें कहा—“हे भगवान्, यह कौन-सा जमाना आ रहा है !”

“फिर न करो चाची ! जमाना अच्छा ही आ रहा है। तुम्हारे जमानेमें औरतें पढ़ती नहीं थीं। वे डाक्टर-हकीम भी नहीं थीं। हाकिम-हुक्काम भी नहीं। उनके जीवनोंकी सबसे बड़ी कामयाबी समझी जाती थी शादी और अच्छा घर-बार। लेकिन आज-कलकी औरतें तो शादीके अलावा और भी बहुत कुछ सोचने और समझने लगी हैं।

आज औरतें भी ऊँचे-ऊँचे ओहदों पर पहुँचने लगी हैं, मर्दों के बरा-बरी का दर्जा लेने लगी हैं, और आगे भी बहुत कुछ करनेवाली हैं। तुम्हारी राधा इसी आनेवाले जमाने की औरत है चाची !”

“अच्छा,”—चाची निराश होकर बोलीं—“अब कुछ न बोलूँगी तुम लोगों के बीच। मेँ मूख क्या जानूँ दुनिया की बात ? मगर इतना जरूर जानती हूँ कि यह काम अच्छा नहीं है ! जैसा समझो करो ! अब बुझिया कुछ न बोलेंगी।.....जैसा भाई, वैसी ही बहिन !”

इस बार फिर सम्मिलित हँसी के हादिक भंकार से सारा कमरा गूँज उठा।

“चाची !”—वाशीनाथ मुस्कुराते हुए बोला—“तुम्हारी राधा अब राजन की पक्की चेली बनती जा रही है। जैसे दुनिया भर की पण्डिताई उसमें भरी हुई है, राधा के दिमाग में भी सारी पण्डिताई वह भर देना चाहता है। देखतीं नहीं राजन के पढ़ाने का प्रताप ? आजकल राधारानी दिन भर किताबों की कीड़ा बनी रहती है, और जाने क्या-क्या सोचती भी रहती है !”

“तो यह राजन मेरा घर बिगाड़ रहा है ?”—चाची जरा खूबे स्वर में बोलीं—“तो, अब उसे यहाँ पैर भी न रखने दूँ !”

सुनते ही राधा की त्योरियाँ तन गईं। आँखें तरेरकर बोली—“क्या बोल रही हो चाची ?....यह अपने घर का सुभाग समझो, कि मास्टरजी जैसे आदमी के यहाँ पैर पड़ते हैं !”

राधा की ओर देखते ही चाची सहम गईं ! उसकी तनी त्योरियाँ और तरेरी आँखें देखने का उनके जीवन में यह पहला अवसर था।

उरे स्वर में वे बोलीं—“नहीं भाई, अब मैं कुछ नहीं बोलूँगी !...क्या जाने कैसा जमाना आ गया। हम लोगों का भी जमाना था। क्या मजाल कि लड़कियाँ....अच्छा भाई !”—कहकर जरा भरे दिल से उठ खड़ी हुईं। मेज की तरफ देखकर बोलीं—“हाँजी, कुछ और मँगवा दूँ ?”

चाय-वाय, मिठाई-सिठाई ?”

“नहीं चाचीजी, अब कुछ नहीं।”—कमलाने मना किया।

“तुम तो जानती ही हो चाची,”—काशीनाथने टिटकारी भरी—
“कि तुम्हारा काशी जनमका पेटू है ? कभी ‘ना’ करना जानता ही नहीं?
लेकिन कमलारानी भी ऊपरके दिलसे ही बोल रही हैं। इनकेलिये कुछ
भेंगाओ तो मैं भी शामिल हो जाऊँ।”

इस बार चाची भी हँसे बिना न रह सकीं। हास्यकी खुशी ध्वनि-
से वातावरण एकाएक हल्का बन गया।

कमला अब तड़फड़ निषेध करती बोली—“नहीं चाचीजी ! बहुत
खा चुकी ! मुझे बड़ी देर हो रही है ! फिर किसी दिन आपके दर्शन
करूँगी !”—कहकर हाथ जोड़ उठ खड़ी हुई।

“देखिये भैया !”—राधा चुटकी लेते मुस्कुराकर बोली—“अभीसे
आपसे दगा ?”

कमला केवल हाथ और चेहरेसे मौन मीठी फटकार जताकर चुन
रह गई।

“होती ही तुम लोग दगावाज हो भाई !”—कहकर काशीनाथ भी
रूमालसे हाथ पोंछता उठ खड़ा हुआ। बोना—“राधा, उठो ! भट
तैयार हो लो !...मैं और राधा इन्हें घर छोड़ आते हैं चाची !”

काशीनाथ अपने कमरेमें चला गया। राधा भट तैयार हो गई।
कमलाने चाचीके चरण छुए। तीनों जने पीड़ियोंसे उतरते गलीमें
आकर तांगेके उद्देश्यसे चौके-बजारजाँकी ओर चल पड़े।

राजन बनारसके बेनिया-वागके एक निजंन कोनेमें बेंचपर बैठा एक युवतीसे बातें करनेमें तल्लीन था । युवतीकी उम्र बीससे अधिक न होगी । उसके घने-सांवले चेहरेपर खिची-उभरी आँखें, और आँखोंकी किनारियोंमें निखरती हल्की लाली उसकी सहजात प्रतिभाकी गवाही दे रही थी । हरी किनारीकी स्वच्छ-सफेद खादीकी साड़ी, और छींटकी चोलीमेंसे रह-रहकर भाँकता हुआ शरीरका श्याम सौन्दर्य, और पैरोंमें हिमालया कंपनीकी मामूनी चप्पल, और बदनमें आभूषणके नामपर कुछ नहीं, मात्र एक सुनहले केसकी कलाई-घड़ी ।

“लीला!”—राजनने एक बार अगल-बगल भाँककर धीरेसे कहा—“इस छोटी-सी बातके लिये मुझे परेशान करनेकी जरूरत तो न थी ?”

“तुम इसे छोटी बात समझते हो राजन ?”—लीला अपनी बड़ी-बड़ी आँखोंमें आश्चर्य भरकर बोली—“लेकिन मेने तो इसे अपने जीवनकी सबसे कठोर घड़ी समझकर ही तुम्हें याद किया है ।” फिर जरा रुककर—“दूर-दूर तक मनकी आँखें फँलाकर देखा राजन, पर सिवा तुम्हारे अपना कोई नजर नहीं आया !”—कहते-कहते एकाएक उसकी आँखें भर आईं, गला भर आया !

“लेकिन तुम इतनी परेशान क्यों हो रही हो लीला ? मुझे तो इस बात पर कतई विश्वास नहीं कि कोई भी कामुक किसी स्त्रीका सतीत्व तब तक भंग कर सकता है जब तक कि स्वयं उस स्त्रीकी उसमें खुली या छिपी सहमति न हो । और यह भी विश्वास नहीं होता कि लीला जैसी लड़की किसी भी बलात्कारके आगे घुटने टेक देगी ।”

“तो मैं झूठ बोल रही हूँ ?”—लीला इस बार कड़े स्वरमें बोली ।

“नहीं नहीं, तुम झूठ नहीं बोल रहीं । लेकिन मेरे कहनेका तात्पर्य यह है कि तुम वहाँ बनी रहकर भी अपनेको बचाये रख सकती हो ।”

“नहीं राजन !”—लीलाने दोनों हाथोंसे अपना मुँह और आँखें ढककर भरे स्वरमें प्रतिवाद किया—“अभी तुम नहीं जानते इन सब बातोंको ! नहीं तो, एक ऐसे व्यक्तिके सम्बन्धमें, जिसका मैं अब भी आदर करती हूँ; जिसके उपकारोंके भारसे दिल अब भी दबा हुआ है; तुम सरीखे अपनेसे भी ऐसी बातें बता सकती ? मैं इतनी नीच नहीं हूँ राजन ! जब देख लिया है कि.....”

लीला रुक गई । राजन भी चुप रहा । पाँचेक मिनट बाद लीला अपने चेहरेपरसे हाथ हटाकर सीधी हो गई । अपनी भरी आँखोंसे भरे स्वरमें बोली—“मैं जानती हूँ राजन, कि कोई भी स्त्री इच्छा करनेपर मरते दम तक अपना सतीत्व कायम रख सकती है, लेकिन, लेकिन मैं क्या करूँ ? यहाँ तो.....”

फिर कमरसे अंडरबियरमें छिपी नौ इञ्चकी एक चमकती छुरी निकालकर बोली—“किसी औरके साथ इससे भी निबटा जा सकता है, दाँतों और नाखूनोंसे भी काम लिया जा सकता है, लेकिन यहाँ तो सिवा मोन प्रतिवादके और कोई चारा ही नजर नहीं आता । इस महापंडितके सामने किसी नीति-वाक्य अथवा तर्कका जोर भी तो नहीं चलता । उफ् ! मैं नहीं जानती थी कि कामुकता इतनी ऊँचाईपर पहुँचे मनुष्यको भी इस प्रकार नीचे गिरनेपर उतारू कर देगी ।”—कहकर वह शिर नीचाकर बैठ गई ।

राजन भी एक बार लीलाकी ओर देख फिर शिर झुकाके विचारोंमें लीन हो गया । कामुकता ऊँचाईपर पहुँचे मनुष्यको भी कभी नीचे गिरनेपर उतारू कर देती है—इस मंतव्यमें कितना तथ्य और सत्य छिपा था वह राजनसे स्वयं भी छिपा न था । अपने अध्ययन और

अभिज्ञता, अपने विचारों और बहुत कुछ आचारोंसे भी इस पच्चीसकी उम्रमें ही वह स्वयं भी बहुत, बहुत ऊँचाईपर पहुँचा व्यक्ति माना जाता था, किन्तु उसके विशाल हृदयके किसी कोनेमें छिपी कामुकताकी यह काली छाया किसी आलंबनको पाकर उसके मनपर छाकर जब उसे बेचैन बना देती, तब उसे दूर करनेके लिये, इस काली छायासे छुटकारा पानेके लिये अपने-आपसे उसे कितना संघर्ष करना पड़ता ! किन्तु फिर भी, उसे आश्चर्य इस बातपर हो रहा था कि पंडित रमाशंकर जैसा वयोवृद्ध विद्वान्, पत्रकार, लेखक और समाजसेवी बचपनसे अपनी ही गोदमें पली अपनी धर्म-कन्यापर इस प्रकार दुरासक्त हो जाय ! इस प्रकार नीचे गिरनेपर उतारू हो जाय ! जब उन्होंने उस पाँचसाला अनाथ बालिकाको अनाथालयसे लाकर अपनी गोदमें सस्नेह आश्रय देकर उसके धर्म-पिताका स्थान ग्रहण किया था, समाजके समक्ष कितना ऊँचा आदर्श रखा था उन्होंने ? शादियाँ वैसे दो कीं, और दोनों-की-दोनों चल बसीं। दूसरी पत्नी तो अभी सालभर ही पहले गुजरी थी। अपनी औरस सन्तानका मुख देखनेके सौभाग्यसे यद्यपि वे वंचित रहे, किन्तु लीलाको तो उन्होंने अपने उसी औरस स्नेहसे पाल-पोसकर, पढ़ा-लिखाकर बड़ी किया था ? उनके मनमें पहले कभी इस काले विचारने प्रवेश भी नहीं किया, जो अब उन्हें दिन-रात बेचैन किये रहता ! अपनी धर्म-सन्तानके आगे इस प्रकार उपहसनीय बननेपर मजबूर कर देता ! और सबसे अधिक आश्चर्य तो यह कि वे अब इस साठसाला उम्रमें बीससाला लीलासे अपने साथ विवाहका प्रस्ताव तक कर रहे थे ! और अपने इस प्रस्तावके समर्थनमें सारी दुनियाकी दलीलें पेश कर देते ! किन्तु जब लीला कहती—“पिताजी, आप सामान्य मनुष्योंमें नहीं। आपकी सच्ची धर्म-पुत्री होनेके नाते मैं कभी भी, किसी भी तरह आपको दुनियाकी नजरोंमें गिरने नहीं दूँगी!” तब रमाशंकर अपने काम-विकृत स्वरमें उसे जवाब देते—“यह पिता-पुत्रीकी बात छोड़ लीला ! कौन किसका पिता और कौन किसकी

पुत्री ? मेरा तो कोई रक्त-सम्बन्ध भी नहीं तुमसे, लेकिन तुम्हें यह पता नहीं कि यह सारी सृष्टि एक ही माँ-बापके वज्जोंसे शुरू हुई है। बाप बेटीपर अनुरक्त हुआ, और बेटी बापपर।” और इसके समर्थनमें वैदिक एवं पौराणिक कथाओंके अनेक उदाहरण भी पेश कर देते। देवी-देवताओं और ऋषि-मुनियोंकी कामुकतासे अपनी कामुकताकी तुलना कर बेते। लीला उनकी इन प्रवृत्तियोंकी आज छः महीनेसे सविनय विरोध करती आ रही थी, किन्तु अन्तमें कोई चारा न देख अपने बाल्य-बन्धु राजनसे पत्र लिखकर सहायता माँगनेपर बाध्य हो गई थी।

राजन अभी पाँच साल पहले तक बनारसमें ही था। वह बचपनसे ही पंडित रमाशंकरके घर आया-जाया करता। लीलाको पढ़ाया करता। मौके-बेमौके पंडित रमाशंकर उसकी अतिरिक्त आर्थिक सहायता भी किया करते। सो, लीलाकी बातें सुनकर कुछ देर चुपचाप सोचते रहनेके बाद वह बोला—“तो बताओ, मुझे क्या करनेको कहती हो तुम ?”

“कहती यही हूँ कि इस पापमय परिस्थितिसे मेरा उद्धार करो ! इस मेरे उद्धारके साथ एक अन्य व्यक्तिका उद्धार भी जुड़ा हुआ है, जिसे मैं अब भी प्यार करती हूँ, सम्मान करती हूँ। मैं नहीं चाहती कि इस काली कमजोरीके वश होकर वह दुनियाकी नजरोंमें गिर जाय !”

“तुम बार-बार वही एक बात क्यों दुहरा रही हो लीला ? यह बिल्कुल तुम्हारे अपने वशकी बात है कि उस व्यक्तिको दुनियाकी नजरोंमें गिरनेसे बचा लो ! मनुष्य भला क्या मनुष्यका उद्धार कर सकेगा ?”

“अच्छा !”—लीला क्षणभर आवेशकी आँखोंसे राजनको देखती रहकर जरा आवेशके स्वरमें बोली—“तो तुमसे कोई आशा न रखूँ, यही न ? अच्छी बात है। मैं स्वयं समझ लूँगी। तुम्हें इतना कष्ट बेकर बड़ा अपराध किया राजन ! मुझे माफ करना।”—कहकर वह चट उठ खड़ी हुई और हाथ जोड़कर—“अच्छा, नमस्ते !”—इतना

कहकर एक ओर चल पड़ी ।

वह दो पग भी आगे बढ़ी न होगी कि भट राजनने लपककर उसका हाथ पकड़ लिया—“तुम्हारी यह तुनक-मिजाजी आज भी दूर नहीं हुई लीला ! गुस्सा जैसे हरदम नाकपर ही सवार रहता है !”—कहते हुए उसे खींचकर पुनः बेंचपर ला बिठाया । उसका हाथ पकड़े ही उसने फिर पूछा—“कहो, क्या चाहती हो मुझसे ?”

राजनके इस हस्त-स्पर्शसे लीलाके अङ्ग-अङ्गमें जैसे बिजली कौंद गई । वह झटपट बोली—“तुम भी तो बार-बार यही एक प्रश्न दुहरा रहे हो ?”—कहकर उसने स्निग्ध आँखोंसे राजनको देखा ।

राजनने भी देखा और मुस्कुरा दिया ।

लीला बोली—“मैं चाहती हूँ कि अभी जिस प्रकार तुमने यह हाथ पकड़ रखा है, जीवनभर पकड़े रहो !”

“क्या ?”—राजनके स्वर और आँखोंसे आश्चर्य फूट पड़ा ! उसने भट लीलाका हाथ छोड़ दिया ।

उसके सहसा चौंक उठनेपर लीला ओठोंपर एक सूखी मुस्कुराहट लाकर व्यंग्य-भरे स्वरमें बोली—“तो इसी हिम्मतपर हाथ पकड़ने चले थे आप ? अच्छा, नमस्कार !”—कहकर वह पुनः उठ खड़ी होकर बड़े वेगसे चल पड़ी ।

राजन हक्का-बक्का रह गया ! इस तेजस्विनी स्वाभिमानीनी महिला-से बचपनसे ही परिचित होनेके कारण उसके स्वभावसे भी वह परिचित था । उस प्रकार लीलाके उठकर चल देनेपर कुछ देर भौंक्का-सा अपने-आपमें खोया रहा, किन्तु एकाएक आशंकाके एक खरोंचेने उसे भट सचेत कर दिया । उसने सोचा, कहीं लीला निराश होकर कुछ कर न बैठे । वह तड़फड़ उठकर बड़ी तेजीसे उसी ओर चल पड़ा, जिस ओर अभी दो मिनट पहले लीला चली थी । लेकिन ज्यों ही वह दस-बीस कदम आगे बढ़ा कि देखता है लीला मुड़कर बड़े वेगसे उसीकी ओर चली आ रही है । किन्तु लीलाको आवेशमें यह ख्याल भी न रहा

कि वह राजनके बगलसे ही गुजर रही है। उने ध्यान तब आया जब राजनने उसे दबे स्वरमें टोका—“लीला ! तुम पागल तो नहीं हो गई ?”

लीला चौंककर खड़ी हो गई। सामने राजाको खड़ा देख बोली—“हाँ, पागल हो गई हूँ !”—कहकर उसने हाथसे इशारा किया—“देखो, वह कौन आ रहा है ?”

राजनने भट नजर दीड़ाकर उस तरफ देखा। बागके दूसरे छोरपर हाथमें छड़ी हिलाते, धीरे-धीरे इस ओर आते दो मूर्तियों को देखा। जरा गौरसे देखकर वह बोला—“यह तो पंडित रमाशंकरजी लग रहे हैं !” “अच्छा, तो भगी कहाँ जा रही हो ? अभी तुमसे बहुत कुछ कहना है !”

“अब कुछ मन कहो ! बहुत कुछ कह चुके !”—कहती वह फिर द्रुत गतिसे आगे बढ़ चली।

“तुम बहुत जल्द रुठ जाती हो लीला !”—राजन उसका पीछा करते जरा कोमल-मीठे स्वरमें बोला—“मे अब तुम्हें छोड़ता नहीं। चलो दशाश्वमेधको। वहींपर बैठकर बातें करेंगे।”

लीला कुछ आश्वस्त हुई। उसकी गतिमें कुछ कमी आ गई। दोनों बागसे बाहर सड़कपर आ गये। फिर जल्दी-जल्दी दशाश्वमेधकी ओर चले। रास्तेमें मोन ही रहे। गोदीलिया चौक पार करते, वित्तरंजन पार्कके दायें बगलसे गुजरते सीधे घाटपर जा पहुँचे।

तब संध्याके लगभग पाँच बज रहे थे। घाटकी सजीवता उतरोतर बढ़ती जा रही थी। एक छोरसे दूसरे छोर तक लोंनों की भीड़ जमती जा रही थी। मन्दिरोंके पुजारी तांबे-पीतलकी कलश और पूजा-पात्र लिये घाटकी ओर बढ़ रहे थे। घाटोंके चौड़े तस्तोंपर जमकर बैठे घाटियोंकी टोलियाँ यजमानोंकी टोहमें थीं। बाँसके विशाल छातोंके नीचे उनके आगे चंदन, भस्म, रोली और दो-टकड़ी आइने सजाकर धरे थे। गंगामें लगे हुए तस्तोंपर जहाँ-तहाँ लोग सन्ध्योपासनमें लगे

थे । कुछ लोग दीन-दुनिया की बातों और सरस मनोविनोदमें मशगूल थे । कुछ लोग चुभक-चुभककर गोते लगा रहे थे । और घाटके उपरी हिस्सेमें एक नंग-धड़ंग काक-सा काला महात्मा गौग्रों की घास खिलानेमें मस्त था । कुछ दूर आगे चैतन्यदेवी संप्रदायका बंगाली कीर्तनिया अपनी मंडलीके साथ मृदंग और करतालपर कृष्ण-लीलाके पद गा-गाकर कीर्तन कर रहा था । और यहाँ भी अपनी प्रान्तीय विशेषताओंसे चिपके हुए बंगाली नर-नारी सीढ़ियोंपर ऊपरसे नीचे तक कतारोंमें बैठे बड़े मनोयोगसे उस कीर्तनका आस्वाद ले रहे थे । और कुछ दूर आगे चलकर आज शीतला-मन्दिरके आगेका नजारा तो देखने ही योग्य था ।

आज माता शीतलाका जन्मोत्सव था । नगरके सारे प्रसिद्ध गवैये—रामदास, श्यामदास और मनोहरलाल आदि, तथा प्रसिद्ध वेश्याएँ—विद्याधरी, वागेश्वरी, सिद्धेश्वरी आदि सभी जुटी हुई थीं । कुछेक वाद्य-विशेषज्ञ भी थे । सभी अपनी कलाके अवदानोंसे माँ शीतलाकी आराधनाके निमित्त आये थे । फर्शपर बिछी विशाल दरीपर संगीत-सेवकोंका समुदाय अपनी पारीकी प्रतीक्षामें बैठा था । उस वक्त वीणापर विद्याधरी अपना राग अलाप रही थी । बिछी दरीके चारों ओर लगभग हर वर्गके लोग खड़े होकर अपनी इन्द्रियोंको परितृप्त करनेमें लगे थे । बीच-बीचमें शाबाशी और वाह-वाहीके छरें भी छूट रहे थे । विशेषतः उन वेश्याओंके आगे हर पाँच मिनटपर पानकी गिलौरियाँ पेश की जा रही थीं । और वे अपने चेहरेपर हरदम बलात् लादी हुई मुस्कान और अनोखी अदब-अदासे उन्हें स्वीकार या इन्कार कर रही थीं । इनमें सोलह-सत्तरह सालकी एक वेश्या अपने अखंड सतीत्वके प्रतीक-रूप नाकमें सोनेका एक बड़ा नत्थ लटकाये बैठी थी । पाँचेक मिनट इस दृश्यको देखते रहनेके बाद राजन और लीला एकांतकी खोजमें आगे बढ़ चले । और मुंशी-घाटके निकट जलसे सटी एक बुर्जीपर चुपचाप जा बैठे ।

काशी-नरेशका रामनगरका किला दो मील दूरसे धुंधले आकारमें मानो भाँकता दीख रहा था। सामने गंगाकी बीच धारामें जल-विहारके शौकीनोंसे भरी छोटी-छोटी नावें उभय दिशाकी ओर आ-जा रही थीं। जहाँ-तहाँ तैराकोंकी टोलियाँ गंगाके प्रशान्त वक्ष-स्थलपर वक्षके बल रेंग रही थीं। काशिकर सेठों और पंडोंकी टोलियाँ अपनी-अपनी नावों-पर बैठी ग्रामोफोनके रिकार्डोंका आनन्द लेने तथा भंग-भवानीके घोटनेमें, रस लेनेमें निमग्न थीं। और घाटोंपर आस्तिक नारियाँ बड़ी श्रद्धासे मिट्टीके छोटे दीप जला-जलाकर माँ गंगाको समर्पित कर रही थीं।

लीला और राजन दोनों ही कुछ देर इन चिर-परिचित दृश्योंको देखनेमें मीन थे। उस बगलसे इक्के-दुक्के गुजरते लोग इस युवा युगल-जोड़ीको एक साथ बैठे देख जरा सकौतुक नजरोंसे निहारते भी जा रहे थे।

अब लीलाने मौन भंग किया—“राजन, यह स्त्रीत्वकी विडम्बना ही तो है कि ये वेश्याएँ दुनियाको ठगनेके लिये, उनकी नजरोंमें आकर्षक बने रहनेके लिये दिन-रात पाखंडसे चिपटी रहती हैं? इस धार्मिक समारोहमें भी सबकी आँखोंका केन्द्र वे ही बनी हुई हैं। और वे भी अपनी दिखावटी अदब-अदासे सबको अपनी ओर खींच रही हैं। छिः ! इतना अधःपतन !”

लीलाके इस उद्गारपर राजन ठठाके हँस पड़ा, किंतु चुप रहा।

“इतने जोरसे हँसे क्यों तुम ?”—लीलाने चेहरे और स्वरमें आश्चर्य भरकर पूछा।

“क्या हँसनेसे भी गया मैं ?”—राजन व्यंग्यभरे स्वरमें बोला—“एक बार नहीं, हजारों बार हँसा करता हूँ ऐसी बातें सुनकर, ऐसे बुरा देखकर ! तुम्हारा सारा समाज ही उपहसनीय बना हुआ है लीला, तो मैं क्या करूँ ?”

लीलाका आश्चर्य और भी बढ़ गया ! आँखोंसे मानो आश्चर्यके झंगारे उगलती वह राजनको देखने लगी।

राजनने मुस्कुराते हुए फिर कहा—“हँसता हूँ तुम लोगोंकी मान्यताओंपर; हँसता हूँ तुम लोगोंके अब तकके बद्धमूल विकृत संस्कारोंपर ! लीला, जिन वेश्याओंके प्रति तुम्हें इतनी घृणा है; जिन्हें घृणाकी आँखोंसे देखकर स्वयं ही घृणाके पकमें जा फँसती हो, वे उतनी गई-बीती नहीं, जितनी कि इस पैसावादी समाजकी संभ्रांत महिलाएँ जिनके जीवन, जिनके व्यवहार और विश्वास आरंभसे अंत तक मिथ्याके कीचड़से चिपटकर मिथ्यामें परिणत हो चुके हैं । लेकिन फिर भी, अपनेसे दिन-रात चिपटी इस मिथ्याके कीचड़को वे देख नहीं पातीं, समझ नहीं पातीं ।”

“इसका मतलब ?”

“मतलब यही कि तुम्हारा यह सारा सभ्य समाज दिन-रात वेश्यात्वसे लिपटा रहकर भी अपनेको उससे मुक्त मानता है । झूठ-मूठकी सदाचारिताकी डींग हाँकता है ।”

“तुम पागल तो नहीं हो गये राजन ? क्या तुम्हें इस समाजमें नहीं रहना है ? इस प्रकारकी बातोंसे तो.....”

“मैं पागल नहीं हूँ लीला ! अपनी बुद्धि और विवेकपर मुझे पूरा विश्वास है । और न मैं इस समाजमें रहना ही चाहता हूँ । बल्कि इस भ्रष्ट पतित समाजको मटियामेट कर देना चाहता हूँ जिसकी सारी मान्यताएँ आज भ्रष्टाचारका आधार बनी हुई हैं ! जिसकी दृष्टि विकृत है, बुद्धि विकृत है, और जिसका मानस सदियोंसे रुग्ण बनकर विनाशकी अंतिम पीढ़ीपर पहुँच चुका है !”—कहते-कहते राजनका चेहरा तमतमा उठा ! वह दृढ़ स्वरमें बोला—“तुम कहना चाहती थीं कि इस प्रकारकी बातें करनेवाले समाजकी जूतियाँ खाते हैं, यही न ? लेकिन याद रखो लीला, कि जब कभी किसीने ऐसी सचाईका पर्दाफाश किया है तो जूतियाँ खानेके डरको तिलांजलि देकर ही !”

राजनके इस अस्वाभाविक आवेशको देख लीला कुछ सहम गई । फिर भी वह बोली—“तो इसमें कौन-सी ऐसी सचाई छिपी है कि

तुम लगे एकाएक आग उगलने ?”

“जिस सत्यकी ओर मैंने संकेत किया है,”—राजन अब एकाएक शांत स्वरमें बोला—“यदि वास्तवमें देखा जाय तो वह छिपा हुआ नहीं है वह तो दिन-रात हमारी आँखोंके सामने समाजमें घटित हो रहा है लेकिन यह सत्य अत्यन्त अप्रिय सत्य है, कटु सत्य, जिसे न हम देखना चाहते हैं, न हम सुनना चाहते हैं, और न जिसपर कुछ सोचना चाहते हैं।”

“जैसे ?”

“अभी-अभी तुमने वेश्याओंपर आक्रोश क्यों प्रगट किया ?”

“इसलिये कि वे धनके लिये तन बेवती हैं । धनके लिये पुरुषों को अपनी ओर आकृष्ट करनेके अनेक बनावटी तरीकोंका प्रदर्शन करती हैं । खुद गन्दी होकर समाजको गन्दा बनाती हैं । इनके मन वचन और व्यवहार में समन्वय कतई नहीं होता ।”

इस लम्बी प्रमाण-सूचीपर राजन फिर ठठाकर हँस पड़ा—
“शाबाश लीला ! इसीलिये तो कहा कि समाजकी आँखें अन्धी हो चुकी हैं । जो वर्ग आज समाजका शिरमौर बना हुआ है उसे अपना दोष अपना अपराध कतई दिखाई नहीं देता । मैं पूछता हूँ तुमसे कि रूप रंग, व्यवहार, बनावट और प्रवृत्तिमें अपनी जातिकी अन्य अनेक संभ्रांत महिलाओंकी ही तरह होकर भी वे क्यों इस नामसे लांछित होती हैं ? वे क्यों संभ्रांत ललनाओंकी निगाहोंमें गिरी मानी जाती हैं ? मैं फिर पूछता हूँ तुमसे, कि वे सभ्य-संभ्रात नारियाँ क्या धनके लिये तन नहीं बेचती ? वे पुरुषोंको भ्रमानेके लिये हाव-भाव प्रदर्शित नहीं करती ? वे समाजको गन्दा नहीं बनाती ? क्या उनके मन, वचन और कर्ममें समन्वयका अभाव नहीं होता ?”

लीला अवाक रह गई ! राजनके कटु तर्कोंके तीखे काँटे उसके संस्कार-बद्ध हृदयमें जा चुके । वह क्रुद्ध स्वरमें बोली —“तुम क्या बच रहे हो राजन !”

राजन सम्हल गया । वह बातको बढ़ाकर लीलाके दिलको दुखाना नहीं चाहता था । वह क्षमापनके स्वरमें बोला—“अच्छा, अब नहीं बकूंगा लीला देवी ! क्षमा करे ! इस बातूनी का कसूर माफ हो देवीजी !”—न हते-कहते वह हँस पड़ा ।

हँसी लीलाको भी आई, किन्तु वह दबा गई । चुप हो गई । कुछ सोचने लगी । अपने मानस-गगनमें राजनके शब्दोंसे जैसे नंगे सत्यकी कुछ चिनगारियाँ निकलकर विलीन होते उसने देखी । वह सामान्य कन्या न थी । बल्कि परीक्षा पास करनेकी दृष्टिसे राजनसे भी आगे । गत वर्ष ही वह बी० ए० हो चुकी थी । किन्तु राजनके समक्ष वह अब भी अहंकार करनेका साहस नहीं कर सकती थी । वह राजनको अच्छी तरह जानती थी । जिस सत्यके इंगितका ठोकर खाकर कुछ क्षण पहले उसका हृदय निलमिला उठा था, उसी सत्यको जरा अच्छी तरह विश्लेषित करने-करानेके लिये अब वह उत्कण्ठित हो उठी ।

“मैं जानती हूँ,”—वह धीर-गम्भीर स्वरमें बोली—“कि अपने दोषों की ओर अन्धा होना न आश्चर्यकारक है, न अस्वाभाविक ही; लेकिन आश्चर्यजनक तो यह है कि सारे भद्र समाजपर, विशेषकर भद्र ललनाओंपर वेश्यात्वका आरोप कर देना, जबकि इस भद्र समाजमें न विद्याकी कमी है, न बुद्धिकी, न विवेककी ?”

“न विद्याकी, न बुद्धिकी, न विवेककी !”—राजनने मुस्कुराकर लीलाके शब्द दुहरा दिये—“अद्वैत वेदान्तकी मान्यताके अनुसार जिस आत्मासे अविद्या लिपटी होती है वह भ्रमवश अविद्याको विद्या, अबुद्धि-को बुद्धि और अविवेकको ही विवेक मान बैठती है, उसी प्रकार आज इस समाजका—भद्र और सभ्य समाजका हाल है जिसकी विद्या, बुद्धि और विवेकपर, सारे आचार और व्यवहारपर पैसेकी महिमा चिपकी हुई है । यदि आज अभिजात नर-नारी पैसेपर अपनी विद्या, बुद्धि, विवेक, तन और मन तकका निछावर कर छोड़ते हैं, तो फिर उसी पैसेपर केवल तनमात्रका निछावर करनेवाली वेश्या ही क्यों जुगुप्सित कही जाय,

घृणित मानी जाय ?”

“बिल्कुल झूठ !”—लीलाने अवज्ञाके स्वरमें जवाब दिया—
“यह सब नहीं होता । तुम्हारी धारणा ही ग़लत है । बल्कि तुम्हारा तर्क तुम्हारे ही मुँहपर चपत लगा सकता है ।”

“मैं चपतसे नहीं डरता लीला, लेकिन झूठ मैं बिल्कुल नहीं बोल रहा । क्या, मौजूदा सभ्य समाज आज विद्या, बुद्धि, विवेक और तन-मनका विनय नहीं कर रहा ? क्या आज पढ़े-लिखे लोग विदेशी सरकार तक की नौकरियों, उसके दिये ऊँचे ओहदों और खिताबोंके लिये इन सबकी वित्री नहीं कर रहे ? और इस क्षेत्रमें अधिक-से-अधिक सफल होनेवाले लोग ही सबसे अधिक भद्र और सभ्य नहीं माने जा रहे ? शादी-ब्याहके प्रसंगमें भी पैसेको ही सर्वाधिक महत्व नहीं दिया जा रहा ? पैसे इकट्ठे करनेकी होड़में ये बड़े लोग आज धर्म, नीति, विचार और सदाचार तब की तिलांजलि नहीं दे रहे ? आज पैसेके जोरपर साठ-साला बूढ़ा भी पढ़ी-लिखी सभ्य युवतियों तकसे ब्याह नहीं रचा रहा ? फिर उन वेश्या-बेचारियोंपर ही इतना आक्रोश क्यों, इतना क्रोध क्यों ? यह तो किसी भी तरह उचित प्रतीत नहीं होता लीला ?”

इन तर्कोंकी बौद्धारसे लीला अभिभूत हो उठी । उस बेचारीको क्या आशा कि बात कहाँसे कहाँ पहुँच जायगी ! लेकिन जब बात छिड़ ही गई तो उसे बोलना ही पड़ा ।

“मानती हूँ”,—वह गम्भीर स्वरमें बोली—“कि आज समाजमें, खासकर इसके ऊँचे तबकोंमें पैसेके लिये तरह-तरहकी अनितियाँ फैल रही हैं, लेकिन इसी कारण वेश्याओंके आचार-व्यवहारको उचित तो नहीं कहा जा सकता ?”

“उचित कौन कहता है लीला ? यह वेश्यापन तो नारी-समाजके लिये घोर कलंक, घोर नरक है लीला ! और समाजके लिये तो है ही । संसारका कोई भी समाज, कोई भी राष्ट्र तब तक सभ्य, सुसंस्कृत और समुन्नत नहीं कहा जा सकता, जब तक कि उसके शिरसे वेश्यात्वके

कलंकका टीका मिट नहीं जाता । लेकिन याद रखो लीला, कि वेश्याएँ केवल वे ही नहीं जिन्हें अभी तुम शीतला-मंदिरके आगे गाते-बजाते देख आई हो, बल्कि सारा पैसावादी समाज ही वेश्या है । ये बेचारियाँ तो केवल उस बृहत्तर वेश्या-समाजका एक सामान्य अंग मात्र हैं ।”

लीला कुछ क्षण चुप रहकर फिर बोली—“आंशिक रूपमें तुम्हारी बातें मान्य होते हुए भी पूरी तरह मान्य नहीं । खासकर संभ्रांत नारियोंपर वेश्यापनका आरोप मूर्खता और शराबतसे भरा है । तुम्हारे कथनका तात्पर्य है कि विशेषतः ऊँचे तबकोंमें शादी-ब्याहके सिलसिलेमें सबसे अधिक पैसेपर ध्यान दिया जाता है । कन्याका पिता धनी घरमें कन्या देना चाहता है । लेकिन इसके साथ ही वह दूल्हेके वय, विद्या, रूप-रंग और स्वास्थ्यपर भी तो ख्याल रखता ही है । वर-पक्षसे पैसे न लेकर कन्याको दान-दहेजके रूपमें पर्याप्त धन भी देता ही है । विवाह समाजका एक नैतिक और धार्मिक कर्तव्य समझा जाता है । तो, इस प्रकार विवाहित नारियोंकी बाजारू वेश्याओंसे तुलना करनेकी मूर्खता सिवाय पागलपनके और कुछ नहीं कहा जा सकता राजन !”

राजन इस बार हँस पड़ा—“पागल ही तो सच्ची बात कहनेका साहस रखता है लीला ! कोई समझदार, संसारके मान्य आदर्शोंके विरुद्ध उसके अप्रिय सत्यका पर्दाफाश करके अपना शिर फुड़वाने की मूर्खता नहीं कर सकता । समझदारी इसीमें मानी जाती है कि संसार जिस रूपमें है, उसे उसी रूपमें स्वीकारकर उसके साथ या उसके पीछे चलना । संसारको अपने साथ चलानेकी या उसका रूप बदलनेकी चेष्टा करनेवालोंको तो शुरू-शुरूमें सदासे ही नासमझीकी उपाधियाँ दी जाती रही हैं । यह कोई नई बात नहीं है भाई ! अस्तु ।

“तुमने बताया है लीला, कि शादी-ब्याहके प्रसंगमें वरके वय-विद्या, रूप-रंग और स्वास्थ्यपर भी ध्यान दिया जाता है । मानता हूँ, दिया जाता है । लेकिन सबसे अधिक ध्यान दिया जाता है वरके धनपर ।

क्या तुमने देखा है किसी धनवानकी कन्याकी किसी स्वस्थ-सुन्दर निर्धन नौजवानसे शादी होते ? जब कि इसके विपरीत अनेक सुन्दर, स्वस्थ और नौजवान निर्धन कन्याएँ अनेक धनवान वृद्धोंसे ब्याही गई हैं और ब्याही जा रही हैं ! और रह गई दान-दहेजकी बात । सो, दान-दहेजके साथ कन्याएँ दी जाकर भी सही मानेमें बेबी ही जाती हैं । क्योंकि वहाँ सारे आचार-विचारोंका मुख्य आधार पैसा ही होता है । जिस वर-पक्षके पास जितना अधिक धन हो, उसके दान-दहेजकी माँग भी उतनी ही अधिक होती है । और कन्या-पक्ष उस वर-पक्षके धनसे अपनी कन्याका सम्बन्ध जोड़नेके लिये बतौर नजरानेके, धूस-रिखतके दान-दहेजकी रकम पेश करता है । इसे तुम जो भी समझो लीला, लेकिन मैं तो इसे सही मानेमें धनसे तन और मनका सम्बन्धके सिवा और कुछ नहीं मानता, कुछ नहीं समझता ।”

“लीला इस अप्रिय सत्यको सुनकर अप्रतिभ हो गई । जवाब उसके पास न था । कुछ देर गंगाकी शान्त धाराको देखती रहनेके बाद बोली—
“खैर, मान लेती हूँ थोड़ी देरके लिये तुम्हारी बात । लेकिन आज की शिक्षित लड़कियोंके सम्बन्धमें तो तुम्हारी मान्यता लागू नहीं हो सकती, जो पतिपर भार बने बिना अपना निर्वाह आप कर सकती हैं ?”

“लेकिन अपना निर्वाह आप कर सकनेकी क्षमता रखकर भी तो शिक्षित लड़कियाँ भी इस मामलेमें पैसेकी ओर ही अधिक झुकी हैं ? जिस समाजमें भला मान-मम्मान और सुख-सुविधाका आधार ही पैसा हो, वहाँ स्कूल-कालेजकी पढ़ी-लिखी लड़कियाँ ही कैसे उस संस्कारसे बरी हो सकेंगी ? बल्कि कटु सत्य तो यह है कि ये पढ़ी लिखी लड़कियाँ पैसेवालोंकी टोहमें कहीं अधिक रहा करती हैं । उनकी नजरोंमें भी लम्बी तनखाह पानेवाले पढ़े-लिखे लोग ही विराजा करते हैं । और अपनी ओर ऐसे लोगोंको आकृष्ट करनेके नाज-नखरोंमें ये तथाकथित शिक्षिताएँ भी अपनी उन पतित बहिनोंसे कम नहीं होतीं । सतत चाहती हो तो क्लबों और सोसाइटियोंमें जाकर स्वयं देख आओ !”

इस बार लीलाका पारा गर्म हो उठा ! वह स्वयं इन नाज-नखरोंसे रहित होकर भी थी तो उन्हींके वर्गकी ? वह धिक्कारके स्वरमें बोली—
“छिः ! क्या बकते हो ? नीचताकी भी.....”

लेकिन आगे वह बोल न सकी । राजनकी मान्यताके प्रमाणमें एकाएक उसे कई घटनाएँ याद आ गईं । अभी सालभर पहले उसी नगरकी एक प्रोफेसर-कन्या कुमारी कुंकुमा बी० ए०, जो लीलासे केवल तीन वर्ष बड़ी थी, देशके एक साठसाला बड़े धन-सेठसे ब्याही गई थी । कुमारी चंपा एम० ए० ने अपने पढ़े-लिखे पूर्व प्रेमीभी इसलिये उपेक्षा कर दी, कि बेचारा एम० ए० पास करके भी हाई स्कूलका एक सामान्य अध्यापक ही बन सका था, जब कि चंपा एक प्रसिद्ध बैरिस्टरकी अपनी ओर आकृष्ट करनेमें सफल हो गई थी; और कुमारी नलिनी एम० ए०, तीस-बत्तीसकी उम्र तक पहुँचकर भी इसलिये क्वारी ही रह गई कि रूप-रंगके अभावमें वह किसी भी पढ़े-लिखे ओहदेदारकी अपनी ओर आकृष्ट करनेमें सफल न हो सकी ! हाँ, यह सही है कि कुमारी चन्द्रकान्ताने एक बड़े डाक्टरकी कन्या और विश्वविद्यालयकी सफल स्नातिका होकर भी अपने जीवन-सहचरके रूपमें एक गैर-पास निर्धन नौजवानको अपनाया था । लेकिन ऐसी घटना तो अपवाद ही होती है । और चन्द्रकान्ता स्वयं भी तो वर्तमान समाजकी मान्यताओं और आदर्शोंकी घोर विद्रोही थी । सो, इस प्रकार की अनेक घटनाएँ लीलाको याद आती गईं और साथ ही राजनपर उसका आक्रोश भी कम होता गया ।

“क्यों लीला,”—राजनने उसे शिर झुकाये चुपचाप बैठी देखकर पूछा—“चुप क्यों हो गई ? इसलिये कि कोई जवाब नहीं मिलता ? लीला, जिन वेश्याओंकी अभी तुम संगीत-कलाके प्रदर्शनसे लोगोंका मनोविनोद करते देख आई हो, उनमें अधिकांश यौन-संयमकी दृष्टिसे अभिजात महिलाओंकी अपेक्षा कहीं ऊपर उठी होती हैं, किन्तु इनमें ही एक ऐसा भी वर्ग है जिन्हें दो जून रोटी तकके लिये सिवा शरीरके

व्यापारके और कोई चारा नहीं, सहारा नहीं ! उनके पास न कला है, न गला ! बड़ा बीभत्स और दर्दनाक होता है वह दृश्य जब इन्हें अपने शरीरके गाहकोंके इन्तजारमें जब-तब आँखोंमें ही सारी रात बिता देनी पड़ती है !”

सुनकर लीला सिंह उठी ! आजन्म वनारसमें ही रहकर भी कभी उसने यह सब जाननेकी कोशिश नहीं की थी । आवश्यकता ही क्या थी ? अनेक कुलीन कन्याओंकी तरह वह भी पुरुषोंमें होती वेश्याओंकी चर्चाको कभी दबे-कान सुन लेती । वह भी वेश्याओंसे नफरत ही करती और अनेक पढ़े-लिखोंकी तरह इस प्रथाको सना-तनसे चले आते समाजके एक आवश्यक एवं घृणित अंगके रूपमें ही मानती । न इसपर गहराईसे सोचनेका कभी कोई मौका ही आया, न उसने सोचनेकी कभी कोई कोशिश ही की । लेकिन इस समय राजनके कटु-कठोर तर्कोंसे उसकी दृष्टि बहुत कुछ साफ हो गई । मारे घृणा और क्षोभके उसका अंग-अंग अवश हो उठा ! वह बोल उठी—“सत्यानास हो ऐसे समाजका जिसमें मनुष्यको ऐसी परिस्थितिमें आनेपर मजबूर होना पड़े ! सत्यानास हो.....”

इतनेमें ही पासके मन्दिरका घंटा-घड़ियाल बज उठा । लीला चौक उठी—“ऐं ! काफी वक्त बीत गया !” जरा देर रुककर फिर निश्चित स्वरमें वह बोली—“हाँ तो, असल बात तो कुछ हुई नहीं ? बीचमें ही रह गई ! बोलो ! क्या कहते हो मुझे ? कैसे उद्धार होगा मेरा ?”

“फिर वही बात ?”—राजनने कहा—“मैं तुम्हारा पतित-पावन भगवान नहीं कि तुम्हारा उद्धार कर दूँ ! एक साथी हूँ, साथी-की तरह मदद करूँगा । मैं तुम्हें एक ऐसी जगह रखनेको सोच रहा हूँ जहाँ तुम बहुत, बहुत खुश रहोगी ! बहुत कुछ नई बातें सीखोगी ! इस मौजूदा परेशानी में न पड़ोगी, न पड़ने का मौका ही कभी आ पायेगा !”

लीला खुश हो उठी ! उसके दिलको उत्कण्ठाने भकभोर डाला ।

बोली—“कहाँ है वह जगह ? ले चलो मुझे इसी क्षण ! मैं अब वापस पिताजीके पास नहीं जाऊँगी ! तुम पक्का समझो इसे !”

“क्यों ? इतने उतावलेपनकी जरूरत तो नहीं लीजा ! मैं जरूर ले चलूँगा तुम्हें !”

“तो बताओ न ?”—लीला जरा निहोराके स्वरमें बोली—“कहाँ है वह जगह ? अब तो मैं पलभर भी पिताजीके पास नहीं रह सकूँगी !” फिर राजनका हाथ पकड़कर बच्चोंकी तरह मचलकर—“बताओ न ?”

राजन उसकी आकुलतापर पसीजकर बोला—“लाहौर में । हमारे दादाजीके पास ! तुम बहुत खुश रहोगी वहाँ !...तो अभी ही चलोगी ?...सामान-वामान तो कुछ साथ ले लेतीं ?”

लीला जरा आँखोंमें विशेष भाव भरकर—“और तुम जो साथ हो ? फिर भी किसी चीजको साथ लेनेकी जरूरत ?”

राजन हँस पड़ा—“तो मैं क्या तुम्हारा बिस्तरा भी बन जाऊँगा ?”

“नहीं राजन, मैं वहाँकी कोई भी चीज अब छूना नहीं चाहती !”

“अच्छा तो चलो ! सामान मेरा स्टेशनके निकट कृष्णा-होटलमें है । लाहौरकी गाड़ीका समय भी समीप है ।”—कहकर वह उठ खड़ा हुआ । लीला भी उठ खड़ी हुई । दोनों जने काली-मन्दिरके निकट जाकर एक तांगेपर सवार हो सिकरौल स्टेशनकी ओर चल पड़े ।

[१०]

एक अवांछित परिस्थितिसे निकल भागनेकी परितृप्ति लीलाके रोम-रोमको प्रफुल्ल कर रही थी। अपने-आपमें वह भूली हुई थी। पंजाब-मेल अपनी तूफानी रफ्तारसे प्रतिपल अपने पीछे बहुत कुछ छोड़ता जा रहा था—मटर, चने, जौ और गेहूँके पके-पीले खेत; खलिहान; छोटे-बड़े खपरैल और फूसके घरोंदेवाले गाँव और गाँवड़े; सूखे खड्ड और सूखते नाले; परतियाँ और मंदान। और लीला खिड़कीके सामने बैठी चांदनीकी धुली छायामें इन सब चीजोंकी दौड़ती छायापर अपनी सूनी आँखें टिका रही थी। हृदय उसका कहीं और था। वह इस समय मुद्गर अतीतकी सुकोमल भावनाओंके सुन्दर फूल मनोरथकी डोरमें गूँथ-गूँथकर झूम रही थी। और रह-रहकर स्नेह-तरल तिरछी आँखोंसे उस ओर भी निहारती जा रही थी, जिधर राजन बेंचपर बिस्तर फैलाये उत्तान पड़ा खरटि भरे जा रहा था। जब लीला दसकी थी, राजन पन्द्रहका था, दोनोंका साथ हुआ था गुरु-शिष्याके रूपमें। और लगातार पाँच वर्ष तक वह कायम भी रहा। केवल तेरह वर्षके वयमें ही संस्कृतकी संपूर्ण मध्यमा परीक्षामें सर्व-प्रथम आकर राजनने सबको चकाचौंधमें डाल दिया था। पं० रमाशंकरसे सम्पर्क शुरू होनेपर उन्होंने ही उसे अंग्रेजी पढ़नेकी ओर प्रवृत्त किया था। जब पं० रमाशंकर कभी मजाकमें कहते—‘लीलाकी शादी राजनसे करूँगा’ लीला लाल हो उठती। और साथ ही उसके शर्म-सूखे चेहरेपर मनका छिपा आनन्द आन्दोलित हो उठता। जब भैया-भाभीके स्नेह-सूत्रमें बँधकर राजन पेशावर आ गया, दूर रहकर भी वह सदा लीलाके निकट रहा। लीला अपने मन-मंदिरसे उसे कभी दूर न कर सकी। यौवनकी उत्तरोत्तर उभरती आकांक्षाएँ उसे और भी निकट ले जाती रहीं।

राजन भी उससे पहले उदासीन न था, किन्तु इधर दो-तीन वर्षों-से उसके मनकी धारा तिल-तिलकर मुड़ती जा रही थी। यद्यपि लीला साँवली होकर भी, अनाथ-कन्याके प्रवादसे लांछित होकर भी सहसा किसी भी युवाके लिए उपेक्षणीय न थी, किन्तु राजन अब विवाहके प्रबल-कोमल पाशमें बँधनेसे कतराने लगा था। और जबसे उसने परीक्षाकी मोह-माया छोड़कर देशके स्वातन्त्र्य-संग्राममें प्रविष्ट होनेका संकल्प कर लिया, उसका वह दुर्बल संकल्प और भी सबल बन गया। किन्तु, इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि वह स्त्रियोंकी ओरसे ही विरक्त बन गया। बल्कि मनके किसी कोनेमें छिपी मीठी आकांक्षाएँ जब-तब उसके समस्त मनको विषाक्त बना देतीं; किन्तु दूसरे ही क्षण उच्च आकांक्षाओं और उद्देश्योंके अमृतका पानकर उसका मन निर्मल और निर्विष बन जाता। लीलाके नाम लिखे पत्रोंमें वह अपने संकल्पका संकेत भी करता, लेकिन वह केवल अपने निराश मनसे मौन प्रतिवाद करके ही रह जाती। किन्तु, इस क्षण अपने बाल्य एवं युवा मनकी संचित अभिलाषाओंके परम केन्द्र इस युवाको अपने इतने निकट, इतने एकांतमें पाकर उसका शरीर रह-रहकर रोमांचित हो रहा था। तूफानी आकांक्षाओंकी मीठी वेदनाएँ रह-रहकर उसके हृदयमें टीस मार रही थीं।

फिर अचानक उसके मनकी धारा किसी और तरफ़ मुड़ गई। अब उसे बनारसके बाँस-फाटकका मुहल्ला, पं० रमाशंकरका मकान और स्वयं पं० रमाशंकरजी याद आ गये। क्षणभरके लिये विरक्तिके एक हल्के झोंकेसे मन उसका अशांत हो उठा, किन्तु दूसरे ही क्षण मोहकी एक मीठी कसक भी उत्पन्न हो उठी। वह मोह बढ़ भी चला। क्षणभर पहले जिस रमाशंकरका काम-विह्वल बूढ़ा मुखड़ा याद आते ही विरक्तितने उसके मनको विचलित कर दिया था, अब उस मोहने विह्वल करना आरम्भ किया। वह सोचने लगी—“उनकी जरा-सी कमजोरीको यादकर क्या उनके सारे उपकारोंको भुला दूँ? जिसने मुझे मनुष्य बनाया, उसके प्रति क्या यही मनुष्यताका माप है? माताजीके

देहान्तके पहले तक तो मैं उनकी आँखोंमें उनकी वही प्यारी पुत्री लीला ही थी ? शास्त्रकारोंने माँ, बहन और पुत्रीके साथ भी एकान्तमें न रहनेका आदेश दिया है। क्योंकि प्रबल इन्द्रियाँ विद्वानोंको भी विचलित कर देती हैं। तो क्या यह एकांत-सहवासका ही परिणाम तो नहीं ? लेकिन अब क्या होगा उनका ? कौन देख-भाल करेगा उनका ?”—सोचते-सोचते एकाएक उसके स्निग्ध नारी-हृदयमें ममता और करुणाकी बाढ़ उमड़ पड़ी। वह रो पड़ी। आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। उसका दिल अब ऐसा करने लगा कि वह इसी दम लौट जाकर उस विधुर वृद्धके चरणोंमें अपने-आपको अर्पित कर दे ! उसीकी सेवामें, उसीकी देख-रेखमें अपने-आपको खपा दे।

कुछ देर चुपचाप रो लेनेके बाद उसका हृदय हल्का हुआ। वह फिर सोचने लगी—“किन्तु मैं किस उद्देश्यसे उनसे अलग हुई हूँ ? वह उद्देश्य तो सामान्य नहीं ? कष्ट तो अवश्य होगा उन्हें, किन्तु उस पिता-की सामाजिक स्थितिकी सुरक्षाके लिये ही तो मैं भाग चली हूँ वहाँसे ?” इस प्रकार सोचते-सोचते कुछ देरके लिये वह रुक गई। उसे लगा कि इस पलायनमें उसका निजी स्वार्थ भी छिपा है। फिर वह सोचने लगी कि वह कौन-सा स्वार्थ है जिसके वश होकर वह भागी जा रही है। राजन-के प्रति आसक्ति अथवा उससे संबद्ध होनेकी, उसकी समीपवर्ती होने-की छिपी आकांक्षा तो नहीं ? नहीं नहीं, अपने प्रियसे संबद्ध होने-की, उसकी समीपवर्ती होनेकी इच्छा किसे नहीं होती, लेकिन इस पलायनमें यह इच्छा कदापि नहीं ! उसने दिलको टटोला, बार-बार टटोला, किन्तु दिलने यही जवाब दिया—“नहीं लीला, चिन्ता न कर तू ! तू निर्दोष है। तेरा उद्देश्य पवित्र है। निःसन्देह इस पलायनमें कोई क्षुद्र स्वार्थ नहीं छिपा है।” उसने फिर सोचा—“लेकिन लोग क्या सोचेंगे, लीला क्यों भाग गई ? क्या कहेंगे वे ? क्या अन्दाजा लगायेंगे ?” फिर एक लम्बी आह भरकर—“लेकिन काम अच्छा नहीं हुआ ! यदि उनसे कहकर ही किसी बहाने राजनके साथ चली आती, अच्छा

रहता !.....लेकिन वे क्या आज्ञा देते ? है उनकी मनोदशा ऐसी आजकल ?.....चलो, देखा जायगा ! जो होता है, अच्छेके लिये ही । फिर कोई उपाय सोचूँगी ।”

इस प्रकार बहुत कुछ सोचते-सोचते एक समय लीला अपनी जगह-से उठी और आहिस्तेसे राजनके पैतानेमें जा बैठी । धीरेसे, अपने कोमल हाथोंसे, बड़े प्यारसे उसके पैर सहलाने लगी । राजन यद्यपि सो रहा था, किन्तु लीलाके कर-स्पर्श होते ही वह क्रमशः निद्रासे तन्द्रामें आ गया । कर-स्पर्शकी कोमल गुद-गुदीका अनुभव करते-करते उसकी शिराओंमें विजली-सी कौदने लगी । एक समय वह आँखें मींचता बिछीनेपर उठ बैठा । एक मीठी अंगड़ाई लेकर चुटकी बजाते हुए जगहार्दको दूरकर आलस्यभरे स्वरमें बोला—“कितने बजे होंगे लीला ? क्या तुम सोईं नहीं अभी ?”—कहकर उसने कलाईमें बँधी घड़ीकी ओर देखा ।

“अभी तो दो ही बजे हैं लीला ! जाओ, सो जाओ ! आराम रहेगा । लगता है तुम सोईं नहीं ?”

लीला ओठोंपर मुस्कान और स्वरमें कृत्रिम उपालम्भ भरकर बोली—“तुम्हें इतनी सोनेकी चाट कबसे लग पड़ी राजन ? कुछ सुनें, कुछ सुनायें, सो नहीं तो लगे फिर सोने !”

“सुनने-सुनानेको समय बहुत मिलेगा ।”—राजनने उसी प्रकार आलस्यसे स्वरमें जवाब दिया—“चलो लाहौर । महीनाभर तो रहूँगा ही साथ । फिर जितनी मर्जी हो सुन लेना, सुना देना !”—कहकर वह फिर सोने लगा । लेकिन लीलाने उसकी जाँघमें चट एक मीठी चकोटी काट ली । बोली—“सो सब नहीं होगा । कुछ बातें पूछनी हैं तुमसे । अभी ! और इसी समय !”

“अच्छा भाई !”—राजनने खिसियाकर कहा—“पूछो जो पूछना हो ! जानता ही हूँ कि लीला सदाकी शिर खानेवाली लड़की है !”

लीला इस बार जोरसे हँस पड़ी ।

“अच्छा !”—वह मुस्कुराती हुई पुनः उलहनेके स्वरमें बोली—
“तो इसीसे जनाब आजकल लीलासे कतरा रहे हैं ? कन्नी काट रहे हैं ?
लीला कोई होवा नहीं राजन ! इतना डरना नहीं चाहिये तुम्हें !”

“मैं तो बड़ा डरा करता हूँ ।”—राजनने मुस्कुराते हुए जवाब दिया—
“खासकर जवान लड़कियाँ तो मुझे होवा ही दीखती हैं !”

“अच्छा !”—लीलाने चुटकी ली—“तो इन होवाओसे नजर लड़ाते अच्छा भी लगता है, और डरते भी हैं आप ?”

“भूठ मत बोलो !” राजनने मुस्कुराकर प्रतिवाद किया ।

“मैं भूठ बोलती हूँ ?” लीलाने भी डटकर जवाब दिया—“गनी-मत है कि डब्बा इस वक्त खाली है ! नहीं तो यहाँ भी श्रीमानकी आँखें किसी सुंदरीकी आँखोंसे जा-जाकर टकराती रहती ।”

“और श्रीमतीजीका दिल जल-जलकर राख होता जाता ?”—कहकर राजन ठठाकर हँस पड़ा और लीला भी हँस पड़ी । इस हँसीके साथ ही राजनकी नींदका आलस्य भी जाता रहा ।

“तुम झूठ बोलती हो लीला !”—राजनने फिर मुस्कुराकर कहा—
“कब तुमने देखा मुझे यह सब करते ?”

“आज ही जनाब ! महात्माजी महाराज !”—लीलाने व्यंग्यभरी चुनौती दी —“वही जो युनिवर्सिटीकी दो-तीन लड़कियाँ अपनी किसी सहेलीको विदा करने स्टेशनपर आई थीं ? लगता था, श्रीमानजी उन्हें आँखोंसे ही निगल जायेंगे !”

“और श्रीमतीजी जल-भुनकर राख बनती जा रही थीं ?”—कहकर राजन फिर हँसा—“तुम औरतोंकी जात बड़ी ईर्ष्यालु होती है लीला ! क्या हुआ यदि देख लिया किसी सुन्दर चीजको तो ?”

“तो चोरी भी और सीनाजोरी भी ? देखा करें जी-भरकर आप ! लेकिन महात्मापनकी डींग न हाँका करें ! यह न कहा करें कि जवान लड़कियाँ होवा होती हैं ! उन्हें देखकर डर लगता है !”

“अच्छा भई !”—राजन हाथ जोड़कर मुस्कुराता हुआ क्षमापनके

स्वरमें बोला—“अब नहीं कहूँगा। अब तो प्रसन्न हुईं श्रीमतीजी आप ?”

लीला हँस पड़ी। तर्जनी तानकर बोली—“हाँ ! सो ही ! याद रखियो !”

“याद रखूँगा ! जरूर याद रखूँगा !....अच्छा पूछो ! क्या पूछना चाहती थीं तुम ?”

लीला कुछ देर चुपचाप शिर झुकाये सोवती रही। फिर राजनकी आँखोंमें आँखें भरकर बोली—“सच कहना राजन, तुम मुझसे घृणा तो नहीं करते ?”

“पागल तो नहीं हो गईं तुम ?”

“बहानेबाजी छोड़ो। यदि घृणा नहीं करते, तो मुझसे कतराते क्यों हो ?”

“हाँ !”—राजन व्यंग्यके स्वरमें बोला—“घृणा करता हूँ, कतराता हूँ, इसीसे तो तुम्हारी एक चिट्ठीपर पेशावरसे सीधे बनारस दौड़ पड़ा ? और, अब, साथ भगाये लिये जा रहा हूँ।”—कहकर वह फिर जोरसे हँस पड़ा।

“हँसो मत भाई !”—लीला गम्भीर होकर चुप हो गई। कुछ देर सोचती रहकर फिर बोली—“तुम सच कह रहे हो राजन ?”

“तो झूठ ?”

सुनकर लीलाके अंग-अंगमें रोमांच हो उठा ! “तो झूठ ?” इन तीन अक्षरोंने उसके दिलके रेशे-रेशेमें बिजुलीका संचार कर दिया ! हृदयका हर तन्तु किसी अनोखे आवेगसे आंदोलित हो उठा ! शिर झुकाये कुछ क्षण सोचती रहनेके बाद फिर आँखें चार करके वह बोली—“तो मैं निश्चित हो जाऊँ कि तुमने मुझे अपनी बना लिया ? मुझसे बाकायदा विवाह करके कभी मेरा साथ नहीं छोड़ोगे ?”

“और तुम्हें अपनी बनाया कब नहीं था लीला ?”

लीला पुनः आनन्दसे उल्लसित हो उठी ! मीठी गुदगुदीकी तरंगोंसे

पुनः उसकी शिराएँ भङ्कृत हो उठीं । फिर भी जरा सन्देहके स्वरमें वह बोली—“पहेलीकी बोली बोलना छोड़ो ! साफ-साफ बताओ कि तुमने मुझे अपनाया या नहीं ?”

राजन उसकी इस बचपनभरी उतावलीपर मन-ही-मन पसीज उठा ! किन्तु ऊपरसे एक जोरकी हँसी हँसकर बोला—“औरतें चाहे जितना भी पढ़-लिख जायें, जितनी भी जानकारी हासिल कर लें, लेकिन अपने सदियोंके उस सस्कारसे मुक्त नहीं हो सकतीं और न होना ही चाहती हैं, जो उन्हें आज भी, इस बीसवीं सदीमें भी गुलामीकी कठोर जंजीरोंसे जकड़े हुए है !”

लीलाके दिलको जरा धक्का लगा । संदिग्ध आँखोंसे राजनको देखकर वह बोली—“इसका मतलब ?”

“मतलब कुछ नहीं लीला !”—राजनने गम्भीर होकर जवाब दिया—“यही न, कि तुम जीवनका एक सच्चा साथी चाहती हो ? सो, तुम्हें वहाँ ले जा रहा हूँ जहाँ एकके बजाय अनेक सच्चे साथी तुम्हें मिलेंगे ।”

“क्या मतलब ?”—लीलाने आँखें तरेरकर पूछा ।

राजनने मुस्कुराते हुए जवाब दिया—“तुम्हारे इस मतलब-मतलबका मतलब तो मैं नहीं बता सकता लीला, लेकिन इतना अवश्य बता सकता हूँ कि तुम वहाँ प्रसन्न रहोगी । बहुत प्रसन्न । और उस प्रसन्नतामें ही तुम अपने जीवनको सार्थक समझोगी ।”

लीला पुनः उसे संदिग्ध आँखोंसे देखती हुई बोली—“पहेलीकी बोली छोड़कर साफ-साफ बताओ न, कि तुम्हारा मतलब क्या है ?”

“साफ शब्दोंमें मतलब यह है लीला, कि तुम वहाँ रहकर अपने जीवनको केवल व्यक्तिकी दृष्टिसे न देखकर समष्टिकी दृष्टिसे देखने लगोगी, और तब शायद अपने व्यक्तित्वको अपने तक ही सीमित न रखकर उसे समस्त समाज और संसारमें मिला दोगी । तुम समाजके शोषितों और तिरस्कृतोंको ऊपर उठाकर उन्हें शीर्षपर पहुँचानेकी दिशामें प्रयत्न आरम्भ कर दोगी । और तब शायद तुम्हारी गर्दनपरसे

ब्याह-शादीका यह भूत भी उतर भागेगा। और सदियोंसे चली आती गुलामीकी इस कड़ी जंजीरमें फँसनेकी बेचैनी तुम्हें नहीं सता पायेगी, व्याकुल नहीं बना पायेगी।”

“अच्छा !”—लीला कुछ देर सोचती रहकर बोली—“माना कि तुम मुझे वहाँ लिये जा रहे हो जहाँ नई दृष्टि, नया आलोक मुझे प्राप्त होगा, लेकिन यह तो किसी भी तरह समझमें नहीं आता कि तुम क्यों बार-बार विवाहको गुलामीकी जंजीर बता रहे हो ? क्यों उसे बार-बार अपने निजी स्वार्थका साधन बता रहे हो ?” फिर जरा मुस्कराकर—“तुम नहीं जानते राजन, कि इस जंजीरमें अंजीरसी मिठास भरी होती है !”

राजन फिर जोरसे हँसा—“तुम तो कविता करने लगीं लीला ! कवियोंकी दुनिया होती ही है निराली। वहाँ फूल काँटा बन जाता है और काँटा फूल। लहमेभरमें मरुभूमि सरसब्ज भूमि बन जाती है और सरसब्ज भूमि मरुभूमि ! फिर यदि जंजीर अंजीरसी मीठी बन जाय तो आश्चर्य क्या ?”

लीला जरा भी अप्रतिभ हुए बिना फिर बोली—“अधिक पढ़-लिख-कर आदमी सूखा बन जाता है सो तुम्हें देखकर ही मैं समझ पाई हूँ। तुम क्यों भूल जाते हो राजन, कि इस मीठी जंजीरमें सारे विश्व-ब्रह्माण्ड-के निर्माणका आह्वान छिपा होता है ! कलाके समस्त माधुर्यका उद्गार छिपा होता है ! इस जंजीरकी मिठासका आस्वाद लेकर ही आदि प्रजापति (ब्रह्मा) सृष्टि करनेमें प्रवृत्त होता है; विष्णु उसके पालनका सामर्थ्य प्राप्त करता है; और इसी जंजीरसे उच्छिन्न होकर शंकर प्रलयंकर बन जाता है !”

“शाबाश !”—राजन मुस्कराता हुआ बोला—“अब पूरे कविका सर्टिफिकेट तुम्हें अवश्य मिलेगा लीला ! काशीकी कवयित्री जो ठहरीं तुम !... अपने गद्य-काव्यके अन्तमें जरा यह भी जोड़ दो कि—‘इसी मिठासका आस्वाद लेनेकी खातिर बुढ़ा भी जवान बन जाता है; जवान

बननेकी हवस रखता है !' क्यों, कैसा रहेगा तब ?"

लीला सहसा अप्रतिभ हो गई। उसका उत्साह ठंडा पड़ गया। फिर आँखें तिरछीकर, भौंहोंपर बल दे, तर्जनी तानकर बोली—“खबर-दार ! अगर फिर शरारत की तो ?”

लेकिन एकाएक वह गम्भीर बन गई। कुछ देर बाद पुनः संदिग्ध स्वरमें बोली—“सच सच बताना राजन, तुम शादीसे कतराते क्यों हो ? या मुझसे कतरा रहे हो ? या मैं ही तुम्हारे योग्य नहीं हूँ ?”—कहते-कहते उसकी बड़ी-बड़ी आँखोंमें एकाएक आँसू उभर आये।

राजन पसीज गया ! चट उसके दोनों हाथ अपने हाथोंमें लेकर अत्यन्त प्रेम-विगलित स्वरमें बोला—“नहीं लीला ! कैसे विश्वास दिलाऊँ तुम्हें कि इन हाथोंको अपने हाथोंमें पानेवाला वास्तवमें संसारका बड़ा ही भाग्यशाली पुरुष होगा लीला !”—और कहकर उन हाथोंको उसने जी-भरकर चूम लिया।

लीला और राजन दोनोंके दिलोंमें युगपत् एक मधुर कंपनका संचार हुआ। राजनने आवेशमें आकर लीलाको भुजपाशमें बाँध लिया। क्षण-भरके लिये लीला अवश हो चली। राजन उसके ओठ चूमना ही चाहता था कि वह एकाएक चौककर ‘हूँ’ कहकर पूरी शक्तिसे उस मीठे भुज-बन्धनसे मुक्त हो गई। भट अपने बेंचपर बिछे-बिछीनेपर जा बैठी। कुछ देर चुपचाप शिर झुकाये बैठी रही। दिलकी घड़कन जरा शांत होनेपर तिरछी आँखोंसे लज्जा-विगलित मुस्कानमें वह बोली—“तुम भी बड़े पागल हो ! क्या करने जा रहे थे तुम ?”

“कुछ तो नहीं ?” राजनने भी मुस्कराकर संकुचित स्वरमें जवाब दिया।

“अब बातें बनाना छोड़ो !”—लीला जरा खखासकर गम्भीर स्वरमें बोली—“अब हम दोनोंके लिये यही अच्छा होगा कि जल्द-से-जल्द विवाह-बंधनमें बँध जायें !”

उत्तरमें राजन कुछ कहने ही जा रहा था कि गाड़ी अगले जंक्शनपर

शायद बाँस-बरेलीमें आकर रुक गई । एक-दो यात्री उस डब्बेमें भी आ चढ़े ।

राजनने लीलासे स्वाभाविक स्वरमें कहा—“यह सब सोचना छोड़कर अब तुम जरा देर आराम करो । अब भी घंटा-दो-घंटा रात बाकी है ।”—कहकर वह स्वयं बिछौनेपर लेट गया और कुछ देर बाद कुछ सोचती-सोचती लीला भी लेट गई ।



उन दिनों गाड़ियोंमें—मेल हो या पसेंजर, तूफान हो या एक्सप्रेस—इतनी भीड़ नहीं हुआ करती। राजनका डब्बा अधिकतर खाली ही जा रहा था। एक ओर दूर कोनेमें केवल दो दंपती बैठे थे। शायद नौकरी-पर लाहौर जा रहे थे। पत्नी रंगीन गाड़ा लहड़ा और गाढ़ी ओढ़नीसे सजी-ढकी बैठी हर आध घण्टे बाद पान-तम्बाकूका नया बीड़ा चबाती और पति चुनाई हुई सुरतीका आस्वाद लेता। और लीला तथा राजन कुछ खा-पीकर अपने-अपने बिछौनेपर लेटे पढ़नेमें मशगूल थे। राजन उस समय 'साइन्स' नामक पत्रिकामें विश्व-विश्रुत वैज्ञानिक आइन्स्टाइनके सापेक्षतावादकी समालोचना पढ़ रहा था और लीला 'अनोखी दुनिया' नामक एक पुस्तक जिसमें संसारभरके मानव-समाजके बीच प्रचलित रूढ़ियोंका बड़ा विशद एवं विस्तृत विवरण था। राजनने अभी कुछ ही घण्टे पूर्व सहारनपुर स्टेशनपर 'ह्वीलर्स बुक डिपो' से यह पुस्तक और पत्रिका खरीदी थी। पुस्तकमें आगे चलकर एक प्रकरणमें संसारमें प्रचलित विभिन्न विवाह-विधियों और रूढ़ियोंके सम्बन्धमें भी लिखा गया था। लीला बड़े चावसे इस प्रकरणको पढ़ती जा रही थी। पढ़ते-पढ़ते कभी जोरसे हँस पड़ती, कभी मुस्कुराती और कभी गंभीर बन जाती। राजन अब तक पत्रिका पढ़ना समाप्तकर कुछ सोच ही रहा था कि लीलाकी जोरकी हँसीसे चौंककर उसने पुस्तकके पन्नेमें आसक्त उसके हास्य-तरल मुखड़ेको देखा।

"क्यों लीला ?"—राजनने पूछा—"इतना हँस क्यों रही हो ?"

"बड़ी मजेदार किताब है जी !"—लीला पुस्तकसे मुख हटाकर मुस्कुराते हुए बोली—"यथा नाम तथा गुण :। अनेक अनोखी बातें आज जान पाई हैं इसे पढ़कर ! बलिहारी है इस लेखककी ज्ञान-

कारीको ! लेकिन सन्देह होता है कि ये बातें बनी-बनाई तो नहीं ? लेखकके अपने मस्तिष्ककी कल्पना तो नहीं ?”

“किस संबन्धमें पढ़ रही हो अभी ?”

“विवाहके संबन्धमें ।”—लीला बिछीनेपर उठकर बैठती हुई बोली—“यों तो संसारकी अनेक अनोखी रुढ़ियोंका वर्णन है इसमें । अभी सब पढ़ पाई हूँ कहां ?”

“तुम हँसी किस बातपर ?”

“हँसनेकी एक बात हो तो बताऊँ भी । इसमें तो लगभग सारी-की-सारी ही हँसनेकी है ।”

“अभी किस बातपर हँस रही थीं ?”

“अपने देशके ही भिन्न-भिन्न भागोंमें प्रचलित विवाहकी रुढ़ियों-पर । कहीं वर-पक्ष कन्याको भगा ले जाता है, तो कहीं कन्या-पक्ष वरको । कहीं वर कन्याको अपनी पीठपर लादकर दौड़ता है, तो कहीं कन्या वरको लादकर । कहीं एक स्त्रीके अनेक पति होते हैं, और कहीं एक पतिके अनेक स्त्रियाँ । कहीं अधिक पतिवाली पत्नी समाजमें सम्मानित बनती है, तो कहीं अनेक पत्नियोंवाला पति । कहीं स्त्री-पुरुषोंमें ब्याह न होकर केवल संबंध होता है; बच्चे पिताके न होकर माँके होते हैं; राज-कुमारियों तकका विवाह न होकर अवैध संबन्धसे उनमें बच्चे पैदा कराये जाते हैं; और ब्राह्मण लोग अपनी सगी बहनकी कन्या तकसे शादी कर लेते हैं । हाय-हाय !”—कहकर कपार ठोककर लगी लीला लोट-पोट होकर हँसने ।

“क्यों ?”—राजनने मुस्कराते हुए पूछा—“हाय-हाय क्यों करने लगीं तुम ? जिन लोगोंमें ये रीतियाँ प्रचलित हैं उनके लिये ये हाय-हाय करनेकी चीज नहीं है । बिल्कुल स्वाभाविक है ।” अब राजन भी बिछीनेपर सीधा होकर बैठ गया —“दिलसे इस भ्रमको दूर कर दो लीला, कि जिन लोगोंमें ये रुढ़ियाँ प्रचलित हैं वे तुम लोगोंसे अपनेको किसी भी तरह हीन समझते हैं । बल्कि तुम लोगोंमें प्रचलित बहुतेरी

मान्य रीतियाँ उनकी नजरोंमें कुरीतियाँ हैं, हाय-हाय करनेकी चीज हैं। जिस प्रकार तुम बड़ी जातकी औरतें अपनी सदियोंकी गुलामीकी तौकको पातिव्रत्य और सतीत्वके बनावटी डोरेमें पिरोकर बड़े गर्वसे गलेमें लटकाये फिरा करती हो, उसी प्रकार तुम्हारी वे बहनें कुछ अंशोंमें अपनी आदिम आजादीके अवशेष अब भी कायम रखके अपनेको कहीं अधिक गर्वीली और सम्मानित समझा करती हैं।”

“यह कौन-सी आदिम आजादी है भाई ?”—लीला आखें फैलाकर बोली—“मने तो अब तक नहीं सुनी, और नहीं पढ़ी ?”

“तुम सुनोगी कैसे ?”—राजनने उसी मुस्कुराती मुद्रामें कहा—“और पढ़ोगी कैसे ? पाप जो लगेगा ?”

“अच्छा, बातें बनाना छोड़ो ! लेकिन पूछती हूँ, कि तुम्हें इस पातिव्रत्यसे इतनी घृणा क्यों है ?”

“न मुझे पातिव्रत्यसे घृणा है न सतीत्वसे।”—राजनने सहज स्वरमें जवाब दिया—“मुझे घृणा है उसके थोथे नारोंसे; उसके मनगढ़न्त विधि-विधानोंसे; उसके एकतरफापनसे; नारीको नरकी दासताकी मोहक बेड़ीमें जकड़नेकी उसमें छिपी शैतानी भावनासे।”

“हाँ !”—लीला जरा व्यंग्यके स्वरमें बोली—“आजकल हवा चल पड़ी है ऐसी बातें बघारनेकी, तुम भी बघारा करो ! लेकिन समझमें नहीं आता कि कोई स्त्री अपने पतिमें एकान्त निष्ठा रखनेके कारण ही गुलाम कैसे बन जायगी ? दासताकी बेड़ीमें जकड़ कैसे जायगी ?”

“बशर्ते कि वह निष्ठा एकान्त हो, स्वाभाविक हो और उभय-निष्ठ हो, तो राजनको ऐसी निष्ठापर जरा भी एतराज नहीं। ऐसे परस्पर-निष्ठ दम्पतीको मेरा शतशः प्रणाम है लीला ! लेकिन जरा छातीपर हाथ रखकर सोचो तो, कि वास्तवमें ऐसा होता है ? क्या अधिकांश स्त्रियाँ पातिव्रत्य और सतीत्वका पालन केवल परिस्थितिके दबावके कारण ही नहीं करती ? सती स्त्रियोंके पति व्यभिचारी नहीं

होते ? क्या कोई सती अपने पतिके व्यभिचारको दिलसे पसन्द करती है ? व्यभिचार साबित हो जानेपर भी एक सतीके लिये सिवा पतिके चरणोंके क्या और कोई चारा होता है ? और क्या इसी बातकी आशा एक व्यभिचारिणी पत्नी अपने व्यभिचारी पतिसे भी कर सकती है ? व्यभिचारके लिये, रखेजें रखनेके लिये, अनेक शादियाँ करनेके लिये जिस प्रकार पतिको छूट है, क्या वही छूट है पत्नीको भी ? जब यह नहीं है, तो इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं कि सतीत्व और पातिव्रत्यके विधि-विधानमें नारीको नरकी दासी बनानेकी कुटिल भावनाके सिवा और कुछ नहीं है !”

यद्यपि राजनके तर्कोंकी सबलतामें लीलाको जरा भी सन्देह न रहा, किन्तु फिर भी वह परास्त न हो सकी। बुद्धिने हथियार डाल दिये, पर हृदय अजेय बना रहा। वह उस भारत-भूमिकी ललना थी, जिसकी संस्कृति और सभ्यतागत महानताकी नींव ही सतीत्व एवं पति-भक्ति जैसी बातोंकी महिमापर टिकी है। जिन सती महिलाओंकी महिमासे जातीय साहित्यके हजारों पन्ने प्राणवन्त हो उठे हों, भला उस महिमाके मोहसे एकाएक कैसे उसका हृदय मुक्त हो जाय ? उस सतीत्वपर किये गये आक्षेपको वह कैसे एकाएक बर्दाश्त कर जाय ?

वह बुद्धिका बल न देकर आस्थायुक्त हृदयसे बोली—“तो तुम समाजमें अनाचार फैलाना चाहते हो ?”

और राजनने जरा जोरसे हँसकर जवाब दिया—“नहीं, मैं तो सदाचार फैलाना चाहता हूँ।”

“अच्छा सदाचार फैलाओगे दिन-रात सतीत्वको कोस-कोसकर ?”

“तुम भी खूब लाजबुझकड़ हो लीला ! मैं सतीत्वको कोस रहा हूँ ?”

“तो किसे कोस रहे हो ? मुझे ? मैं तो अब भी नहीं समझ पाई तुम्हारी बातको ?”—कहकर वह जबरन मुस्कुरा पड़ी।

“समझ जाओगी, यदि दिल-दिमागपर सदियोंकी बँधी संस्कारकी

पट्टी जरा खोल लेनेकी, जरा ढीली कर लेनेकी कोशिश करोगी ।”

लीलाने भट अपनी दोनों आँखें दोनों हाथसे मूँदकर मुस्कुराते हुए—“अच्छा भाई ! बोलो ! बिल्कुल खोल दूँ, या ढीली कर दूँ ?”

और राजनने भट उसकी गालपर एक हल्की चपत लगाते हुए—“शैतान लड़की ! हर बातमें मखौज ?”

और चपत खाते ही लीला भी चौंककर पीछे सरक गई । दोनों हाथ अलग करके मुस्कुराती हुई बोली—“तुम क्या कम शैतान हो ?”

फिर सहसा उसने डब्बेके दूर कोनेमें बैठे, मुस्कुराती आँखोंसे अपनी ओर ताकते उन ग्राम्य-दंपतीको देखा । लीला जरा अप्रतिभ हो गई । सम्हलकर बैठ गई ।

राजनने भी उस तरफ एक हल्की नजर दौड़ाकर मुस्कुराकर धीरेसे कहा—“अच्छा लीला, तुमसे विवाह-सूत्रमें बंध जानेके बाद तुम-जैसी पढ़ी-लिखी सती और उदार लड़की भी इसे पसंद कर सकेगी कि मैं जी-भरकर किसी अन्य सुन्दरीको देख भी सकूँ ?”—और कहकर ठठाकर हँस पड़ा ।

लीलाकी कनपट्टी तक लाल हो उठी । अपने लज्जा-ललित चेहरे-पर हल्की मुस्कान लाकर तर्जनी हिलाती आहिस्तेमे बोली—“बड़े शैतान हो तुम भी ! चाहे जितनी मर्जी देखा करो ! रोकती कौन है ?”

“रोकती है लीला, और कौन ?”—राजनने पुनः मुस्कुराकर जवाब दिया—“देखता हूँ अभीसे यह हाल, तो आगे क्या होगा ? इसीसे तो डरता हूँ कि.....”

“अच्छा, चुप रहो !”—लीला दबे स्वरमें फटकारती हुई बोली—“बातें बनानेमें तुमसे जीतेगा कौन ? लाज-शरम धोके पी गये ! यह सब बोलनेसे पहले जरा अगल-अगल निहार भी लेना चाहिये !”

“अच्छा, अब नहीं बोलूँगा !”—राजनने मुस्कुराकर आश्वासन दिया ।

“क्यों ?”—लीला तिरछी आँखोंसे मोहिनी मुस्कान बिखेरती हुई बोली—“बोलो, जरूर बोलो, लेकिन जरा.....”

“अच्छा अच्छा, ब्याल रखा करूँगा अब !”—और वह फिर बोरसे हँस पड़ा ।

“तुम हो ही बेशरम ! कौन जीतेगा तुमसे !”

लीला ऊपरसे कृत्रिम शोधका अभिनय करके भी भीतरसे परम प्रसन्न थी । उसके अंग-अंगमें रोमांच हो उठा था । लाल-साओंकी लहरोंसे कुछ क्षणके लिये हृदय उसका अभिभूत हो उठा था । वह राजनकी ओरसे मुँह घुमाकर बारीमेसे बाहरकी ओर अब देखने लगी ।

“लीला !”—राजनने उसका ध्यान अपनी ओर खींचते हुए गंभीर स्वरमें कहा—“कोई युग था, जब स्त्रियोंका अधिकार अथवा सम्मान पुरुषोंसे रंचमात्र भी कम न था, बल्कि उनसे भी अधिक । इस युगको तुम्हारे शास्त्र-पुराणोंने ‘सत्य-युग’ कहा है और आधुनिक सभ्योंकी पोथियोंने ‘जंगली-वर्बर-युग’ । जो भी हो, उस युगमें ‘समानो मन्त्रः समितिः समानी’ का आदर्श जीवनके हर आचार और विचारसे जुड़ा था । हर कुछ सामूहिक था, उत्पादन भी उपभोग भी । उत्पादन और उपभोगके साधनोंपर सबका समान अधिकार था । हर पुरुषपर हर स्त्रीका, और हर स्त्रीपर हर पुरुषका । न वहाँ सतीत्वका विधि-विधान था, न संयम-का थोथा नारा । सभी प्रकृतिके पुत्र थे, सत्यकी संतान थे । उस सामूहिक परिवारको सम्हालनेका भार माताओंपर था । और चूँकि इस प्रकारके सामूहिक जीवन-बद्ध ‘समाजमें पिताका विनिश्चय करना कठिन था, असम्भव था, इसलिये बच्चोंपर माताओंका अधिकार था । उनके नाम और गोत्र माताओंके नामपर होते थे । और उसी मातृसत्ता-का विकृत अवशेष वैदिक धर्मके उद्धारक स्वामी शंकराचार्यकी जन्म-भूमि केरलमें आज भी मौजूद है, जिसके बारेमें अभी तुम पढ़ रही थीं, और पढ़ते-पढ़ते ही तुम्हारा हृदय मारे ‘हाय-हाय’ के उद्बलित हो उठा था ।”

“हूँ !”—लीला नाक-भोंह सिकोड़कर बोली—“मेरा हृदय तो

अब भी घृणासे भरा है जी ! छी ! वह भी कोई समाज है जिसमें इस प्रकारका यौन अनाचार हो ? इस प्रकारकी अव्यवस्था हो ? मेरा तो मन मिचलाता है राजन !”

“मन तो मिचलेगा ही !”—राजनने व्यंग्यभरे स्वरमें जवाब दिया—“सदियोंका बद्धमूल संस्कार जो ठहरा ? लेकिन इस मिचलाहटसे तुम कहाँ तक बचोगी लीला ? अपने आदरणीय ऋषियों और उपास्य देवोंकी कहानियाँ यदि अपने शास्त्र-पुराणोंमें पढ़ो तो मुझे भय है कि मारे मिचलाहटके कहीं तुम्हारा दम न घुट जाय ? सकल सृष्टि-का आदि रचयिता भगवान् ब्रह्मा अपनी कन्यापर कामातुर हो उठा; हिंदू-धर्म और समाजका आदि व्यवस्थापक मनुने अपनी कन्या इड़ासे प्रणयकी प्रार्थना की; सोमने अपने दस पिताओंके साथ अपनी कन्यासे रमणकर दक्ष प्रजापतिको उत्पन्न किया; और दक्षने सत्ताईस कन्याएँ उत्पन्नकर अपने पिता सोमको प्रदान कर दिया । सोम अपनी गुरु-पत्नी तारापर अनुरक्त हो उसे जबरन सालभर अपने घर में छिपाये रखा । उसके गर्भसे बुधको उत्पन्न किया । और सकल देवोंके स्वामी भगवान् इन्द्रने चोरकी तरह गौतमके घर घुसकर उसकी पत्नी अहिल्याका सतीत्व नष्ट कर डाला । और कहीं सगी बहन सगा भाईपर अनुरक्त होकर प्रणयकी भीख माँगती है, तो कहीं सगा भाई सगी बहनपर अनुरक्त होकर । और इन सब कमौ-को करके भी वे लोग आज तुम लोगोंकी नजरोंमें ऋषि और महर्षि हैं, देव और देवर्षि हैं । लेकिन यदि उन्हींके कृत्योंका अवशेष कही किसी समाजमें आज भी पाया जा रहा है तो उसे जानकर तुम्हारा मन मिचला रहा है, माथा खराब हो रहा है ! क्यों ?”—रुहकर राजनने लीलापर एक व्यंग्यभरे कटाक्षका निक्षेप किया ।

लीला राजनके इस लम्बे प्रवचनको आश्चर्य-मिश्रित कौतूहलके साथ सुनती रही । पढ़ी-लिखी होकर भी इन बातोंसे वह अभी अनभिज्ञ ही थी । पाश्चात्य साहित्यका सामान्य ज्ञानके रहते भी भारतीय वाङ्मय-का मामूली ज्ञान भी उसे न था । पं० रमाशंकरजी काम-विह्वल होकर

धर्म-पुत्री लीलासे अपनी प्रणय-याचनाके औचित्यमें उसके सामने ऐसे अनेक उदाहरण पेश कर देते, लेकिन लीला उन्हें काम-विकृत मस्तिष्क-का कल्पित उद्गारमात्र समझकर उनसे रंचमात्र भी प्रभावित न होती। लेकिन आज राजनके मुखसे भी उसी प्रकारकी बातें सुनकर उस काम-कलुषित प्रलापकी प्रामाणिकतापर उसे रत्तीभर भी सन्देह न रहा। किन्तु मानव-इतिहासके इस प्राचीनतम सत्यको वह अब भी स्वीकार करनेमें हिचक रही थी। उसकी दशा उन प्रतिभावानों जैसी थी जो सत्यको समझनेकी क्षमता रखकर भी, सत्यको समझकर भी, अब तकके जमे विश्वासके मोहसे मुक्त नहीं होना चाहते। जो भी हो, लेकिन अब उसके दिलमें जिज्ञासाकी भूख जरूर जग पड़ी।

“राजन !”—लीलाने पूछा—“तुमने आदिम युगके सामूहिक जीवन-की बात बताई है। उन दिनों उत्पादन और उपभोगके साधनोंपर समाजके हर व्यक्तिका, हर स्त्री-पुरुषका समान अधिकार था। और यही बात यौन उपभोगके बारेमें भी लागू थी। संतानपर केवल माताओं-का अधिकार होनेसे समाजमें माताओंका ही प्रभुत्व था। तो क्या सचमुच इस आदिम समाजका अवशेष आज भी केरलमें मौजूद है ?”

“नहीं लीला !”—राजनने जवाब दिया—“आदिम समाजका सारभूत आदर्श तो था उत्पादन और उपभोगके साधनोंपर सबका समानाधिकार, सो वहाँ भी नहीं है। वहाँ भी आज राज्य-शक्ति और सामन्त-शक्तिका ही बोलबाला है। उत्पादन और उपभोगके साधनोंपर कुछ मुट्ठीभर लोगोका ही अधिकार है। वहाँ भी दलितों और शोषितोंका विशाल वर्ग मौजूद है।”

“तो, कैसे तुमने कहा कि आदिम समाजका अवशेष वहाँ मौजूद है ?”

“केवल यौन-आचारके सम्बन्धमें लीला ! पुस्तकके विवाह-प्रकरणमें शायद तुमने पढ़ा होगा कि विवाहका बाकायदा रिवाज तो केवल वहाँकी सबसे बड़ी जाति निबूदरी ब्राह्मणोंके बड़े भाईयोंमें ही है, या सबसे छोटी

जाति डोम-पाशियोंमें । शेष लोगोंमें 'कन्याणाम् सम्बन्धम्' की प्रथा है । अर्थात् ब्राह्मण-कुमार सभी वर्णोंकी कन्याओंसे बेखटके यौन-संबन्ध स्थापित कर सकता है; क्षत्रिय केवल तीन वर्णोंकी कन्याओंसे; वैश्य केवल दो वर्णों से; और शूद्र केवल अपने ही वर्णसे । इस सम्बन्धकी याचनाके लिये पुरुषको स्त्रीके पास जाना पड़ता है, न कि स्त्रीको पुरुषके पास । स्त्रीको ससुराल नहीं जाना पड़ता । और स्त्री अपनी मर्जीसे जब चाहे प्रथम सम्बन्ध रद्दकर किसी अन्य प्रणय-प्राथीसे संबंध जोड़ सकती है, और पुरुष भी । इन सम्बन्धोंसे उत्पन्न सन्तान स्त्रीकी होती है, पुरुषकी नहीं । उस बच्चेकी परम्परा मातृ-कुलसे जोड़ी जाती है, पितृ-कुलसे नहीं । बच्चा माताका नाम लेता है, पिताका नहीं । और जैसा कि तुम अभी पढ़ चुकी होगी, वहाँके द्रावणकोर और कोचीन राज्यकी राजकुमारियाँ तक ब्याही न जाकर सम्बद्धकी जाती हैं । अर्थात् उनकेलिये राजमहलोंमें ही निबूदरी ब्राह्मणोंके सुन्दर कुमार पाले जाते हैं । इस प्रकार उनके अविवाहित संबन्धसे उत्पन्न पुरुष संतान राजगद्दी-का उत्तराधिकारी होता है । राजाका लड़का नहीं, उसका भांजा नदीपर बैठता है ।"

राजनके मुखसे कुछ पंक्तियोंमें ही केरलकी सामाजिक व्यवस्थाका सार सुनकर लीला अवाक रह गई ! वह बोल पड़ी—"सचमुच राजन, हम पढ़े-लिखे लोग भी एक प्रकारसे अनपढ़ ही हैं । अपने ही देशके विभिन्न समाजोंके बारेमें तो कुछ जानते नहीं, लेकिन विदेशोंका और खासकर इंग्लैंडके इतिहासका रट्टा लगा-लगाकर अपनी सारी 'इनर्जी वेस्ट' (शक्ति नष्ट करना) कर छोड़ते हैं । धिक्कार है इस पढ़ाई को !"

"धिक्कारनेकी जरूरत नहीं है लीला ! इस पढ़ाईसे भी हमें कम लाभ नहीं हुआ है । और तुम्हारे प्राचीन पंडित ही सिवा रट्ट-मलके और होते क्या हैं ? देश-विदेशोंकी तो बात ही छोड़ो, उन बेचारोंको तो अपने आस-पास तककी जानकारी नहीं होती । खैर, छोड़ो इन बातोंको । समाज-शास्त्रके विद्वानोंने भिन्न-भिन्न भूभागोंमें मौजूद इन्हीं अवशेषोंके

आधारपर निश्चित किया है कि संसारभरके समाजोंका आदिम रूप मातृ-सत्ता-समाज ही रहा है, और आगे चलकर उसी समाजकी समाधिपर पितृ-सत्ता-समाजका विशाल महल खड़ा हुआ। फिर पितृ-सत्ताके ही पेटसे गुलामीका जन्म हुआ, सामंत-सत्ता और पूँजी-सत्ताका भी। और पितृ-सत्ताका यह रूप ज्यों-ज्यों विकसित होता गया, त्यों-त्यों समाजमें स्त्रियोंकी स्थिति दासी और रखेजकी जैसी होती गई।

^१मातृ-सत्ता, ^२पितृ-सत्ता, ^३सामंत-सत्ता और ^४पूँजी-सत्ता ये सारे शब्द लीजाके लिये मानो नये थे। यह ठीक है कि वह पढ़ी-लिखी थी।

१. विद्वानोंका मत है कि मानव-समाजके आरंभिक दिनोंमें समाजका रूप एक परिवार अथवा एक ही गोत्रके कुछ परिवारोंका समूह मात्र था। यह समाज साम्यवादी था। और उसमें माताओंकी प्रधानता होनेके कारण उसे 'मातृ-सत्ता' समाज कहा गया है।

२. फिर समाजमें दासोंका प्रवेश हुआ। दूसरे गोत्र या कबीलेके लोगोंको युद्धमें पराजितकर उन्हें दास बना लिया जाता। उनके माल-असबाबको लूटकर ले आया जाता। इस प्रकार समाजमें लोभ-लालच और युद्धकी भावना बढ़ने लगी, और वैयक्तिक सम्पत्तिकी भावना भी। शारीरिक दृष्टिसे मजबूत लोगोंका सम्मान जब समाजमें बढ़ने लगा तब स्त्रियोंकी प्रधानता नष्ट होकर पुरुषोंकी प्रधानता होने लगी। समाजकी इस अवस्थाको 'पितृ-सत्ता' कहा गया है।

३. पशु-पालन और कृषिके कारण समाजका विस्तार हो चला। युद्धकी प्रधानता होनेके साथ पुरुषोंकी प्रधानता हो ही चली थी। अब समाजमें ऐसे लोगोंकी प्रधानता हो चली जो शरीरसे अधिक बलवान थे तथा युद्ध-कलामें अधिक निपुण। समाजके समस्त साधनोंपर इन्हीं लोगोंका अधिकार हो चला। इन लोगोंको सामंत (राजा-बागीरदार आदि) कहा जाता है और उस समाजको 'सामंत-सत्ता' समाज।

४. फिर सामंतोंको दबाकर समाजमें व्यापारियोंकी प्रधानता हो गई।

बी० ए० पास कर चुकी थी। लेकिन केवल ऊँची परीक्षाएँ पास कर लेना ही तो जानकारीके लिये पर्याप्त नहीं ? और न समाज-शास्त्र या इतिहास उसकी परीक्षाके विषय थे। और न स्वयं उसने ऐसे समाज ही देखे थे जिनके आचार-व्यवहारके आधारपर समाज-शास्त्रके इस निर्णय-को सत्य मान बैठती ? लेकिन राजन तो भारतकी ही अनेक जंगली और पिछड़ी जातियोंको निगटसे देख चुका था। वह जो कुछ बता रहा था वह निरी पंडिताई न थी। उसमें अनुभवका सहयोग भी था। लेकिन लीला संतुष्ट न हो सकी। बल्कि नाराज हो गई। मौजूदा समाजमें स्त्रियोंकी स्थितिकी दासी और खेलसे दी गई उपमाको सुनकर वह चिढ़कर बोली—

“स्त्रीत्वपर तुम्हारा यह बार-बारका आशेष मुझे बिल्कुल पसन्द नहीं राजन ! रखो अपनी पंडिताई अपने पास ! कल तुमने संभ्रांत ललनाओंको वेश्याओंकी श्रेणीमें ला खड़ा किया और आज उन्हें क्रीत-दासी खेलकी श्रेणीमें रख रहे हो ?”—कहते-कहते उसका चेहरा तमतमा उठा ! मुँह फिराकर वह पुनः बारीसे बाहर देखने लगी।

“अच्छा भाई, अब नहीं बोलूँगा !”

“बोला करो !”—लीला बगैर मुँह फिराये ही बोली—“लेकिन स्त्रीत्वका अपमान न करो !”

“समझकी फेर है लीला !”—राजनने व्यंग्यभरे स्वरमें जवाब दिया—“सामाजिक इतिहासकी सच्ची बातें बतानेमें, उनकी मौजूदा निन्द्य दशासे आँखोंमें अँगुली डाल-डालकर परिचय करानेमें, इस दशासे ऊपर उठनेकी सलाह देनेमें यदि स्त्रियोंका अपमान समझ रही हो, तो मैं कैसे समझाऊँ तुम्हें ? बात तो जरा कड़ी है, पर सच्ची है—गन्दी नालीके कीड़ोंको नालीकी गन्दगी महसूस नहीं होती। और यहाँ तो

उन्होंने पूँजी लगाकर उद्योग-धंधोंका विकास आरम्भ किया। समाजमें पूँजीकी ही प्रधानता हो गई। समाजकी इस स्थितिको ‘पूँजी-सत्ता’ अथवा ‘पूँजीवाद’ कहा जाता है।

स्वर्ग-नरककी कल्पनाके द्वारा सतीत्व और पातिव्रत्यकी तथाकथित महिमाकी गाथाओंसे पोथियोंके पन्ने भरे पड़े हैं। ऐसे संस्कारोंमें पली महिलाओंको कोई क्योंकर समझाये ? किस तरह समझाये ?”

“अपनी सलाहको अपने ही पास रखो !”—लीला भी व्यंग्य-विकुंचित स्वरमें बोली—“जिस आदिम समाजकी महिमाके तुम गीत गाये जा रहे हो, मैं तो उसे पशु-समाज ही कहूंगी राजन ! खासकर उसके यौन-प्राचारको सुनकर। तो तुम क्या स्त्रियोंको पुनः उसी पशु-प्रवृत्तिमें प्रेरित करना चाहते हो ? छो !”

“फिर वही समझकी फेर ! मैं कैसे तुम्हें समझाऊँ लीला, कि मैं उस आदिम समाजकी महिमाके गीत नहीं गा रहा, बल्कि मैंने समाजके एक ऐतिहासिक सत्यकी ओर केवल संकेतभर कर दिया है। मैं उन लोगोंमेंसे नहीं हूँ जो सुदूर अतीतके गड़े मुढ़े उखाड़कर उनमें पुनः प्राण डालनेके उपहास्य प्रयत्न करते हैं, और न मैं उस आदिम समाजके स्वच्छन्द यौनाचारके प्रचारका समर्थक ही हूँ। किन्तु, कपोल-कल्पित सिद्धांतों और आदर्शोंको धर्मका नाम देकर, अथवा ईश्वरका नाम लेकर किसी सत्यको झुठलानेके प्रयत्नको भी मैं सत्यके प्रति घोर अपराध ही मानता हूँ ! और जिस पशु-प्रवृत्तिको तुम बार-बार कोस रही हो; जरा छातीपर हाथ रखकर ठंडे दिलसे सोचो तो, कि इस पशु-प्रवृत्तिके शिकार अधिक मात्रामें पशु हैं, अथवा अपनेको पशुतासे ऊपर उठा हुआ माननेवाला हमारा सभ्य मानव-समाज ? मेरा तो ख्याल है कि सभ्यताके घने पर्देकी ओटमें इस पशु-प्रवृत्तिकी बर्बरता कम होनेके बजाय कहीं और भी उग्र हो उठती है।”—कहकर मुस्कुराती आँखोंसे लीलाके सहसा-आरक्त चेहरेको वह देखने लगा।

लीला एक बार राजनपर केवल कड़ी तिरछी आँखें फेंककर ही रह गई। वह कुछ न बोली।

“लीला !”—राजनने फिर कहा—“स्वाभाविक वातावरणमें अनाचार भी संयत रहता है, जब कि कृत्रिमताके मोहक पर्देके भीतर वही

अनाचार बीभत्स हो उठता है। खैर, छोड़ो इन बातोंको। मुख्य प्रश्न है संस्कारका। जो जिसमें पला होता है उसीको सत्य मान बैठता है। अभी तुम पुस्तकमें एक स्त्रीके युगपत् अनेक पति होनेके बारेमें पढ़ चुकी हो। मंसूरीसे कुछ मील आगे 'जौनसार बाब्र' के इलाकेमें यह प्रथा आज भी मौजूद है। यदि तुम अपने संस्कारके वश होकर उनकी बहुपतित्व-प्रथाको उनके सामने कोसो, तो वे भी तुम्हारी एकपतित्व-प्रथाको कोसनेसे बाज नहीं आयेंगी। वहाँके लोग बड़े गर्वसे पाण्डवोंका वंशज कहकर अपना परिचय देते हैं। अपनी बहुपतित्व-प्रथाका संबंध पाण्डवोंकी प्रातःस्मरणीया राजमहिषी द्रौपदीके बहुपतित्वसे जोड़ते हैं। और इन्हीं पाण्डवोंकी प्रातःस्मरणीया माता कुन्तीने क्वारीपनमें ही कर्णको पैदा किया, और बादमें रोगी पति पाण्डुसे ब्याही जाकर अपने पतिके आदेशपर अन्य पुरुषोंके सम्पर्कसे युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन जैसे धार्मिक, शक्तिशाली और वीर्यवान पुत्र पैदा किये। और यह पाण्डु भी अपने पिता विचित्रवीर्यका जायज सन्तान न होकर व्यासदेवके वीर्यसे पैदा हुआ जारज संतान था। और अष्टादश पुराणोंका रचयिता, वेदोंका विभागकर्ता वेदव्यास भी धीवर-पुत्री सत्यवतीके कोखमें उसके क्वारीपनमें ही पैदा हुआ था। और मुझे हँसी तो आती है उस श्लोकको सुनकर जिसे सनातन-धर्मी नित्य प्रातः उठते ही अपने पापोंके प्रायश्चित्तके लिये पढ़ा करते हैं—'अहल्या, द्रौपदी, कुन्ती, तारा, मन्दोदरी तथा; पञ्च कन्याः स्मरेन्नित्यं महापातकनाशिनीः'। लगता तो ऐसा है कि किसी भूत मस्त्रोलियेने इस श्लोककी रचनाकर अन्ध-संस्कारियोंके शिर मढ़ दिया है!"—कहते-कहते वह जोरसे हँस पड़ा।

"अच्छा महापण्डितजी महाराज!"—लीला मजाकके स्वरमें बोली—"मान गई आपके पाण्डित्यको! अब तो जान छोड़ दें आप! लेकिन इतना जरूर कहूँगी कि उन महापुरुषोंके आचारोंकी अन्य सामाजिक आचारोंसे तुलना नहीं करनी चाहिये। समर्थको नहीं दोष गुसाईं।"

राजन फिर ठठाकर हँस पड़ा—“वाह लीला, कमाल कर दिया तुमने भी ! अच्छा प्रमाण दे डाला ! मानता हूँ इसकी प्रामाणिकताको ! बड़ा प्रबल है यह प्रमाण ! यहीं आस-पास एक रियासत है ! नाम नहीं बताऊँगा । वहाँके महाराजा साहब, पता लग जानेपर अपनी रियासतकी किसी भी सुन्दरी क्वारीकी अपने किलेमें सदाकेलिये बन्द करनेसे कभी नहीं चूकते । उन सैकड़ों अबलाओंकी आहें किलेकी दीवारोंसे टकरा-टकराकर वहाँके आकाशको आज भी धूमिल बना रही हैं, किन्तु फिर भी महाराजा साहबपर इसका कोई असर नहीं पड़ता । इन कलियुगी कृष्णके विरुद्ध कोई चूँ तक नहीं करता । जनतामें आज भी महाराजा साहब धर्म-पालक, धर्म-रक्षकके रूपमें ही प्रख्यात है । मानता हूँ तुम्हारी बातको, कि समरथको नहिं दोष गुसाईं ।”

सुनकर लीला सहम गई ! बोली—“सच ?”

“तो क्या झूठ ?”

“बड़ा अन्याय है ?”

“सो तो है ही । इसे जानकर भी, समझकर भी कोई उन महाराजा साहबके खिलाफ बोलनेकी हिम्मत नहीं करता । जनताके अज्ञान, अन्ध-विश्वास और विवशताके शिरपर सदासे ही अन्यायकी गाड़ी इसी प्रकार चलती आई है लीला !”

इतनेमें गाड़ीकी गति धीमी होते देख राजनका ध्यान उस ओर गया । देखा कि जालन्धर आ गया । झट बिछीनेसे उठ खड़ा होकर बोला—“तुमसे बताया नहीं लीला ! एक दिनके लिये जालन्धर रुकना है । उठो, तैयार हो जाओ ! बिस्तरा बाँध ले । स्टेशन आ गया !”

लीला भी उठ खड़ी होकर बिस्तरा बाँधनेमें राजनकी मदद करने लगी ।

“बड़े अजीब हैं मास्टरजी भी ! इतने दिन हो गये एक चिट्ठी तक नहीं लिखी ? जैसे पत्थरका कलेजा हो उनका ! भैयाने ठीक ही कहा कि ऐसे लोगोंका कोई विश्वास नहीं । अधिक बुद्धि भी व्याधि ही होती है । व्यवहारके क्षेत्रमें उसका दिमाग ढीला ही रहता है । अच्छा, तो इस बार मिल लूँ उनसे । फिर बताऊँगी कि क्या होता है यह ढीलापन !”

राधा आज लगभग सप्ताहभरसे सोते-जागते, उठते-बैठते इस प्रकारके मानसिक उपालम्भोंसे अपने मास्टरजीको कोस रही थी । परीक्षा उसकी समाप्त हो चुकी थी । उसे आशासे अधिक सफलताकी आशा हो चली थी । और इसीलिये और भी व्याकुल हो चली थी कि कब मास्टरजी मिलें; और कब उनसे सब बातें बताकर शाबाशी और बाहवाहीके वह शब्द सुने; उनकी उपयुक्त शिष्या होनेका दावा करे । वह हृदयके एक कोनेमें बड़े यत्नसे अपने मास्टरजीको बिठाके मनकी लालसाभरी आँखोंसे उन्हें बार-बार निहारती । वह अपनेसे बार-बार प्रश्न करती— “क्यों ? मेरे मास्टरजीको लोग कुरूप क्यों कहते हैं ? असुन्दर क्यों कहते हैं ? लोगोंकी आँखें अन्धी तो नहीं ? अज्ञानके अन्धेरेसे ढकी तो नहीं ?” और पुनः उसके मास्टरजीका चेहरा अपनी सारी गरिमा और महिमाके साथ उसके मानस-पटपर प्रगट हो जाता । चेचकके वे घने-गहरे दाग, वह कालापन और कुरूपता मानो क्षणभरमें बिलाकर विनष्ट हो जाते । वह ज्यों-ज्यों उस चेहरेको देखती, त्यों-त्यों वह सुन्दर-से सुन्दरतर और कोमलसे कोमलतर दीखने लगता । वह फिर सोचती— “भगवान् कृष्ण काले होकर भी गोपियोंकी नज्दरोंमें संसारके सबसे सुन्दर, सबसे मनमोहन थे । भगवान् शंकर भस्म और चर्मसे लिपटे

होकर भी पार्वतीकी नजरोंमें सबसे छबीले और सबसे रसीले थे ।
ऐसा क्यों ?” और वह पुनः लालसाके पंखपर सवार होकर आकांक्षाके
आकाशमें उड़ानें भरने लगी ।

अभी-अभी वह चाय-पानी करके कमरेका दरवाजा बन्द किये
पलंगपर उत्तान लेटी हुई थी । छातीपर प्रसिद्ध अंग्रेज कथाकार
डिक्सके ‘ग्रेट एक्सपेक्शन’ को रखे वह ऐसे विचारोंकी दुनियामें बिचर
ही रही थी कि किवाड़पर किसीके हल्के हस्ताघातसे चौंककर वह
बोली—“कौन ?”

“जैसा गुरु वैसी चेली, दोनों नरकमें ठेनमठेली !...आखिर यह
कौन-सी आदत तुम डाल रही हो राधा ? खोलो किवाड़ ! जरा दर्शन
तो दो !”

काशीनाथकी आवाजसे चौंककर राधा तड़फड़ पलंग से उठ बैठी
और अपने अस्त-व्यस्त कपड़ेको ठीक करती चट दरवाजेकी ओर
बढ़ी । किवाड़ खोल मुस्कुराती आँखोंसे वह चुपचाप भैयाको देखने
लगी ।

“देखो यह क्या है ?”—उसके हाथमें टेलीग्रामका फार्म थमाते हुए
काशीनाथ बोला ।

पढ़ते ही राधाके चेहरेपर प्रसन्नता मानो मूर्तिमान हो उठी !
उल्लासभरे स्वरमें वह बोली—“तो मास्टरजी आ रहे हैं आज ?”

“सिर्फ तीन ही घण्टे रह गये हैं ! अगर स्टेशनपर चलना चाहो
तो तैयार हो लो ! चलोगी न ?”—कहकर काशीनाथने मुस्कुराती
आँखोंसे उसे देखा ।

“हाँ हाँ,”—राधा उस ओर जरा भी ध्यान न देकर तड़फड़
बोली—“जरूर चलूँगी ! अभी तैयार होती हूँ !”—कहकर उसने
तार-पत्रको मेजपर रख पेपरवेटसे दबा दिया और स्वयं स्नान-घरके
लिये तैयार होने लगी ।

राधा स्नान-घरसे आकर अपने कमरेमें लटकते बड़े दर्पणके सामने

सड़ी होगई । बालोंको तोलियेसे निचोड़कर उनमें सुगन्धित तेल मलने लगी । फिर कमरसे लटकते उन बालोंको कंधी करने लगी । वह बार-बार अपने चेहरेको, यौवनके अभिनव आलोकसे प्रदीप्त अपने सौन्दर्यको आज जी-भरकर निरखने लगी । बीच-बीचमें चौंककर वह अगल-बगल भी निहार लेती और फिर कंधी करती हुई अपने उत्फुल्ल यौवनके रसको अपनी आंखोंसे आप पीने लगती । यों, वह अधिकतर सिल-वार, जामा और चून्नी ही पहना करती, किन्तु आज उसने साड़ी ही पहननेका निश्चय किया । ट्रंक खोलकर करीब आधे दर्जन साड़ियोंमेंसे उसने नीली रेशमी साड़ीपर नीली ब्लाउज ही पसन्द किया । नीले परिधानकी आभामें उसका गोरा शरीर, गोरा चेहरा इस प्रकार दमक उठा मानो साक्षात् सौन्दर्य ही अवतरित हो उठा !

वह सोचने लगी, इस मुखड़ेपर आज क्रीम और पाउडर भी मलकर देखा जाय । शृंगार-दान उसके पास था ही, यद्यपि उसका उपयोग वह कभी-कदाचित् ही किया करती । भट दरवाजा बन्दकर शृंगारदान खोल मुँहपर उसने क्रीम और पाउडर मले । चेहरेको देखा । कुछ अच्छा लगा । अब वह क्युटेक्स और लिप्स्टिककी ओर भी झुकी । डिविया हाथमें लेते ही कुछ लज्जा, कुछ संकोच अनुभव हुआ—“यह सब देखकर भैया क्या कहेंगे, और मास्टरजी क्या समझेंगे ?”—सोचते ही वह डिविया उसके हाथसे खिसक गयी । वह भटपट शृंगार-दान बन्दकर आलमारीमें रख आई, और पुनः शीशेके सामने खड़ी होकर चेहरेपरसे क्रीम-पाउडरका दाग मिटानेमें जुट पड़ी । कुछ देर बाद वह सन्तुष्ट हुई । चेहरेको देखकर मन-ही-मन वह बोली—“अब ठीक है !”

लेकिन शृंगारकी वह उठी आकांक्षा अब भी उसका साथ न छोड़ सकी । अपने काले चमकीले बालोंकी वेणीमें बेलेके दो-चार फूल लगानेकी लालसासे वह उद्वेलित हो उठी । उसने चाहा कि नौकरको भेजकर बाजारसे बेलेके फूल मँगवा ले । उसने शहरके एक मराठा अफसरकी युवती कन्याकी वेणीमें बेलेके फूलोंका विन्यास देखा था । उसे

बड़ा सुन्दर लगा था। उस सालसाको वह आज कार्यान्वित करना चाह रही थी, किन्तु कुछ सोचकर इस आकांक्षाको भी वह दबा गई। बाई कलाईपर काले फीतेसे सुनहले केशकी सुन्दर चौकोर घड़ी बाँधकर वह पूरी तरह तैयार हो गई। कमरेका दरवाजा उसने खोल दिया।

“नौशेरेसे गाड़ी चल भी पड़ी होगी !”—कमरेमें प्रवेश करते हुए काशीनाथने कहा—“चलो ! ग्यारह तो बज गये। खाना आज राजनके साथ ही खायेंगे !”

राधा उठ खड़ी हुई। काशीनाथ एक बार उसे नीचेसे ऊपर तक निहारकर मुस्कराते हुए बोला—“यह राजन भी किस्मतका सिकन्दर ही है भाई ! इस प्रकार सज-धजकर मेरा भी कोई सुन्दरी स्वागत करनेको तैयार होती ! मेरे इन्तजारमें भी इसी प्रकार कोई बेकरार रहती !”

भट राधाका चेहरा लाल हो उठा। निगाहें उसकी नीची हो गईं। किन्तु, क्षणभर बाद ही, शिर उठाकर झल्लाकर बोली—“आप भी भया.....इसीसे तो आपके साथ कहीं जाते.....”

“पगली !”—काशीनाथ उसकी पीठपर प्यारकी एक हल्की चपत लगाकर हँसकर बोला—“बहुत जल्द नाराज हो जाती है मेरी रानी बहन !.....अच्छा तो चलो अब। नाराज पीछे हो लेना !”

राधाकी नाराजगी जैसे आई, वैसे चली गई। वह खुश होगई। दोनों हँसते-मुस्कराते चौकमें आ गये। तंगिपर सवार हो स्टेशनकी ओर चल पड़े।

वसन्तका मौसम था। सबके चेहरेपर हृदयकी मस्ती मानो झूम रही थी। सड़कके दोनों ओर हिन्दू और मुसलमानोंकी दुकानोंका सजा नजारा खूब नज़र आ रहा था। फुटपाथोंपर मौसमी और सूखे फलोंके बेचनेवालोंकी बेतरतीब दुकानोंसे उठी हुई मीठी महक मनमें भारीपन पैदा कर रही थी। फेरीवालोंकी, फल-फरोशोंकी, इक्के-तांगोंकी और गाहकोंकी मिली-जुली आवाजसे वातावरण भारी हो रहा था। पठानोंके अल्ट्रड चेहरे, और उनके शिरपर बँधा गंदा साफा, और बदनमें गंदा ढीला

कुर्ता और गंदी सिलवार, तथा पैरोंमें पठानी चप्पल, और कंधेपर लम्बी बन्दूक, एवं कंधेसे बगलतक जनेऊकी तरह लटकी हुई कारतूसोंकी पेटियाँ यह सब वहाँकी रोजमर्राकी जिंदगी का नमूना था। यह सब देखते हुए राधा और काशीनाथ तगिपर बाजारको पार करते जा रहे थे। इन सबमें न कुछ नया था, न नयापन था। और राधाका दिल तो इस समय बहुत दूर चला गया था। उसके मास्टरजी आ रहे हैं ! गाड़ी आ रही होगी ! कुछ मिनटोंमें ही स्टेशनपर पहुँच जायगी ! कुछ मिनटोंमें ही वह मास्टरजीके दर्शन करेगी ! उनसे मिलेगी ! उन्हें उलहने देगी ! क्या कुछ सुनेगी और सुनायेगी !

तांगा अब रेलके लाइनपर बने उस ऊँचे पुलको पार भी कर चुका। रास्तेपर दो तगिवालोंमें कहा-सुनी होकर छुरेबाजीकी नौबत भी पहुँच गई, लेकिन राधाने या काशीनाथने उयर ध्यान भी नहीं दिया। वे बार-बार अपनी कलाई-घड़ीको देखते स्टेशनपर जल्द पहुँचनेकी उत्कंठामें थे। वे कुछ मिनटोंमें ही स्टेशनपर पहुँच भी गये। लेकिन स्टेशनपर पहुँचते ही वहाँका वातावरण देख वे सहसा सशंक हो उठे ! स्टेशन मास्टर कुछ परेशान-सा था। वातावरणमें कुच खलबली-सी थी। जब काशीनाथको मालूम हुआ कि वही गाड़ी, जिससे राजन आनेवाला था, नौशेरेके निकट पटरीसे उतर गई है, उसके कई डब्बे उलटकर चकनाचूर हो गये हैं, कुछ जानी नुकसान भी हुआ है, तब उसके सदा-हँसते चेहरेपर एकाएक बेचैनीकी काली छाया छा गई ! और राधा तो सुनतेही फक पड़ गई ! क्षणभर पहलेका उसका हँसता हुआ सौन्दर्य जाने कहाँ अदृश्य हो चला ! राधाको लगा कि वह गिर जायगी। उसने चट काशीनाथका कंधा थाम लिया।

“मेरा तो सिर चकरा रहा है भैया !”

काशीनाथने चट उसे संभाल लिया। लगा कि राधा अब बेहोश हो जायगी। उसने चट उसे पासके ‘वेटिंग रूम’ में ले जाकर आरामकुर्सी पर लिटा दिया।

“घबड़ाओ मत राधा !”

लेकिन वह खुद घबड़ाया हुआ था। और उसकी घबड़ाहट और भी बढ़ गई जब उसने देखा कि सचमुच राधा बेहोश हो गई ! क्षणभर पहलेकी परेशानीपर यह नई परेशानी हावी हो गई। बेचारा दौड़कर पानी लाया। त्रिजलीका पंखा खोल दिया। एक हाथसे राधाकी नाक दबाये दूसरेसे लगातार पाँच मिनट तक पानीके छींटे डालता रहा। राधाको होशमें आते देख उसके जी-में-जी आया। किन्तु थोड़ी देर बाद उसे फिर दूसरी परेशानीने धर दबाया।

राधा होशमें आई। किन्तु धीरे-धीरे उसकी आँखें गंगा-यमुना बन वह चलीं। काशीनाथ जरा सम्हलकर रोनी राधाको ढाड़स बँधाते बोला—“रोते नहीं राधा ! घबड़ाओ मत ! स्पेशल गाड़ी तैयार हो रही है। हम भी नौशेरे चलेंगे।”

और राधा आकुल स्वरमें बोली—“हाँ भैया ! अभी चलिये !”
—कहकर वह उठने भी लगी।

“जरा सब्र करो !”—काशीनाथने उसे बलात् बैठाते हुए जरा भिड़कके स्वरमें कहा—“तुम जैसी पढ़ी-लिखी लड़कीको इतनी उतावली शोभा नहीं देती राधा ! देखकर लोग क्या समझेंगे ?”

राधा मन मारकर बैठ गई। “अभी आया”—कहकर काशीनाथ बाहर चला गया। बड़ी कठिनाईसे उस स्पेशल ट्रेनमें दो सीटोंका वह प्रबन्ध कर पाया। और उसी समय एक परिचित कुलीके हाथ घरको संदेशा भी भिजवा दिया कि वे शाम तक घर लौट सकेंगे।

स्पेशल ट्रेन सीधे नौशेरे पहुँची। शंका-संकुल और वेदना-व्यथित मनसे राधा और काशीनाथ अपने डब्बेसे उतरे। दर्शकोंसे सारा प्लेट-फार्म भर गया था। काशीनाथ अब सीधे स्टेशनके दफ्तरकी ओर चल पड़ा और उसके पीछे-पीछे राधा इधर-उधर आँखें दौड़ाती चलरही थी। वह भट काशीनाथका हाथ पकड़कर फूटते गलेसे बोल पड़ी—“भैया ! वह मास्टरजी !”

काशीनाथने भी देखा । वह सचमुच राजन ही था । लेकिन हाथमे बेग लटकाये वह किसी और ही तरफ बढ़ा जा रहा था । अपने मास्टर-जीको विपत्तिसे बाल-बाल बचे देखकर राधाकी छाती तो फट ही पड़ी थी, काशीनाथ भी उच्छ्वसित हो पड़ा । दौड़कर उसने राजनका हाथ पकड़ लिया, और राजनको सम्हलनेका मौका तक न देकर उसके गलेसे लिपटकर वह बच्चोंकी तरह रो पड़ा । राधाकी रुलाईमें भी तीव्रता आ गई । राजन भी सम्हल चुका था । अपने प्रिय बन्धुसे गले मिलकर उसका स्नेह भी आँसुओंमें परिणत हो चला । चारों ओर भीड़ थी । सभी अपने-आपमें बचैन थे । मिलकर इन रोते प्रियजनोंकी ओर केवल एक सामान्य दृष्टि दीड़ाकर वे चले जा रहे थे । राजन अब राधासे भी मिला । राधाके आँसू अब बन्द हो चुके थे, लेकिन पलकें भीगी हुईं, कुछ फूली हुईं-सी । राजनने उसकी पीठपर प्यारका हाथ सहला दिया ।

राधाकी बड़ी-बड़ी आँखोंमें अपनी छोटी आँखें भरकर मुस्कुराते हुए वह बोला—“तुम अच्छी तो रहीं ? परीक्षामें लिखा तो खूब ?”

और राधा भी मुस्कुराकर उल्लसित स्वरमें केवल —“जी !”— कहकर चुप हो गई ।

“इसकी तो कुछ पूछो मत !”—काशीनाथने कहा—“देखते नहीं इसकी भरी हुई आँखें ?”

राधाने भट दूसरी ओर मुँह कर लिया । राजनके हृदयमें पुनः एक मीठा उच्छ्वास उत्पन्न होकर उसकी आँखोंसे बाहर आ निकला । वह विह्वल स्वरमें बोला—“मे तो तुम्हें ही तार देने तार-घरकी ओर दौड़ा जा रहा था काशी ! खैर ! यहाँ खड़े रहनेके बजाय वहीं चलें, दुर्घटना-स्थलपर ? चारेक फर्लांग होगा यहाँसे ! शायद हम कुछ मदद भी कर सकें वहाँ ! हमारा बिस्तरा भी वही है ।”

“चलो !”—कहकर काशीनाथ आगे चल पड़ा । उसके पीछे राजन और राधा भी चलपड़े । राजनके हाथमें हैंडबैग था । राधाने बड़े आग्रहसे—“लाइये

मास्टरजी, में ले लूँ।”—कहकर उस बेगको लेने लगी। और राजन अपनी आँखोंसे स्नेहका अजस्र प्रवाह उड़ेलता हुआ—“नहीं राधा, जरा भारी है। पुरुषोंके रहते स्त्रियोंका काम भार ढोना नहीं है।”—कहकर उसने उसे मना किया।

काशीनाथने मुड़कर देखा। जबर्दस्ती उसके हाथसे बेग छीनते हुए—“में तो अग्नि नहीं हूँ ! बड़ी देरसे लेकर चल रहे हो। थक गये हो ! लाओ इधर !”—कहकर उसने बेग अपने हाथमें ले लिया।

तीनों जने दुर्घटना-स्थलपर पहुँचे। तमाशबीनोंकी भीड़ भी जमा हो चुकी थी। दो डब्बे बिल्कुल चकनाचूर हो चुके थे। एक डब्बा लाईनसे हटा, जरा उलटा हुआ था और इंजिनका मुँह जमीनमें घुसा हुआ। यात्रियों में बाल-बाल बचे लोग दर्शकोंमें घुल-मिलकर अपने अनुभवका बयान कर रहे थे। कुछ लोग अपने-अपने डब्बोंके निकट चक्कर लगाते अपने माल-असबावपर भी नजर रख रहे थे। कुछ सामान्य घायलोंकी प्राथमिक चिकित्सा भी की जा चुकी थी। सख्त घायल स्ट्रेचरोंपर लाद-लादकर अस्पताल पहुँचाये जा रहे थे। बड़ा दर्दनाक दृश्य था, जब मलवेमेंसे मरी-जिन्दी लाशें निकाली जा रही थीं। किसीकी आधी धड़ थकचकर भरता बन गई थी, किन्तु फिरभी जान उसमें बाकी थी। किसीके हाथ कटकर गिर चुके थे, और किसीके पैर, लेकिन प्राण उनमें अब भी शेष थे। किसीकी आँखें बाहर निकल आई थीं, किसीकी आँत पेटसे बाहर आ पड़ी थीं, परन्तु साँस उनमें अब भी कायम थी। कुछ लोग सदाके लिए नश्वर शरीरसे निकल पड़े थे। इन दृश्योंको देख राधाका माथा ठनक उठा। वह माथा थामकर बैठ गई। लगा कि वह फिर बेहोश हो पड़ेगी।

“नहीं राधा, ऐसा नहीं करते !”—राजनने भट्ट दौड़कर उसे सम्हाला—“ऐसे मौकोंपर छाती मजबूत करनी चाहिये ! चुपचाप यहाँ बैठो ! हम जरा मलवे साफ करनेमें हाथ बटायें।”

राधाके आगे हैडबेग रखकर काशी और राजन मलवे हटानेमें लग

पड़े। पुलिस भीड़को व्यवस्थित करनेमें लगी थी। इन लोगोंके इस मानवीय कार्यपर किसीने आपत्ति नहीं की। मलवे हटाते-हटाते एक-साथ तीन लाशें मिलीं—एक युवा, एक युवती और एक दो-तीनसाला शिशु ! देखतेही राजन और काशीनाथ सिहर उठे ! लग रहा था यह एक ही परिवार है ! एक ही साथ समाप्त !

राधा तो यह दृश्य देखते ही रो पड़ी ! नारी हृदयकी सारी ममता, सारी करुणा उसके कपोलोंपर लुढ़कने लगी। उस शिशुका सुन्दर मुखड़ा मानो अब भी नीन्दमें सोता लग रहा था ! और पश्चिमी पोशाकमें सजा वह युवा ! अभी तो संसारमें प्रवेश ही किया था उसने ! उसकी बड़ी-बड़ी आँखोंके इर्द-गिर्द उसके चश्मेका सुनहला पतला फ्रेम अब भी चिपका हुआ था ! शीशे चूर-चूर होकर उसके रक्त-विलुलित चेहरेपर बिखरकर चिपक गये थे ! और वह नवयुवती ? उफ् ! उसका तो सारा शिर थकुचकर उसकी आँखें बाहर आ गई थीं !

राधा रूमालसे आँखें पोंछती सिसक रही थी। राजन और काशी मलवे हटानेके कामसे निबटकर उसके निकट आ गये। उनके करुणा-विगलित चेहरोंको सजल आँखोंसे देखती वह भरे स्वरमें बोली—“यही जीवन है भैया !”—और कहकर रूमालसे मुँह दबाकर वह फिर फफक पड़ी।

“चलो, अब घर चलें !”—काशीनाथने कहा—“सब फिक्रमें होंगे। यहाँ अपने एक दोस्तकी कार ले लेंगे।...अच्छा जी ! तुमने रहीम खान को टेलीग्राम नहीं दिया ?”

“नहीं !”—राजनने जवाब दिया—“जरूरत नहीं समझी। उन्हें खत लिखकर सिर्फ़ आनेभरकी खबर दे दी थी। तारीख नही दी थी। इस खबरसे शायद बेचैन हो उठें हों, लेकिन चिन्ता की कोई बात नहीं। चलो, मिलेंगे ही अब तो।”

एक कुलीके शिर बिस्तरा और बेग लादकर तीनों जने शहरकी ओर चल पड़े।

राधाकी माँ अब तक राजनसे बहुत कुछ उदासीन ही थीं । काशी और राधाके मुखसे बार-बार उसकी प्रशंसा सुनकर भी वे उसे धनी घरके लड़के-लड़कियोंके गृह-शिक्षकसे अधिक कुछ समझ न सकी थीं । किन्तु आज जब उन्हें स्टेशनसे काशीनाथका भेजा सन्देशा मिला कि वह गाड़ी नौशेरेमें उलट गई है जिससे राजन आ रहा था, उनकी अब तककी उदासीनता पर एकाएक ममताका तूफान हावी हो गया । उन्होंने माँका सच्चा हृदय पाया था । कुछ देरके लिये उनकी आँखोंसे भरना वह चला । जब सन्ध्याको काशीनाथ और राधाके साथ राजन उनके घर पहुँचा, वे दौड़कर आईं और एका-एक उसके गलेसे लिपट गईं । राजनको इस वृद्धासे इस वात्सल्यकी उमीद न थी । अब तक सिवा भैया-भाभीके अन्य किसीसे भी इस अमूल्य वस्तुकी उसने आशा न की थी । सो, आजकी यह दुर्घटना उसके लिये मानो वरदान साबित हुई । इस सारे परिवारको उस प्रकार अपनेपर मरते देख उसका अब-तकका अभाग्य-लुंठित हृदय सहसा सौभाग्यकी सुरभिसे सुवासित हो उठा । इस अप्रत्याशित स्नेहके छींटे पड़कर उसके दिलका मीठा दर्द उभर उठा । इस वृद्धाके स्नेहमय भुज-पाशमें बँधकर वह भी रो पड़ा । अपनी सजल आँखोंको रूमालसे बार-बार पोंछने लगा ।

“चाची, भूख लगी है !”

काशीनाथके इस जुहारपर चाची राजनसे पृथक् हो आँखें पोंछकर बोलीं—“दिनका खाना यों ही बना पड़ा है । विश्वास नहीं था कि तुम लोगोंको फिर देख पाऊँगी । ...अच्छा, आओ ! हाथ-मुँह धो लेते जाओ ! ...मैं फिर मन्दिर जाऊँगी । आज सवा सेर मिठाईकी मन्नत मानी थी, कि मेरा राजन सही-सलामत आ जाय ! सो, आशा माईने

मेरी सुन ली !”—कहकर वे भट रसोई-घरकी ओर चली गई ।

इस अकृत्रिम-स्नेह-शालिनी वृद्धाके प्रति राजनके हृदयमें एक साथ श्रद्धा, स्नेह, ममता और भक्तिका बबंडर उठ खड़ा हुआ । पुनः उसके नेत्र सजल हो उठे ।

“मुझे भैया-भाभीके पास भी जाना है !”—राजनने काशीनाथसे कहा—“वे लोग भी चिन्तामें होंगे !”

“पहले कुछ खाके, तब । मैं भी साथ चलूँगा ।”

और उधरसे राधा भी बोल पड़ी—“मैं भी चलूँगी मास्टरजी !”

खाना आ गया था । तीनों जने खाने लगे । अभी आधा ही खाया गया था कि चाचीको सहसा कोई बात याद आ गई । बोलीं—“हाँ रे राजन ! अबसे घड़ीभर पहले कोई पठान आया था यहाँ । अच्छा-भला लग रहा था । तुझे पूछ रहा था । मैंने उसे आजकी बात बताई । सुनते ही बेचारा बेचैन हो उठा था ! है कोई तेरा जाना-पहचाना पठान यहाँ ?”

सुनते ही राजनकी बेचैनी बढ़ गई । “हाँ चाचीजी !”—कहकर वह भट उठ खड़ा हुआ । बोला—“काशी, बाकी बादमें आके खाऊँगा । मैं तो चला भाभीके घर । बेचारे मारे फिक्कके परेशान होंगे । तुम लोग तबतक खाते जाओ ।”

“तुम भी बड़े घपोंचू हो यार !”—काशीनाथने जरा नाराज होकर कहा—“आखिर दो मिनटमें कौन-सी कयामत आ जाती ?”—कहता हुआ वह भी उठ खड़ा हुआ । राधा भी उठ खड़ी हुई । हाथ-मुँह धोकर तीनों जने बाहर निकल आये ।

“बनारसी ! ओ बनारसी ! !”

राजन दरवाजेकी कुण्डी खड़का रहा था । रजिया उस समय बनारसीको गोदमें लिये देहलीजपर मन मारे चुपचाप बैठी थी । इस चिर-परिचित शब्दसे वह चौंक उठी । बनारसी भी चौंक उठा । वह भट उठ खड़ी होकर हाथमें लालटेन लिये दरवाजेपर आ गई । साँकल

हटा दी। पल्ले खुले। 'बन्दगी भाभी' कहकर राजन अन्दर प्रविष्ट हुआ और उसके पीछे काशीनाथ और राधा भी। बनारसी चट उछलकर राजनके गलेसे जा लिपटा, और रजियाने भट कमरेमेंसे दरी लाकर आंगनमें पड़ी खाटपर फैला दी। फिर पश्चिमकी ओर दोनों हाथ जोड़ 'फजल अल्लाका' कहकर चुन्नीसे आँख-मुँह ढककर बार-बार उफनती रुलाईको वह दवाने लगी।

काशीनाथ और राधा चुपचाप खाटपर बैठ गये। दूसरी खाटपर राजन और रजिया। बनारसी अपने सामने दो अपरिचितोंको देख लजाकर राजनका गला छोड़ अपनी माँसे सटकर बैठा था। दूसरे कमरेमेंसे रहीमखानकी बूढ़ी माँ भी आई। राजनने बन्दगी की। वह चुपचाप एक तरफ बैठ गई।

अब राजन बनारसीको खींचकर अपनी गोदमें बैठाते हुए उससे बोला—“क्यों भई बनारसी खान ? तू तो मेहमानों को देखते ही मारे शर्मके अम्मीकी आँचलमें जा छिपा रे ! इन्हें बंदगी तो की नहीं ! ‘पखाराले’ तो किया नहीं !” फिर काशीनाथकी ओर इशारा करके—“ये भी तेरे ही चाचाजी है रे !” और राधाकी ओर संकेत करके—“और यह तेरी बुआजी है बनारसी ! देख तो भला, कितनी अच्छी है ! कितनी खूब-सूरत है !”

काशीनाथ हँस पड़ा और राधा शरमा गई। और बनारसीने शरमाकर चुपचाप अपने दोनों हाथ जोड़ दिये।

“और भैया कहाँ हैं भाभी ?”—राजनने अकचकाकर सहसा पूछा—“दुकानपर तो नहीं ?”

“दुकान तो तभी से बन्द है, जबसे सुना। अभी घड़ीभर पहले लालाजीके घरसे पूछकर आये और बगैर खाना खाये ही दौड़ गये टेशनकी ओर। कहा था, नौशेरे जायेंगे। शायद टेशनपर ही होंगे अभी !”

राजन अब धबड़ा गया। काशीनाथसे धबड़ाये स्वरमें बोला—

“यह तो बड़ा बुरा होगा काशी !” फिर कलाईकी ओर देखकर—
 “अभी शायद देर है गाड़ी खुलने में। मैं चलता हूँ स्टेशन। तुम लोग तब तक बैठकर बातें करो ! मैं अभी भैयाको लिये पहुँचता हूँ !”
 कहकर वह उठ खड़ा हुआ।

“तुम बैठोजी !”—काशीनाथ उसे रोक स्वयं उठ खड़ा होता हुआ बोला—“मैं ही जाता हूँ। उन्हें तो मैं भी पहचानता ही हूँ। स्टेशनपर मिल गये तो लौटा लाऊँगा। गाड़ी खुल गई, तो तार दे दूँगा। नहीं जी, तुम बैठो जी ! इनसे बातें करो !”—कहकर काशीनाथ बाहर निकल आया, और भट अड्डेपर पहुँचकर एक तेज ताँगेपर सवार हो स्टेशनको चल पड़ा।

अब रजिया आके राधाकी बगलमें बैठ गई। उसके कोमल हाथ पकड़के बड़े प्यारसे बोली—बीबी, तुम लोग हमारे राजा भाईके हो। और राजा “भाई हमारे हैं। तो तुम भी हुए न हमारे ?”

राधाने उस धीमे आलोकमें एक बार रजियाको नीचेसे ऊपर तक देखा। बदनमें गाढ़े ननगिलाटकी सफेद सलवार और कुर्तीके अतिरिक्त एक गाढ़ी सफेद ओढ़नीसे शिर और आधा शरीर ढका हुआ। उस ओढ़नीके घेरेमें चाँदसा चमकता हुआ चेहरा। बड़ी-बड़ी भूरी-काली आँखें। कुछेक क्षण एक-टक इस चेहरेको वह देखती रही। इस पठान महिलाकी उन विशाल आँखोंसे मानो स्नेहकी शुभ्र सरिता बह रही थी। उसके पतले-पतले ओठोंपर, ध्यारकी धीमी मुस्कान मानो खेल रही थी। गोरा सुन्दर मुखड़ा मानो प्यारकी अकृत्रिम आभासे उद्दीप्त हो रहा था। राधा निहाल हो गई, किन्तु अब भी उमका संकोच दूर नहीं हुआ था।

वह उत्तरमें धीरेसे सिर्फ बोली—“हाँ !”

और रजिया जरा और निकट होकर—“तो मेरे पास सिवा दिलके और कुछ नहीं बीबी, जो तुम्हें दे सकूँ, तुम्हारी खातिर कर सकूँ। आओ बहन, आ जाओ ! अपने दिलको लिये हुए, इस दिलमें समा जाओ !”—यह कहकर उसने राधाको कसकर छातीसे जकड़ लिया।

इस स्नेहमय खुले व्यवहारने राधाकी सारी बाधा, सारा संकोच पलमात्रमें दूर कर दिया। कुछ क्षण चुपचाप रजियाके स्निग्ध आर्लिगन-का आस्वाद लेती रहकर उससे मुक्त हो वह धीरेसे बोली—“जिसके पास दिल है, उसके पास सब कुछ है भाभी ! उसे किसी चीजकी कमी नहीं। अपने बड़ेसे दिलमें इस छोटीको जगह देकर तुमने क्या नहीं दिया बहन ? इससे बढ़कर क्या खातिर होगी मेरी कि तुमने अपनी सबसे बड़ी चीज मुझे दे डाली ?”—फिर रजियाका हाथ पकड़कर—“बोलो भाभी, सचमुच तुमने दी न अपने दिलमें जगह मुझे ?”

राधाके मुखसे भी हृदयकी निष्कपट भावनाका प्रवाह निकल पड़ा था। वह शिष्टाचारका दिखावा न था। कुछ देरके लिये धरतीपर स्वर्ग उतर आया ! रजिया विगलित हो गई। राधाको पुनः छातीसे कसकर स्निग्ध कंठसे वह बोली—“तुम-जैसोंको कहाँ पाऊँगी बीबी ! अपने माँ-बापकी इकलौती औलाद हूँ। एक छोटे भाईके लिये बड़ा तरसा करती थी। सो तो अल्लाने दे दिया। राजा-भाईको पाकर छोटे भाईकी भूख मेरी मिट गई। अब एक छोटी बहनकी जरूरत थी। सो आज तुम्हें पाकर वह तमन्ना भी मेरी पूरी होगई ?..... बोलो, हो न मेरी छोटी बहन ?”

राधाके मनकी छिपी कली जैसे खिल उठी ! उसके सरल-शुद्ध हृदयको इस सरल-शुद्ध उद्गारने उत्फुल्ल कर दिया ! उसके भी कोई बहन न थी। यह लालसा उसके दिलके किसी कोनेमें दबी छिपी पड़ी थी। रजियाके इस निष्कपट प्रस्तावने उस लालसाको उभाड़ दिया। वह भी निहाल हो उठी। वह उल्लासभरे स्वरमें चुपकेसे बोली—“मैं भी तरसा करती थी बहनके लिये ! सो भगवानने मेरी इच्छा पूरी कर दी। मैं तुम्हारी छोटी बहन हूँ भाभी !” फिर जरा मुस्कुराकर—“मगर कहा करूँगी भाभी ही। अच्छा ?”

और रजियाने भी हँसकर कहा—“अच्छा !”

उधर राजन बनारसीको छातीसे जकड़कर बोला—“आ तो बेटा !

हम चाचा-भतीजी भी आपसमें उलझ जायें !” फिर उसे गोदमें बैठाये ही मनीबेगसे एक रुपया निकालकर उसे दिखाते हुए—“इसे लेकर दौड़ तो जा बेटा ! मिठाई तो ले आ ! दोनों जने खायेंगे ! और अम्मीको दिखा-दिखाके खूब चिढ़ायेंगे !”

बनारसी रुपया लेकर हिरनकी तरह उछलकर घरसे बाहर हो गया ।

रजियाको जैसे कुछ याद आ गया—“मैं तो भूल ही गई जी ! बनारसी भी भाग निकला । जरा तुम्हीं जाओ न भैया ! बाजारसे कुछ फल-फूट ले न आओ ! अम्मीकी तबीयत ठीक नहीं है । बीबीकी कुछ खातिर तो कर दी जाय ?”

“नहीं भाभी !”—राधा मना करती बोल पड़ी—“हम लोग अभी-अभी खाना खाके चले हैं । हम क्या पराये हैं जो दिखावेकी जरूरत ?” फिर जरा मुस्कुराकर—“वैसे आने तो दो मिठाई ! मास्टरजीसे छीनकर हम दोनों बहनें खायेंगी, और दोनों चाचा-भतीजेको खूब चिढ़ायेंगी ।”

राजन हँस पड़ा । रजिया भी हँस पड़ी ।

“हाँ भाई !”—राजनने मानो हथियार डालते हुए कहा—“औरतोंकी जात अगर जबर्दस्तीपर उतर आये, तो मर्दोंकी क्या बिसात ? अच्छा भाई, खा लेना तुम लोग भी !”

“अच्छा भाभी !”—राधा रजियासे बोली—“इस बच्चेका नाम तो बड़ा अच्छा चुना है तुमने ? बनारसी ! यह नाम किसने सुझाया तुम्हें ? मास्टरजीने तो नहीं ?”

“तुम्हारे मास्टरजीको इतनी अकल कहाँ बीबी !”—रजियाने हँसकर जवाब दिया—“जो ऐसा नाम सुझायें ?”

“तो फिर ?” राधाने प्रश्न किया ।

“बात यह है कि यह बच्चा बनारसका पैदा हुआ है । हम लोग पूरे नौ साल बनारसमें रह चुके हैं बीबी ! उसीकी यादमें इसका नाम रखा है ‘बनारसी’ । जन इसे पुकारती हैं, बनारस याद आ जाता है; उसके

बन्दे याद आ जाते हैं; उसकी छोटी-सँकरी गलियाँ याद आ जाती हैं; दरिया गंगा याद आ जाती है ! बनारस हमें बड़ा प्यारा है, और इसीसे यह नाम मुझे बड़ा प्यारा लगता है बहन !” फिर राजनकी ओर संकेत करके—“और उसी बनारसमें अपने राजाभाईको भी पा गई थी बीबी !”

“अच्छा !”—राधा जरा अचरजके स्वरमें बोली—“तो बनारसमें ही तुम्हारी मुलाकात हुई थी इनसे ?”

“हाँ बीबी ! सो भी मुसीबतके दिनोंमें । मगर वह मुसीबत हमारे लिये बरक्कत बनकर आई बहन !”

उधरसे राजन नाराज होकर बोला—“यह कौन-सा कथा-पुरान तुमने खोल दिया भाभी ?”

और उधरसे राधा जोर देकर बोली—“तुम सुनाओ भाभी ! अगर मास्टरजीकी बुरा लगे तो वे अपना कान मूँद लें ।”—यह कहकर मुस्कुरा पड़ी ।

“अच्छा भाई !”—राजनने सहसा उठ खड़े होकर कहा—“तुम लोग कथा-पुरान सुनो, और मैं जाता हूँ एक दोस्तसे मिलने ।”

“नहीं भैया !”—रजिया मना करती हुई बोली—“भागो मत ! बैठो ! मैं कथा-पुरान नहीं सुनाती ।...वादा करती हूँ । नहीं सुनाऊँगी । तुम बैठो !”

“मैं अभी आया भाभी ! कुछ जरूरी काम अभी याद आ गया ।”—कहकर बिना रुके राजन वहाँसे चलता बना ।

राधाके दुबारा आग्रहपर रजियाने कहना आरम्भ किया :—

“वे मुसीबतके दिन थे बीबी, जब राजा भाईसे मेरी पहली मुलाकात हुई । बनारसके दसासुमेधपर जूतेकी अपनी एक छोटीसी दुकान थी । उसीसे हमारी रोटी चलती । बनारसीके बाप काङ्ग्रेसमें भी काम करते । गाँधीजीकी पहली सुराजी लड़ाईमें वे जेल चले गये । जो कहनेको अपने थे पराये बन गये, और पराया अपना बना ।”

राधा उत्सुक हो उठी। कौतूहलभरे नेत्रोंसे वह रजियाको ताकने लगी। रजिया बोलती गई—“उस साल बनारसी पेटमें था। दूकान बर-बाद हो गई। दुकानका नौकर भी बेईमान निकला। अम्मी बेचारी भोली-भाली, पदमें रहनेवाली ! मैं भी पर्दानशीन ! तिसपर कोढ़में खाजकी तरह मुझे नई बीमारीने आ घेरा। बच्चेकी माँ बननेका पहला तजरबा था। रात-दिन मारे ‘कै’ के कलेजा मुँहको आ रहा था। सारे वदनमें दर्द। खाना रुचता नहीं। कई तरहकी चीजें खानेकी तबीयत करती। पर पासमें पैसा कहाँ ? दवा-दारू तकके लिये नहीं। दानेदानेको मुँह-ताज बन रही थी। अपने मजहबके लोग जो अपनेपनका दम भरते, उस बक्त पास आते कतरा रहे थे, ताकि मैं उनसे कुछ माँग न बैठूँ !”

राधा अपनी उत्सुक आँखोंसे ताकती केवल एक लम्बी साँस भरकर चुप रह गई। रजिया कह रही थी—“मेरी उम्र ही क्या थी ! यही कोई बीसकी रही होगी। रह-रहकर मैं उनपर खीभती। उस सुराजी लड़ाईपर खीभती, जिसने मुझे इस हालतमें ला खड़ा किया था। कुछ जेवर थे, जिन्हें मिट्टीके मोल बेच-बेचकर खाने लगी थी। लेकिन दिन-रात सोचती कि इन जेवरोंको खा-पका जानेके बाद क्या होगा ? उन्हें तो पूरे तीन सालकी कैदकी सजा हुई थी। या अल्ला ! किस मुसीबतमें ला पटका तूने ?”

इस समय रजियाका गला भर आया। आँखें भर आईं। राधाकी आँखें भी उमड़ पड़ीं। लेकिन वह एकटकसे चुपचाप ताकती रही।

“बीबी !”—आँखें पोंछकर रजियाने फिर कहना शुरू किया—“उसी वक्त अल्लाका भेजा पैगम्बरकी तरह यह लड़का मेरी मददको आ पहुँचा ! अभी तो बच्चा ही था बेचारा। कोई पन्दरह-सोलहकी उमर होगी। मगर इस बच्चेमें, उस छोटी-सी उमरमें इतना बड़ा दिल देखकर मैं तो दंग रह गई बीबी !”

राधाका दिल कौतूहलपूर्ण प्रसन्नतासे आलोड़ित हो उठा। बोली—“अच्छा, तो उस बचपनमें ही मास्टरजीसे मुलाकात हुई

तुम्हारी ?”

“हाँ बीबी !”—रजिया बोली—“मगर वह उमरका ही बच्चा था, अकलका नहीं। जाने कहाँसे पैसे ला-लाकर खिलाने लगा हमें। मेरी दवा-दारू भी कराने लगा। बड़ी निगरानीसे मुझे अस्पतालमें ले जाता। डाक्टरको दिखाता। योंमुझे बड़ी शरम लगती कि एक बेजाना-पहचाना गैर-मजहब बच्चा आखिर क्यों मेरी इतनी तीमारदारी कर रहा? और क्यों अपने कहे जानेवाले मुँह मोड़ गये ? मैं सोच-सोचकर मारे एहसान और शरमके गड़ी जा रही थी !

“आखिर एक दिन मैं राजाभैयासे बोली—‘भैया, तुम क्यों इतनी तकलीफ उठा रहे हो हमारे लिये ? छोड़ दो हमें अपनी किस्मत पर !’ मगर उसने कहा—‘मैं तो इन्सानका फर्ज अदा कर रहा हूँ जी ! तुम तो नहीं जानती मुझे, पर रहीम भाई खूब जानते हैं। उनका एहसान मुझपर कम नहीं है। उनका छोटा भाई समझो मुझे, और अपना छोटा भाई भी। मैं पराया नहीं हूँ भाभी।’ उस लड़केके पाक दिल और प्यारकी बातोंसे मैं तो पिघल गई बीबी ! मैं तो सचमुच रो पड़ी उस वक्त। दिल बेचैन हो उठा कि इस प्यारे छोटे भाईको किस कलेजेमें छिपाके रखूँ ? उसी दिन दुनियामें इन्सानको देखा बहिन ! और उसी दिन समझा कि मजहबसे भी बढ़कर कोई चीज है इस दुनियामें ! और वह है इन्सानका बड़ा-सा दिल। यह दिल हर मजहबके इंसानोंको एक बना सकता है, भाई-बहन बना सकता है बहन !”

इतनेमें बनारसी उछलता-कूदता मिठाईकी पोटली लिये आँगनमें आ पहुँचा। और इधर-उधर आँखें दौड़ाकर ठिठककर खड़ा हो गया ! बोला—“अम्मी, चाचाजी कहाँ गये ?”

“अभी आये बेटा !”—रजियाने कहा—“आ जा, यहाँ बैठ जा ! बुआजीसे बातें कर।”

बनारसी अपनी माँके आगे पोटली रखकर उसकी बगलमें बैठना ही चाहता था कि राधाने उसका हाथ पकड़ लिया—“हाय रे तेरे चाचाजी,

और हाथ रे तू !...क्यों रे, मुझसे पहचान नहीं करेगा तू ?”—कहकर उसे अपनी गोदमें खींचकर उसका मुखड़ा उसने चूम लिया ।

बनारसीने भी प्रतिवाद नहीं किया । चुपचाप उसकी गोदमें बैठ गया ।

“बीबी !”—रजिया फिर बोली—“उस दिनसे यह काला-कलूटा इन्सान मझे दुनियाका सबसे खूबसूरत बन्दा महसूस होने लगा । तबसे इसने हम सबोंका दिल जीत लिया है । लगता है कि इससे बढ़कर नज-दीकी, इससे बढ़कर अपना हमारा कोई नहीं । यह सोचकर भी दिल फटने लगता है कि हमारा राजन हमसे जुदा हो जायगा ! किसी मुसीबत-में जा फँसेगा ! सारे दिलसे अल्लासे अरज करती हूँ—मेरी सारी उमर लेकर मेरा राजाभाई इस दुनियामें बरकरार रहे !”—कहते-कहते पुनः उसकी पलकें गीली हो उठीं ।

एक दूसरेके हृदयमें स्नेहकी उठती लहरोंसे अनेजाने राधाका दिल भी टकरा गया । वह भी उच्छ्वसित हो उठी !

रजियाने फिर कहा—“बीबी, राजाभाईने पढ़ना छोड़नेका फैसला कर लिया । बनारसीके बाप नहीं चाहते कि पढ़ना छोड़कर वह सुराजी लड़ाईमें शामिल हो । दोनों भाईयोंमें काफी कहा-सुनी हो गई । राजाभाईने रूठकर दो-दिन तक आना-जाना छोड़ दिया । फिर हम लोगोंपर क्या बीती क्या बताऊँ तुमसे । खाना-पीना हराम हो गया ! बीबी, इस लड़केके लिये हम लोग जाने क्या-क्या अरमानें पाले हुए हैं ! आखिर हारकर उसके भैयाने भी कह दिया—‘जो मर्जीमें आये करो ! मैं अब नहीं बोल्हूँगा ।’ अब सोचती यही हूँ कि.....”

रजिया अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाई थी कि दरवाजेके बाहरसे राजनकी जोरकी आवाज़ आई ! रजिया तड़फड़ उठ खड़ी होकर दरवाजेपर गई । उसने साँकल हटा दी । किवाड़ खुल गया । काशीनाथ, राजन और रहीम खान अन्दर आ गये ।

राधा भट खाटसे उठ खड़ी हुई । उसने हाथ जोड़कर रहीम खानको

‘नमस्ते’ किया ।

“तुम बैठो वहन !”—रहीम खान उसे बैठनेका संकेत करके रजियासे बोले—“बड़ी दरी लाकर बाहर फरशपर बिछा दो ।” अच्छा, तुमने बीबीकी कुछ खातिरदारी की भी या....?”

और रजियाके कुछ कहनेसे पहले ही भट राधा मुस्कुराती हुई बोल पड़ी—“आप फिकर न करें भाई साहब !” और चट मिठाईकी पोटली हाथमें लेकर उन्हें दिखाते हुए—“यह देखिये, मिठाई मौजूद है ! आपको भी मिलेगी !”

रहीम खान बड़े जोरसे ठठाकर हँस पड़े, और साथ ही काशी और राजन भी । रजिया भी दबककर हँस पड़ी । राधाकी इस आकस्मिक प्रगल्भतापर राजन और काशी दोनोंको ही बड़ा आश्चर्य हुआ !

रजिया भट अन्दरसे बड़ी दरी ले आई । दरी बिछ गई । सभी बैठ गये । अन्दरसे एक धुला हुआ दस्तरखान भी लाकर बिछा दिया गया । कुछ तश्तरियाँ भी आ गईं । चूल्हेपर पानी गरम हो ही रहा था । रजिया चली गई चाय तैयार करने और राधा मिठाईकी पोटली खोलकर स्वयं भाग लगाने लगी ।

“फिकर न करें आप !”—राजन रहीम खानकी दुविधा दूर करते हुए बोला—“काशीनाथ वचनसे ही पाक-साफ है ।”

फिर वह राधासे बोला—“क्यों राधा, तुम्हारा जात-धरम तो अभी पक्का नहीं न बना ? तुम मजेमें अलग हो सकती हो ।”

“आप लोग फिकर न करें !”—राधाने उसी प्रगल्भतासे हँसते हुए जवाब दिया—“आज मैं भी इस दीन-इलाही मजहबमें शामिल हो रही हूँ, मास्टरजी !”

एक बार फिर हँसीके सम्मिलित ठहाकेसे वहाँका सीमित आकाश गूँज उठा ।

चाय-पानी आरम्भ हो गया । कुछ सूखे फल भी आ गये । अखरोट, किशमिश, बादाम और अंजीर वगैरह । शहद भी आ गया, पाव-रोटी

भी । धीरे-धीरे बातें करते स्वाद लेते व चायकी चुस्की लेने लगे । बीसेक मिनट बाद अन्त भी हो गया । अब काशीनाथने कहा—“रहीम भाई, आज राजन को मैं नहीं छोड़ता ! आज हम दोनों एक ही साथ सोयेंगे ।”

“अच्छा भाई !”—रहीम खानने रजामन्दी जताई—“जैसी आप लोगोंकी मर्जी !”

और उधरसे रजिया बोली—“तो कल सुबहका खाना यहीं खाना राजा-भाई !”

और राजनके कुछ कहनेसे पहलेही काशीनाथ उठ खड़ा होकर बोला—“जरूर भाभी ! और हो सका, अगर वक्त मिल सका, तो मैं भी आ पहुँचूँगा !”

और राधा भी बोली—“मैं भी !”

इन दोनों भाई-बहनोंकी जिदादिलीपर सभी हँस पड़े । फिर हँसते हुए सभी उठ खड़े हुए । राजनने बनारसीको गोदमें उठाकर—“अच्छा बेटा, फिर कल सुबह आयेंगे ! भला ?”—और फिर उसका मुँह चूमकर गोदसे उसे नीचे उतार दिया ।

तीनों जने चल पड़े । रहीम खान आगे-आगे लालटेन लेकर चले । दरवाजेपर आकर रजिया राधासे गले मिली । उससे जब-तब आती रहनेका अनुरोध किया । वादाकर राधा भी सबके पीछे खुशी-खुशी चल पड़ी ।

[१४]

विपत्तिकी बेला में ही अपनी की परख होती है। सो, आज राजनको साफ पता चल गया कि इस संसार में उन भिन्न-धर्मीय भैया-भाभीके अतिरिक्त भी कुछ लोग उसपर मरते हैं। आज अपने प्रति काशीनाथ, राधा और राधाकी माँकी प्राकृतिक ममता देख उसके मनका कोना-कोना आन्दोलित हो उठा था ! रोम-रोम पुलकित हो रहा था ! काफी देरतक काशीनाथसे जहाँ-तहाँकी बातोंमें लगे रहनेके बाद एक समय दोनों अपनी-अपनी शय्यापर लेट गये। काशीनाथ तो लेटते ही खरटि भरने लगा, किन्तु राजनकी नींद आज उससे रूठ गई। मन उसका लालसाओं की दुनियाँमें विचरण करने लगा। आज दिनमें राधाके व्यवहार यादकर उसका हृदय जाने कहाँ-से-कहाँ पहुँच गया। अपने मास्टरजीकी विपत्तिकी आशंकामात्रसे राधाका विवर्लित हो उठना, मूर्छित हो जाना, और नौशेरे स्टेशनपर अपने मास्टरजीको बाल-बाल बचे देख ममताकी वेदनाके मीठे धक्के खाकर सहसा रो पड़ना आदि घटनाओंने राजनको किन्हीं अन्य विचारोंकी दिशामें मोड़ दिया था।

वह सोचने लगा—“इसे क्या समझूँ ? नरके प्रति नारीके स्वाभाविक आकर्षणका ममताभरा मीठा उद्गार; अथवा निज-जनोंके प्रति स्नेहिल हृदयका नैसर्गिक हाहाकार ? वह प्रेमिकाके प्यारका प्राकृतिक फूटकार था; अथवा स्नेहमयी शिष्याके श्रद्धालु मनका आकुल आवेदन ? इसे क्या कहूँ ? क्या सचमुच राधा मुझे प्यार करती है, मुझे चाहती है ? चाहते और प्यार तो और भी करते हैं—काशी, चाची, भैया और भाभी भी ? किन्तु इस राधाके प्यार और चाहमें कुछ विशेषता अवश्य देखी है आज। विपत्तिकी आशंकामात्रसे आकुल होकर अकस्मात् बेहोश

हो जाना यह सामान्य प्यारका सूचक नहीं !”

फिर उसने राधाको अपने हृदयके एक स्निग्ध कोनेमें बंठाकर मन-ही-मन—“राधा, क्या तू सचमुच मुझे चाहती है, प्यार करती है ? क्या तू सचमुच अपने हृदयमें मुझे जीवन-सहवरका स्थान दे चुकी है ?” और उत्तरमें सहसा राधाका लज्जा-ललित और सौन्दर्य-विकसित मुखड़ा उसके माँकी आँखोंमें नाच गया ।

बनारसको प्रस्थान करनेसे पूर्व लगातार तीन दिनोंतक घण्टों राधा तो पढ़ाते समय उसकी जय-जय की भाव-भंगिमा उसे याद आगई । जब वह पढ़ानेके निमित्त उसके कमरेमें प्रवेश करता, उसकी प्रतिदिन की साज-सज्जा में विशेषता होती । जब वह उठकर हाथ जोड़ ‘नमस्ते’ करती, प्रकस्मान् उसके चेहरेपर एक हल्की लाली उभरकर बिला जाती । पलकें कुछ झुक जाती । अपनी साज-सज्जापर एक उड़ती नजर दौड़ाकर अपने उभरे उरोजोंवा मुआयना वह अवश्य कर लेती । और इन सब चेष्टाओंका आजकल नैर्गुणिक व्यवहारसे तुलना करनेपर उसके मनमें राई-रस्ती भी शंका न रह गई कि राधा उसे सचमुच प्यार करती है, सचमुच उसे जीवन-सहवर बनाने की लालसा अपने सीधे-सरल हृदयमें वह पाल रही है ।

अपने मनमें इस विश्वासके जड़ जमाते ही राजनका हृदय आकाशमें उड़ चला । इस समय वह अपनेको इने गिने भाग्यशालियोंमें गिनने लगा । यह सही है कि लीला भी उसे चाहती थी । किन्तु लीला-जैसी शिक्षिता तेजस्विनी महिलाके प्रति स्नेह और आश्र-भावके रहते भी कभी हृदयसे उसपर आकृष्ट वह नहीं हुआ था । स्कूल-कालेजकी अन्य संभ्रान्त सुकुमारियोंसे वह आजतक निरंकुश ही रहा ! ऐसी लड़कियोंके परिहास-तरल चेहरोंपर अपने प्रति उसका व्यंग्यकी तीखी मुस्कान ही देखी । परिणामतः मित्रोंके प्रति, विशेषकर सुन्दरियोंके प्रति उसके मनमें विरक्तिकी कटुता ही भरी रही । लीलावा प्यार पाकर भी उसके हृदयकी वह विरक्ति दूर न हो सकी थी । किन्तु आज राधा-

जैसी गुणमयी सर्वसौन्दर्यमयी ललनाके प्यारका विश्वास पाकर उसके मनकी अब्रतक-संचित विरक्तिकी कटुता पलमात्रमें धुल-पुछकर साफ हो गई ।

अब उसके मानस-पटपर लीला भी आई—छरहरे बदनकी; बड़ी-बड़ी आँखोंवाली; अँगोंमें श्याम-मौ दर्दकी छटा बिखेरती हुई; प्रतिभा और तेजस्विताकी साक्षात् प्रतिरूप-सी । राधा भी खड़ी थी वहाँ—गोरे अँगोंमें गुलाबी सौन्दर्य का सौरभ फैलाती हुई; अपनी कानोंतक खिंची आँखोंमें स्नेही सरिता बहाती हुई; प्रतिभा और सरलताकी सुन्दर समन्वय-सी । राजनने बार-बार निहारा दोनोंको । राधा उसे खींच रही थी । कुछ मोचकर राजन कतरा रहा था—“यह नीवता है । स्वार्थपरता है । सुंदरताकी ओर झुकने की स्वाभाविक दुर्बलता है । तो क्या लीला असुन्दर है ? क्या हुमा यदि उनकी चमड़ी गोरी नहीं हुई ? क्या चर्ममें ही सौन्दर्य है ? मनमें नहीं ? यदि तू भी चर्म-सौन्दर्य को ही मुख्य समझे तो धिक्कार है तेरी आदर्श-वादिता को !...लेकिन राधा केवल चर्म-सुंदर ही तो नहीं ? वह तो सर्वसुन्दर है । तो सर्वसुन्दरता की ओर झुटना क्या आत्मिक कमजोरी है ? आदर्शवादको बढ़ा है ? .. नहीं लीला ! मैं तुमसे दगा नहीं कर रहा । तुम मेरे आदर और स्नेहकी पात्री हो ! गुणमयी हो ! सुन्दर हो ! पर, जाने क्यों तुम्हें दिलमें प्रेमिका का, जीवन-सहचरी का स्थान नहीं दे पा रहा ? वहाँ बलात् राधा घर बनाती जा रही है । मुझे क्षमा करना लीला !”

कुछ देर लात्ताकी मदिरा पी-पी कर वह जहाँ-तहाँ भटकता रहा । फिर अचानक अपने मनके आशनेमें उसका अपना चेहरा नजर आ गया । हाय राम ! चेन्नके घने-गहरे दागोंसे खुदखुदा, काला-कलूटा, छोटी-छोटी आँखोंवाला ! ‘छी !’ एकाएक उसके मुखसे यह धिक्कारभरा उच्छ्वास निकल पड़ा । एक लम्बी आह भरकर वह मन-ही-मन बोला—“हाय ! मैं तो किमीके भी योग्य नहीं ! न लीलाके, न राधाके !...तो ये क्यों मुझपर जान दे रही हैं ? यह तो नहीं होना चाहिये !

यह तो बड़ा बुरा होगा राधा ! मुझमें क्या देख रही हो तुम ? न रूप, न रंग, न धन, न दीलत, न समाजमें मान, न प्रतिष्ठा ! तो किस गुणको देखकर रीझ गईं मुझपर ? तुम किस सहारे मुझे लेकर समाजमें शिर ऊँचा करके खड़ी हो सकोगी ?..... लीलाकी स्थिति कुछ और है। वह मुझे अपनाकर भी समाजमें खप सकती है। पर तुम राधा ? तुम्हारी तो स्थिति कुछ और है ? तुम अब समाजकी सामान्य कन्या नहीं हो ? तुम संभ्रान्तोंमें गिनी जा चुकी हो ? नहीं नहीं राधा, ऐसा नहीं ! मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। पूरे हृदयसे चाहता हूँ। तो इसका क्या यही परिणाम, कि मेरी खातिर तुम समाजमें शिर ऊँचा करने योग्य भी न रह सको ? नहीं राधा ! छोड़ो इस बाह्यात आकांक्षाको ! मुझे दिलसे भुला दो ! मैं बड़ा अभाग्य हूँ !”—सोचते-सोचते ही एकाएक उसकी छाती फट पड़ी। पड़े-पड़े ही वह रो पड़ा। कुछ देर पहलेकी उसकी सारी सौभाग्य-भावना अभाग्यकी आकस्मिक परिकल्पनाके बवंडरमें विलीन हो गई !

कुछ देर वह चुपके-चुपके रोता रहा। कुछ आँसू निकल जानेके बाद हृदय उसका हल्का हुआ। पुनः वह भावनाके संसारमें प्रविष्ट हुआ। उसे सहसा याद आ गया अपने समयके बनारसके डिप्टी-कमिश्नर मि० गुप्ताका मुखड़ा। कोयलेसे काले चेहरेमें छोटी-छोटी आँखें, मोटे-मोटे ओठ और सुरदरे दाँत, और लम्बी भद्दी मूँछें ! और फिर याद आगई मि० गुप्ताकी पत्नी श्रीमती रमा गुप्ता, जो बनारसकी महिला-सोन्दर्य-प्रतियोगितामें सर्व-प्रथम आई थीं। उन-दिनों समाजके हर तबकेमें उनका मान था, सम्मान था। कितनी ही सार्वजनिक संस्थाओंके वार्षिकोत्सवोंमें उनके करकमलोंसे पुरस्कार वितरित होते ! उनकी 'स्वाक्षरी' पा-पाकर स्कूल-कालेजके कितने ही छात्र कृतार्थ होते ! कितनी ही संस्थाओंको अपने निरीक्षणमात्रसे वे धन्य करती रहीं ! इन-सब घटनाओंपर सोचते-सोचते सहसा एक नये विचारसे राजनका हृदय प्रफुल्ल हो उठा ! कुछ देर पहलेकी दारुण निराशा सुखद आशामें परिणत हो चली ! वह सोचने

लगा—“में भी क्यों न आई० सी० एस० बनूँ? क्यों न उसीकी दिशामें तैयारी करूँ? उसकी क्षमता रहनेपर भी देश-भक्तिकी मृग-परीक्षामें पड़कर क्यों अपना भविष्य विनष्ट करूँ? काशीनाथ भी मुझपर इसीसे नाराज है। भैया-भाभी भी इसीसे नाराज हैं।... नहीं, मैं अवश्य बी० ए० करूँगा! अवश्य आई० सी० एस० बनकर रहूँगा! अपनी राधाके योग्य अपनेको बनाकर रहूँगा!”

यह निश्चय करते ही वह एकाएक किन्हीं अन्य रंगिनियोंमें प्रविष्ट हो गया। अब उसकी भावनाके पटपर भावी जीवनके अनेक सुखद चित्र चलचित्रकी तरह गुजरने लगे—आई० सी० एस० में प्रवेश-प्रतियोगिताका दृश्य; अपने प्रिय-बन्धु काशीनाथके साथ विदेश-गमनकी तैयारी; लन्दन-नगरका परिकल्पित रूप; अंग्रेज-समाज और ब्रिटिश वातावरण; आई० सी० एस० की अन्तिम परीक्षामें सर्वप्रथम स्थान प्राप्तकर स्वदेश-प्रत्यावर्तन; फिर अपनी प्रतीक्षामें विकल प्रेयसी राधाका पाणि-ग्रहण; फिर ज्वायंट मजिस्ट्रेटके ओहदेसे तरक्की करते-करते एक समय चीफ कमिश्नरके पदतक पहुँचनेकी संभावना; और वह शान-शौकतभरा जीवन जिसमें राजे-रजुल्लेतक नतमस्तक हो रहे हों! कितना सुखद था यह सपना! कल्पनाकी इन सरस गीनियोंमें काफी देरतक उलझा रहकर एक समय अनजाने वृक्षरटि लेने लगा।

रात बीत गई। प्रभात आ गया! काशीनाथकी नींद यथासमय खुल गई। शीचादिसे निबटकर नहा-धो अपने पढ़नेकी मेजपर वह बैठ चुका था। सूरज भी कुछ ऊपर आ गया था। किन्तु राजनका खरटा अबतक चालू था। लेकिन फिर भी काशीनाथ उसकी नींदमें बाधा डालना नहीं चाह रहा था। इतनेमें नीचेसे चाची आ गई। राधाके कमरेमें पहुँचकर बोली—“हाय हाय! यह तू क्या बनती जा रही है राधा? रातभर कौन कमाई कर रही थी कि अबतक भेंसकी तरह सो रही है? इतना दिन चढ़ आया, मगर अबतक तू... उठ!”—कहकर बड़े जोरसे उसकी देह हिलाने लगी।

चाचीकी आवाज काशीनाथके कमरेमें भी आ रही थी। वह राजनके अवचेतन मनसे भी जा टकराई। खरटि लेना उसका बन्द हो गया। और राधाको बार-बार फटकारनेके चाचीके शब्दोंसे चौंकर वह, बिछोने-पर बैठ गया। आँखें मींचता वह इधर-उधर ताकने लगा।

“कमाल कर दिया तुमने भी!”—काशीनाथने मुस्कुराकर कहा—“यह कुम्भकर्णोंकी छाया कबसे आ पड़ी तुमपर? इधर गुरु और उधर चेती! मानो दोनोंमें ‘कंरीटीसन’ चल पड़ी थी!...अच्छा, जल्दी-जल्दी नहा-धोके फारिग हो लो! मुझे भूख लगी है—बड़े जोरकी!”

और राजन मुस्कुराता हुआ अँगड़ाई लेने लगा। उधर राधा भी झटपट पलंगसे उठकर अँगड़ाई लेती स्नान-घरकी ओर चली गई।

कुछ देर बाद तीनों जलपानके लिये बैठे। राधा पलकें झुकाये तीनों प्यायियोंमें केतलीसे चायका पानी उड़ेल रही थी और राजन दबी आँखोंसे उसे देखता जा रहा था। एक बड़ी-सी तश्तरीमें कुछ मिठाई, सूखे और ताजे फल रखे थे। चाय-पानी शुरू हो गया। नीचेसे चाची एक तश्तरी-भरकर कुछ गरमागरम पकौड़े और समोसे लेकर आ गई।

“वाह मेरी चाची!”—देखते ही काशीनाथ बच्चोंकी तरह उछलकर बोला—“जबतक इस दुनियामें काशीनाथ रहे, उसकी चाची भी बरकरार रहे!”

“चुप!”—चाची फटकारती हुई बोलों—“यह-सब क्या बोल रहा है तू?”

और काशीनाथ गिड़गिड़ाकर बोला—“तुम्हें छोड़ इतने प्यारसे हमें कौन खिलायेगी चाची?”

“खिलायेगी तेरी बहू, और कौन?”

“नहीं चाची! आजकलभी बहुएँ मेमसाहेब होती हैं। वे खिलाना नहीं, साथ बैठकर खाना जानती हैं।”

“नही रे! कमला अपनी बड़ी भली लड़की है!...मुझे क्या? अब तो बुढ़ापा आ गया! रात-दिन मनाती हूँ कि काशी और राधाकी

शादी आँखोंसे देख लूँ । फिर चोला बदल जाय, कोई फिकर नहीं ।”

“कहे देता हूँ !” काशीनाथ नाराजीके स्वरमें बोला— “यह चोला-ओला बदलनेकी बात मुझे मत सुनाया करो चाची !”

“तो देखो भला !”—चाची ठोड़ीपर हाथ रखके बोलीं—“तो मैं अबखे अमर होके आई हूँ रे ?... अच्छा, अच्छी तरह खा ! जरा और पकौड़े और समोसे लेती आऊँ । महाराज अब भी बनाए जा रहा है ।” कहकर वे कमरेसे बाहर चली गईं ।

“काशी !”—एक गरमागरम समोसेका आस्वाद लेकर राजनने कहा—“प्रकृतिने शायद नारीकी सृष्टि ही इसलिये की है, कि वह नरकी स्वाभाविक रूक्षता और नीरमतापर निरंतर अपने स्नेहकी वर्षा कर उसे सरस और सप्राण बनाये रहे । माँ, बहन और पत्नीके रूपमें निरंतर उम्मी पवित्र प्रेमकी वर्षा करके वह जगत् में मानो जीवन-दान दे रही है !” फिर सहसा आवेशमें झुककर—“नारी ! तेरे हर पावन रूपको सौ-सौ, हजार-हजार, लाख-लाख, असंख्य-असंख्य प्रणाम !”

काशीनाथ राजाके इस उच्छ्वासपर मन-ही-मन मुस्कुग पड़ा । उसके कुछ बोलनेसे पहले ही राधा ग्रेन पड़ी—“मास्टरजी ! नारीकी स्वाभाविक सरसता भी रूक्षतामें परिणत हो जाय, उसका जीवन भी व्यर्थ बन जाय, यदि उसे भी नरसे उसका समुचित प्रतिदान प्राप्त न हो ! यदि वह भी नरसे, उसके अनेक रूपोंके स्वाभाविक स्नेहसे निरन्तर सिंचित न होती रहे !”

“शाबाश राधा !”—काशीनाथ इस बार ठठाकर हँस पड़ा—“अब मैं मान गया कि गुरु गुड़ ही रहा, और चेली चीनी बन गई !”

राधा लजा गई । उसके चेहरेपर एक हल्की लाली दौड़ती दीखी । पलकों नीची किये वह चुपचाप चाय पीनेमें लग पड़ी ।

“मैं तो भून ही गया था राधा !”—काशीनाथ स्वरमें प्रसन्नता उड़ेलकर बोला— “एक खुशखबरी तुम्हें सुनाऊँ अभी ! बोलो, क्या इनाम दोगी मुझे ?”

राधा आँखोंमें आश्चर्य और जिज्ञासा भरकर काशीनाथके मुस्कराते मुखको देखने लगी ।

“बोलो, क्या इनाम दोगी ?”—काशीनाथने फिर कहा ।

“पहले सुनाइये भी तो !”—राधाने जवाब दिया ।

“नहीं, पहले इनामकी बात पक्की हो जाय तब ।”

काशीनाथके इस आग्रहपूर्ण ढंगपर राधा जरा और कीतूहलपूर्ण हो उठी । वह मचलती हुई-सी बोली—“सुनाइये भी तो !”

“नही ! पहले इनाम !”

“तो लीजिए इनाम । जल्दी बताइये ।”—कहती उसने मिठाई और पकीड़ेसे भरी सारी तश्तरी काशीनाथके आगे सरका दी ।

काशीनाथ और राजन दोनों ही ठहाका मारकर हँस पड़े । काशीनाथ बोला—“तुम भी बड़ी धूर्त हो राधा ! यह भी कोई इनाम है भला ? इतनेसे क्या ? और कुछ !”

राधा सुननेकी आकांक्षामें उतावली होकर उस तश्तरीको अपनी ओर खींचकर बोली—“अच्छा, तो जाइये । मैं नहीं सुनना चाहती कुछ । आपको यह भी अब नहीं मिलेगा ।”

फिर एक बार हँसीका कहकहा !

“अच्छा सुनाता है राधा ! तुमने उतावलेपनमें सारे किलेपर कब्जा जमा लिया । अच्छा सुनो ! खुशखबरी यह है कि आज रातको तुम्हारे मास्टरजीका कायाकल्प हो गया !”

राधा आँखें उठा और फैलाकर चुपचाप काशीनाथको देखने लगी ।

‘तुम उस वक्त नीचे नहा रही थीं ।’—काशीनाथने फिर कहा—
“बिछीनेपर उठ-बैठते ही प्रभात-सुमिरनकी तरह सबसे पहले तुम्हारे मास्टरजी ने यही बताया कि, वे अब अवश्य बी० ए० में बैठेंगे; आई० सी० एस० की तैयारी करेंगे; और आई० सी० एस० बनकर रहेंगे !”

सुनते ही राधाका चेहरा खिल उठा ! उल्लासभरे स्वरमें वह पूछ बैठी—“सच ? सच मास्टरजी ?”

श्रीर राजनने भी देखटके जवाब दिया—“सच ।”

“यह आपने बड़ा अच्छा निश्चय किया मास्टरजी ! अब बड़ा अच्छा रहेगा कि भैया और आप साथ-साथ विलायत जायें, और साथ-साथ सफल होकर वापस आयें !”

“तुम नहीं चलोगी ?”—राजनने पूछा ।

“वाह भाई बुद्धिमान !”—राधाके कुछ कहनेसे पहले काशीनाथने ही जवाब दिया—“अगर वह भी चल देगी, तो चाची कहाँ रहेंगी ? कितनी मुश्किलसे तो उन्हें सिर्फ अपने लिये राजी कर पाया है ।”

इतनेमें नीचे गद्दीपरसे बूड़े मुनीमजी कानपर कलम रखे दरवाजेपर आ खड़े हुए । बोले—“नीचे लाला वंशीधरजी बैठे हैं ।”

सुनकर काशीनाथके चेहरेपर एकाएक विरक्तिकी छाया छा गई । बोला—“अच्छा, आप चलें नीचे । मैं आया दो मिनटमें ।”

मुनीमके चले जानेपर काशीनाथने कहा—“जाने क्यों इन-लोगोंको मुकदमेवाजीमें इतना रस आता है ? बेईमान ! स्वार्थी ! सच कहता हूँ राजन, इन शरीफोंका यह सारा गिरोह परले दर्जेका बेईमान और हरामजादा है ! अच्छा भाई, तुम-लोग अब मुझे फुरसत दो । यमराजका स्मुर सिरपर सवार है !”—कहकर उठ खड़ा हुआ । रूमालसे हाथ-मुँह पोंछ वह नीचे चला गया ।

राधा इस एकांतको पाकर मन-ही-मन प्रसन्न हुई । बोली—“तो, आपके इस निश्चयसे आपके भैया-भाभी तो खुश होंगे ही, आपके घर-वाले भी कम खुश नहीं होंगे मास्टरजी !”

राजन जरा सूखी हँसी हँसकर बोला—“न मेरा कोई घर है, न घरवाला ।”

“क्या ?”—राधा आश्चर्यसे आँखें फैलाकर बोली—“आपका अपना कोई घर नहीं है ? आपके अपने घरवाले नहीं हैं ? तो क्या आपका अपना कोई नहीं है ?”

“है क्यों नहीं ?”—राजनने मुस्कुराकर जवाब दिया—“तुम हो,

काशी है, चाचीजी हैं, भैया और भाभी हैं !”

राधा कुछ देर चुप रहकर सकुचाते हुए बोली—“मेरा मतलब, मेरा मतलब है, ... सगा-सहोदरसे ।”

“और तुम-जोग किस सगे-सहोदरसे कम हो राधा ?”—कहते-कहते राजनका गला भर आया । फिर सम्हलकर बोला—“सच कह रहा हूँ राधा ! जिसे तुम-जोग सगा-सहोदर मानती हो, वह मेरा कोई नहीं ।”

“माता-पिता ?”

“माता-पिता भी नहीं ।”

“अपना घर-बार ?”

“सो भी नहीं ।”

“आप बनारसके हैं न ?”

“किसी समय था । अब पेशावरका हूँ ।”

राधा अपनी आँखोंसे विस्मयके अगारे उगलती चुपचाप ताकती रही ।

“राधा !”—राजनने फिर कहा—“सच बता रहा हूँ, कि मुझे न अपनी जातका पता है, न पाँतका; न गोतका, न परिवारका; न सगेका, न सहोदरका; और न माँका, न बापका ।”

राधा पुनः अवाक् आँखोंसे राजनको देखती रही !

राजनने फिर कहा—“इतना ही जानता हूँ राधा, कि बचपन मेरा बनारसके एक हिन्दू-ग्रन्थालयमें बीता है, और उसी नाते में हिन्दू कहा जाता हूँ । बस ।”

क्षणभरके लिये राधाके चेहरेपर मुर्दनी छा गई । किन्तु भट सम्हलकर वह ओठोंपर बलात् मुस्कुराहट लानेकी कोशिश करने लगी । भट कुर्सीपरसे उठ खड़ी होकर मुस्कुराती हुई बोली—“आपने कल भी अच्छी तरह नहीं खाया मास्टरजी ! नीचे आवाज दूँ कि कुछ और समोशे दे जाय ।”—कहकर वह भट कमरेसे बाहर हो गई ।

राजनने मना किया—“नहीं राधा, अब नहीं । बहुत खा चुका । अब भाभीके घर भी जाना है ।”—कहकर वह भी उठ खड़ा हुआ ।

राजन अपने हिस्साखानीके बागेर आ गया । धून-गर्दसे भरे अपने कमरेकी सफाईमें लग पड़ा । अब पूरे मनोयोगसे उसे बी० ए० की तैयारीमें भिल्ल पड़ना था । परीक्षाके फार्म वह भर ही चुका था । प्रिन्सिपलसे लेकर सामान्य अध्यापकतक उसपर कृपावान थे । प्रो० बनर्जीकी विशेष कृपा थी ही । दो-तीन महीने लगातार अनुपस्थित रहनेके बावजूद भी उपस्थिति-बहीसे उसका नाम कटा नहीं था । परीक्षा शुरू होनेमें अब दो ही सप्ताह शेष थे । सो, वह 'करूँ या मरूँ' का संकल्प लेकर अपनी पाठ्य-पुस्तकोंसे उलझ पड़ा ।

इधर राधा चाय-पानीके बाद अपने कमरेमें जाकर बन्द हो गई । लगता था जैसे वर्षोंकी थकी हो । जैसे मगपर हजारों मन बोझ पड़ गया हो । जैसे वह दबी जा रही हो । थके मनसे पलंगपर लेट गई । कुछ देर सूनी आँखोंसे कमरेकी कड़ियाँ वह गिनती रही । फिर कुछ देर मेजपर खट-खट करती मेज-घड़ी को वह देखती रही । फिर दोनों आँखें बन्दकर कुछ सोचने लगी । जैसे सारा विश्व-ब्रह्मांड अन्धकारसे आच्छन्न हो उठा हो ! जैसे प्रलयके कोलाहलसे सारा हृदय स्तब्ध हो गया हो ! चेतना उसकी स्तब्ध हो गई । विचार-शक्ति उसकी खो गई । वह पड़ी रही, पड़ी रही । काफी देरतक अचेत बनी रही ।

फिर धीरे-धीरे वह सचेत होने लगी । उसकी आँखें खुलीं । लेकिन चारों ओर निराशाकी निर्दय छायाके सिवा कुछ दिखाई नहीं दिया । कमरेकी हर वस्तु जैसे व्यंग्यकी तीखी आँखोंसे उसे देख रही थी । उसकी आँखें फिर मुँद गईं । एक समय निराशाकी लम्बी आह भरकर थके स्वरमें अपने-आपसे बोली—“हाय ! यह मैं क्या कर बैठी ? कहाँ जा गिरी ? मास्टरजीमें चाहे जितने भी गुण हों, जैसी भी विद्वत्ता हो, उन-सबके

लिये उनका आदर किया जा सकता है, सम्मान किया जा सकता है, लेकिन.....लेकिन दिन नहीं दिया जा सकता ! एक उच्च-कुलीन कन्याका इस व्यक्तिको दिल दे बैठना तो ठीक नहीं, उचित नहीं ?.....सत्य कबतक छिपा रहता ? यह तो जान गई समय रहते ! कोई जान भी नहीं पाया था अबतक ! उफ् ! यह तो बच गई !.....जिसके माँका पता, न बापका ? जातका, न गोतका ? अनाथालयका पला हुआ ? उफ् !.....बड़ा बुरा हो जाता ! समाज भी तो है कुछ ? वह केवल व्यक्तिगत गुण ही तो नहीं देखता ? बल्कि, जिसे वह सबसे अधिक देखता है, उस वस्तुका इस व्यक्तिमें बिल्कुल अभाव ही है ?"—सोचते-सोचते उसके मनकी आँखोंमें राजनका असुन्दर, अकुलीन, अजाति और धनहीन व्यक्तित्व प्रगट हो उठा ! सहसा विरक्ति और विवृण्णताके एक प्रबल बवंडरसे हृदय उसका आन्दोलित हो उठा !

"राधा !"—फिर अपने-प्रापसे वह बोली—"तू इसीको अपना दिल देने चली थी ? तेरे भीतर और बाहरकी आँखोंपर क्या पट्टी पड़ गई थी ? न जरा सोचा, न विचारा, और जागिरी कहाँके एक अन्धेरे गड्ढे में ?.....सोचती थी बनारसमें घर होगा, माँ-बाप होंगे, संस्कृत पढ़ा होनेके कारण जाति भी ब्राह्मणोंकी ही होगी ! हाय, हाय ! अब-तकका सारा बना-बनाया महल लहमेभरमें ढहकर धूलमें जा मिला !"—सोचते-सोचते निराशाके उच्छ्वसित आवेगसे वह सिसक पड़ी । वह चुपके-चुपके काफी देर तक रोती रही ।

विचारोंकी मुद्रामें ही वह एक समय सो भी गई । तरह-तरहके सपने देखने लगी । सोती रही । फिर बार-बार जगाई जाकर दो-पहरके भोजनके लिये बिछौनेसे उठी । अब भी हृदयपर हजारों मन बोझ पड़ा ही था । किन्तु उसने बड़ी चेष्टा की अपने मनोभावोंको छिपानेकी, चेहरेपर कृत्रिम मुस्कानके आलोकसे अपने व्यथित-निराश मनकी व्यथा दबानेकी । किन्तु, उसके मुखपरसे जीवनका छलकता विलास

बिला चुका था ! उन सरस निर्दोष नयनोंसे चपलता चल चुकी थी ! चेहरेपर विन्तावी गम्भीरता चिपक चुकी थी ! इस एक दिनमें ही, कुछ घण्टोंमें ही उसके वयके मानो वर्षों बीत चुके थे !

राधाका फूल-सा शरीर, गुलाब-सा चेहरा दिनोंदिन मुरझाने लगा, सूखने लगा ! चाची चिन्तित हो चलीं । काशीनाथ भी चिन्तातुर हो चला । वह जब-कभी पूछता—“राधा, तुम इतनी उदाम क्यों हो ? दिन-दिन तुम्हारा स्वास्थ्य क्यों गिर रहा है ?” तो राधा, अपने मनमें सहसा उठी हुई हूकानो दबाकर ओशोंपर हठान् मुस्कान लाकर जवाब देती—“नहीं तो ? ठीक तो हैं भैया !” और किसी-न-किसी बहाने सामनेसे दूर हो जानेकी कोशिश करती । कोठरीमें बन्द होकर पलंगपर पड़ी-पड़ी रोती भी ।

इधर सन् १९३० का सत्याग्रह-आन्दोलन आरम्भ हो चुका था । पेशावरकी गली-गली आजादीके सैनिकोंके मारोंसे गूँजने लगी थी । ‘इन्कलाब जिन्दाबाद’ ‘आजाद हिन्द जिन्दाबाद’ के गगन-भेदी नारे गगनको गुँजा रहे थे ! युवकोंका हृदय गूँज रहा था, दिल-दिमाग गूँज रहा था ! लेकिन राधा, यह-सब सुनकर भी कुछ सुन नहीं रही थी, समझकर भी कुछ समझ नहीं रही थी ! मानो दिल और दिमाग उससे विदा ले चुके थे ! जब-तब सूने दिलके उच्छ्वास सूने आँसू बनकर आँखोंके किनारोंसे बह निकलते ! और एक लम्बी साँस लेकर ‘हाय रामजी’ कहकर वह चुप हो जाती !

शायद दिनका तीसरा पहर था । राधा किबाड़ बन्द किये किसी किताबके पढ़नेमें दिल लगानेकी भरपूर चेष्टा कर रही थी । वह पंक्तियाँ पढ़ती, बिना कुछ समझे-बुझे पन्ने-के-पन्ने पढ़ जाती, लेकिन सब अर्थहीन । अन्तमें थककर, हारकर, आँखें बन्दकर पलंग-पर पड़ गई ।

कुछ देर बाद किबाड़पर बार-बार हस्तक पड़नेकी आवाजसे चौंककर राधा होशमें आई । तड़फड़ पलंगपरसे उठकर मुँह-

ग्रांख पोंछनी, कपड़े ठीक करती दरवाजेपर आ गई। किवाड़ खोल चेहरेपर जबरन मुस्कुराहट भरकर काशीनाथको देखने लगी। लेकिन वह घबड़ा उठी, भीत हो उठी उसके चेहरेको देखकर। काशीनाथ बड़ा परेशान था। चेहरा पीला पड़ा हुआ ! ओठ सूखे हुए !

“बड़ा जुलूम हो गया राधा !”—काशीनाथ अत्यन्त व्याकुल स्वरमें बोला—“किस्साखातीमें गोली चल गई ! कितने हलाक हो गये ! कितने घायल हो गये ! आना राजन भी घायल हो गया राधा !” और कहकर वचनोंकी तरह वह जोरसे रो पड़ा।

“क्या ?”—राधा सहसा एक जोरका धक्का खाकर विस्मित स्वरमें बोली—“गोली लग गई ? ... मास्टरजीको ? ... मास्टरजी घायल हो गये ?”

वह पागवनी तरह प्रलाप करती भट पलंगपर जाकर गिर पड़ी। और चट चुन्नीसे चेहरा ढँककर अचानक हृदयमें उठे हाहा-बारबो दवानेकी बार-बार चेष्टा करती अन्तमें फुफकार छोड़कर रो पड़ी।

नीचेसे चाची भी दौड़ी आई। आते ही दोनों—“क्यों रे काशी, कहाँ तो सुना कि वह पढ़ने-लिखनेमें लग गया ? सुराजी लडाईसे अलग हो गया ? फिर इस लड़केके मगजपर क्या सवार हो गया कि गोली खाने चला गया ? हाय हाय ! हे भगवान !”—कहती दोनों हाथोंसे माथा धामकर वे वहीं नीचे बैठ गईं।

चाचीकी आँखोंमें भी चुपचाप आँसूके भरने बह चले। काशीनाथ अब कुछ सम्हल चुका था। वह जाकर राधाके पास बैठ गया। उसका शिर अपनी गोदमें लेकर उसकी पीठपर चुपचाप हाथ सहलाता रहा।

चाची बोनीं—“हाँ रे, काशी ! तो वह कहाँ पड़ा है ? उसकी खोज-खबर..... ”

अब राधा सहसा उठकर सीधी हो बैठ गई। व्याकुल स्वरमें

बोली—“अब क्या होगा भैया ? मुझे ले चलिये, मुझे ले चलिये वहाँ ! मैं जाऊँगी वहाँ !”—यह कहती वह उठ खड़ी हुई ।

“सब्र करो राधा !”—काशीनाथ उसका हाथ पकड़कर बैठाते हुए बोला—“कहाँ जाओगी अभी ? शहरमें कफ़रूँ लगा है । राजन अस्पतालमें है । वह सिर्फ़ घायल हुआ है । अधिक चिन्ता न करो ! घबड़ाओ नहीं !”

“भैया !”—राधा अब काशीनाथकी गर्दन पकड़कर गिड़गिड़ाकर बोली—“कई सरकारी अफसर आपके दोस्त हैं । कोई उपाय कीजिये ! मुझे एक बार मास्टरजी को दिखा दीजिये !”—कहते-कहते पुनः उसकी आँखोंने मोलियोंके दाने झहरने लगे ।

“उपाय तो करूँगा ही !”—वह उठकर खड़ा होता हुआ बोला—“तुम जरा सब्र करो !”—कहकर वह कमरेसे बाहर हो गया ।

चाची आकुल होकर बोली—“तू अभी कहाँ जा रहा है रे ?”

“कहीं नहीं चाची ! अपने कमरेमें जग आराम करूँगा अभी ।”

अपनी कोठरीमें जाकर दरवाजा बन्दकर खमालते मुँह ढककर वह पलंगपर लेट गया ।

×

×

×

राजन अपने कमरेमें बड़े मनोयोगसे अपनी पाठ्य-गुस्तकोंके उलझा हुआ था । परीक्षा लगभग समाप्त हो चुकी थी । केवल दो ही पत्र शेष रह गये थे । उसने लिखा खूब अच्छी-तरह था । पूरा सन्तोष था उसे । जब वह पढ़नेमें एकाग्र होता, बीच-बीचमें अपनी सारी कमनीयताके साथ राधा उसके दिलके दरिचोंसे उसे भाँक जाती । राजन क्षणभरके लिये चंचल हो उठता । किन्तु भट सभ्र भी जाता । अपने-आपसे बोलता—“अब थोड़ेकी ही कसर रह गई है राधा ! मोर्चा मारकर ही तुमसे मित्रूँगा । अब इस जीवनकी सारी महत्वाकांक्षा तुम हो ! सारी आशा-निराशा तुम हो ! अब तुम्हारे ही लिये जिऊँगा ! तुम्हारे लिये ही मरूँगा !” फिर वह पाठ्य-गुस्तकपर

पिल्ल पड़ता ।

आज जब-तब पेशावरकी गलियोंमें गुँजते नारोंसे राजनका दिल भी रह-रहकर गुँज उठता ! एकाएक उसका हृदय स्वतन्त्रताकी वेदीपर उत्सर्ग होनेकी भावनासे भर उठता ! वह सोचने लगता—“यह मैं क्या कर रहा हूँ ? किस मायामें आ फँसा हूँ ? गलेमें गुजामीभी तौक लटकानेकी धुनमें किस प्रकार गिरा जा रहा हूँ ?”—सोचते-सोचते अपने प्रति विश्कार, ग्लानि और घृणाकी घूर्णमि घबड़ा उठता । किन्तु दूसरे ही क्षण उसके मनश्चक्षुके समक्ष अंग-अंगसे सौंदर्यकी मादक किरणें बिखेरती, मुस्कुराती राधा आ खड़ी होती । वह फिर सोचने लगता—“देश-भक्ति भी एक नशा है । नशा नष्ट हो जानेपर वास्तविकता जब सामने आयेगी ? सन् २१ के सत्याग्रहमें आवेशमें आकर कितनोंने अपना जीवन नष्ट कर डाला ! अपना भविष्य चौपट कर लिया !...दो ही पर्चे तो शेष रह गये हैं ? परीक्षा तो पूरी करनी ही चाहिये ।”

राजन अब अच्छी-तरह पुस्तकोंसे उलझ पड़ा । अपने ध्यानमें योगियों-सा अचल, संकल्पमें धीरों-सा अटल और उद्देश्यमें वीरों-सा महान बनकर शान्तदारीके साथ परीक्षा उत्तीर्ण करनेके प्रयत्नमें वह लग पड़ा ॥

किन्तु घण्टेभर बाद ही इन्कलाबके नारोंसे पुनः आकाशका पर्दा फटता प्रतीत हुआ । राजन इस बार अपनेको सम्भाल न सका । कमरेसे निकलकर छतकी मुण्डेरसे सटकर खड़ा हो सड़ककी ओर वह देखने लगा । हाथमें तिरंगा झण्डा लिये, लाल बंदियोंमें सजी खुदाई-खिदमतगारोंकी टोलियां नारे लगाती आगेकी ओर बढ़ी आ रही हैं, और दूसरी ओर, काबुली दरवाजेकी ओरसे इन्हें रोकनेके लिये शस्त्रसे सजी सरकारी फौज आगे बढ़ी आ रही है !

राजन बड़े ध्यानसे देखता रहा । सरकारी अफसरकी ओरसे बार-बार चेतावनी देनेके बावजूद भी आजादीके सैनिकोंकी

टोलियाँ आगे बढ़ती ही गईं। गोली दागनेका हुक्म हुआ—वन, दू, धी ! लेकिन व्यर्थ ! देशभक्त गढ़वाली रेजीमेंटने अपने निहत्थे देशभक्त देशवासियोंपर गोली चलानेसे साक इन्कार कर दिया !

एकाएक राजनके मुखसे निकल पड़ा—“शाबाश गढ़वाली सैनिको ! भारत-माताके सच्चे सपूतो ! शाबाश !”

यह अभूतपूर्व घटना थी। गोरे अफसरने बड़ी चतुराईसे अपना मनोभाव दबा इन विद्रोही सैनिकोंको उनके नेता चन्द्रासिंह-सहित बैरकमें भेज दिया। बादमें गढ़वाली सैनिकोंको अपने नेता-सहित इस देश-भक्तिकी बड़ी गहरी कीमत चुकानी पड़ी।

अब दूसरी फौज आ गई। निर्धोक गोली चलने लगी। एक-एक-कर खुदाई-खिदमतगारोंकी टोलियाँ इन्कलाबके नारे लगाती गोलियोंसे जूझ-जूझकर घराशायी होने लगीं।

राजनका पारा गर्म हो उठा ! उसके मुखसे अपने प्रति पुनः धिक्कारके शब्द निकल पड़े—“छी राजन ! तू किस मोहमें फँस गया रे ? एक सुन्दरीके पीछे तेरा इतना अधःपतन ? छी ! छी !! छी !!!”

“अथ वाऽब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः।”—कहकर वह झट कमरेमें गया। पाँचेक मिनट बाद बाहर होकर अपने-आपसे फिर बोला—“चल ! वीरोंकी मौत मर ! संसारके मोह-मायामें फँसकर कुत्ते-बिलियोंकी मौत मरनेकी कामना न कर !”

वह चला गया। जाकर उन आजादीके सैनिकोंमें शामिल हो गया।



“राउंड-टेबुल-कान्फ़ेंस” के माया-जालमें फँसकर सत्याग्रहकी लड़ाई ठण्डी पड़ चुकी थी । अस्पतालसे मुक्त होनेके बाद राजनपर मुकदमा चलाकर उसे पूरे सात साल कैदकी सजा दी जा चुकी थी । और काशीनाथ अपनी चाची और राधाको साथ ले देशके सभी प्रमुख तीर्थोंकी यात्रासे वापस आ चुका था । इसके बाद एक दिन वह जेलमें राजनसे मिलने चला । साथमें चाची और राधाके अतिरिक्त रहीम खान, रजिया और बनारसी भी थे ।

राजन खिड़कीके सामने लाया गया । अपनी भाँकीके इन्तजारमें खड़े प्रियजनोंको उसने हाथ जोड़ नमस्कार किया । सबकी आँखें भर-सी आईं । समय कम था । काशीनाथ कलाई-घड़ीपर एक नजर दोड़ाकर रुमालसे आँखें पोंछकर बोला—“कंपिटेशनमें तो आ ही गया हूँ । इसी हफ्ते इंग्लैंड जा रहा हूँ । राधा लाहौर रहेगी । मेरे एक रिस्तेदार मि. बी० के० मलहोत्रा वहाँके मशहूर बैरिस्टर हैं । उन्हींकी वार्ड (संरक्षिता) रहकर गवर्नमेंट कालेजमें पढ़ेगी । मैं चला जा रहा हूँ । तुम भी बाहर नहीं रहे । सोचा, यही इन्तजाम ठीक रहेगा ।”

“और चाचीजीका क्या होगा ? वे भी राधाके साथ ही रहेंगी क्या ?”

“नहीं । कारोबार भी तो देखना है । रहीमभाईको बड़ी भाजू-मिन्नतसे राजी कर लिया है । वे कारोबारकी देख-भालमें चाचीकी मदद करते रहेंगे । भाभी और बनारसी जब-तब आकर चाचीका मन बहला देंगे । कभी राधा खुद चली आयगी, और कभी खुद चाची ही लाहौर जाकर उसे देख आया करेंगी ।”

अब समय समाप्त हो चला था । चेतावनी दे दी गई थी । काशी-

नाथने फिर कहा—“मेरी वह लालसा तो पूरी न हो सकी, कि तुम्हारे साथ इंग्लैंड जाऊँ। अकेला ही जा रहा हूँ। देख, फिर कब वापस आकर तुमसे मिलूँगा!”—कहते-कहते उसका गला भर आया। रूमानसे आँखें पोंछते वह हिचकियाँ लेने लगा।

राधा भी सिसक पड़ी। सभीकी आँखें छलछला आईं।

राजनने सजल नेत्रोंसे भरे स्वरमें कहा—“मेरी सारी शुभ-कामना तुम्हारे साथ रहेगी काशी! जाओ! सफल होकर वापस आओ! हम फिर मिलेंगे! जरूर मिलेंगे!”

राजनने फिर सबको नमस्कार किया। बनारसीके उद्देश्यसे दो-चार प्यारके शब्द भी उच्चारें। फिर चला गया।

दो तांगे जेलके फाटकार उनके इन्तजारमें खड़े थे। सभी वापस आकर तांगेपर बैठकर घरकी ओर चले। इस समय काशीनाथकी दशा बच्चों-जैसी हो रही थी। अपने प्रियबन्धुसे भावी लम्बे वियोगकी व्यथा उसके दिलको खरोँच रही थी। वह रह-रहकर रूमालसे आँखें पोंछ रहा था।

“राधा!”—एक समय वह भावनाभरे स्वरमें बोला—“राजनकी गिनती सामान्य मनुष्योंमें नहीं है। वह हमारे देश और जातिका गौरव है और इस-जैसा मित्र पाकर मैं भी गौरव महसूस करने लगा हूँ राधा!”

राधा भी चुपचाप अपने प्यासे कानोंसे अपने प्यारेकी प्रशंसाके शब्द सुनती जा रही थी। और काशीनाथका हृदय इस समय अपने प्रियबन्धुके प्रति खूब उच्छ्वसित हो चला था। वह फिर बोला—“अँग्रेजोंकी नजरोंमें वह सामान्य अपराधी नहीं है। सत्याग्रहमें शामिल होनेके अतिरिक्त उसपर छिपे विद्रोहके अनेक भयानक अभियोग भी थे। और इसीलिये तो उसे सात सालकी कड़ी कैदकी सजा दी गई है। केवल इसकी विद्वत्ता ही नहीं, चरित्र भी बड़ा उज्ज्वल है राधा! ... सोचता हूँ, फिर कब वापस आकर अपने इस परम-महान, परम-प्रिय बंधुसे गले मिल सकूँगा!”

वह भावनाके आवेशमें पुनः द्रवित हो उठा। राधा भी आँखोंमें आँसू और दिलमें वेदनाका बुखार भरे चुपचाप सब सुनती जा रही थी। एक समय ताँगा चौकमें आकर रुक गया। सभी उतर पड़े। रहीम खान, रजिया और बनारसी कच्छी-मुहल्लेकी ओर चले और चाची, राधा तथा काशीनाथ अपने घरकी ओर।

राधाकी विरक्ति तो उसी दिनसे घोर आसक्तिमें परिणत हो चली थी, जिस-दिन उसने राजनके आहत होनेकी खबर सुनी थी। और जिस-दिन पंजाब-विश्वविद्यालयकी मैट्रिक-परीक्षाका परिणाम प्रकाशित हुआ, उसने अपना स्थान सबसे ऊपर देखा, तो अपने मास्टर-जीके प्रति कोमल कृतज्ञताके भावसे उसके मनका कोना-कोना भर उठा। अपने भैयासे बार-बार आग्रह करके उसने मुलाकातकी तिथि निश्चित कराई। काशीनाथ आइ. सी. एस. का उमीदवार होकर भी अपने एक रिश्तेदार बड़े पुलिस-अफसरकी बदौलत आपत्तिसे बचा रहा। और जब राधाने राजनसे मिलकर उल्लासभरे स्वरमें अपनी सर्वोच्च सफलताकी बात बताई, वह मुस्कुराते हुए बोला—“शाबाश राधा !” अच्छा तो मास्टरजीके लिये कोई इनाम-सिनाम ?” और राधाने चुप-केसे सबकी आँख बचाकर एक लिफाफा राजनके हाथमें थमा दिया। और राजनने भटसे उसे अपने पाकेटमें छिपा लिया।

उनसे विदा होनेके बाद राजनने अकेलेमें लिफाफा खोला। उसमेंसे पीले रंगकी सिल्ककी एक मुलायम रुमाल निकली। उसपर हरे रंगकी डोरेसे बड़ी बारीकीसे फूलोंसे भरी अंजलिका चित्र काढ़ा गया था। और कलाईके नीचे सुन्दर अक्षरों में कढ़ा था—“राधा”।

राजनका रोम-रोम खिल उठा ! वह बोल पड़ा—“इससे और किस उत्तम पुरस्कारकी कामना करूँ मैं ?” उसके रोम-रोम में बिजली-सी कौंद रही थी। जेलके सीखचोंके भीतर भी मन उसका अनिर्वचनीय आस्वाद, स्वर्गीय अभिरुचि और कमनीय कोमलतासे भर उठा था।

और इधर आज जब राधा, काशीनाथके साथ अन्तिम बार राजन-

की भाँकी लेकर वापस आई, भोजनके बाद उस रात पलंगपर पड़ी-पड़ी काफी राततक स्वप्न-संसारकी सैरमें मशगूल रही । फिर वह विचारोंकी दुनियामें प्रविष्ट हुई । सोचने लगी—“संस्कारोंके फेरमें पड़कर संसार सत्यकी असत्य और असत्यको सत्य मान बैठता है । और यही बात सुरुपता और कुरूपता, कुलीनता और अकुलीनताके सम्बन्धमें भी है । संस्कारबद्ध समाज बचपन-से ही अपने नागरिकोंको अपनी रूढ़िबद्ध आँखोंसे ही किसी वस्तु या व्यक्तिको देखनेकी शिक्षा देता है । सत्य-असत्यको परखनेकी भी । उसी प्रकार प्रेमकी दुनिया भी अपने नागरिकोंको एक विशेष दृष्टि देती है । वह आजाने उन्हें प्रेरित करती है अपने प्रियको विशेष दृष्टिसे देखनेको । जिस दुनियामें प्रवेश करते ही मैं अपने कुरूप सन्तानकी ही परम सुन्दर मानकर उसके प्रति अपने समस्त स्वर्गीय प्यारके घड़े उड़ेल देती है, उसी भावसे अनजाने प्रेरित होकर प्रेनिवा भी अपने समस्त हृदयको असुन्दर प्रेमीके चरणोंमें भी अर्पित कर देती है ।”

कुछ देर बाद वह फिर सोचने लगी—“जो बात किसी एक समाजमें सर्वथा मान्य होती है, वही किसी दूसरे समाजमें सर्वथा अमान्य और अधार्मिक समझी जाती है । मास्टरजीने ही तो एक दिन बताया था—‘अन्य देशों और अन्य धर्मोंकी तो बात ही छोड़ी राधा, इस धर्माभिमानी भारतवर्षमें, इस हिन्दू-समाजमें ही ऐसी बीसियों प्रथाएँ हैं जिनसे आबद्ध होकर एक प्रथाका समाज दूसरी प्रथावाले समाजको अपनेसे हीन और अकुलीन समझता है । ममेरी बहनसे फुकेरे भाईका विवाह जबकि दाक्षिणात्योंमें सर्वमान्य है, उत्तर-भारतीयोंमें निन्द्य और पातित्यकारक माना जाता है । हिन्दू-समाजके परम उद्धारक स्वामी शंकराचार्यकी जन्म-भूमि केरलमें सृष्टि-के शुरूसे ही वर्ण-संकरताकी प्रथा चली आ रही है । उस वर्णसंकर-समाजको अपनी वर्णसंकरतापर बड़ा गर्व भी है । वहाँका ब्राह्मण भी अपनी सगी बहनकी कन्यासे बड़े तपाकसे शादी कर लेता है ।

किन्तु, यही बात मनु और याज्ञवल्क्यकी दृष्टिमें घोर अनर्थकारक है, पातित्यकारक है । उनके मतानुसार उस ब्राह्मणको चाण्डाल-की श्रेणीमें ही रखा जा सकेगा ।”

राधा तीर्थ-यात्राके सिलसिलेमें केरल-प्रदेशसे भी गुजरी थी । पता लगानेपर अपने मास्टरजीकी कही सारी बातें सच साबित हुईं थीं । फिर उसने अपने तई कहा—“मास्टरजीके जाति-गोत्र, माता-पिता आदिके न होनेकी बात जानकर मेरा सहसा विक्षुब्ध हो उठना निरे संस्कारके सिवा और क्या कहा जायगा ? और रह गई निधनताकी बात । सो मेरी समझमें जो भी स्त्री धनके कारण किसीपर आकृष्ट होती है, वह अपनेको जो भी समझे, लेकिन मेरी समझसे तो.....” सोचते-सोचते उसका हृदय घृणासे आकुंचित हो उठा ।

वह फिर सोचने लगी—“भैयाने आज ही बताया कि राजन सामान्य मनुष्य नहीं । वह देश, जाति और मानव-समाजका गौरव है । फिर ऐसे महान व्यक्तित्वको अपने हृदयमें स्थान देकर मैंने कौन-सा अपराध किया ? कौन-सी बुरी बात की ? यदि भैया मेरे उस व्यक्ति-की मित्रतापर गर्व अनुभव करते हैं, तो क्या राधा उस व्यक्तिकी जीवन-संगिनी बननेकी लालसा रखकर गर्व न करे ?”

अब एकाएक राधाके मानस-पटपर राजनका महिमामय व्यक्तित्व उद्भासित हो उठा । गर्व और गौरवसे उसका हृदय प्रफुल्ल हो उठा ।

फिर सहसा उसकी विचार-धारा अन्य दिशाको मुड़ पड़ी । एक आशंकाकी आकस्मिक झंझासे वह काँप उठी । फिर सोचने लगी—“यदि मास्टरजीने मुझे इनकार कर दिया तो ? अपने योग्य नहीं समझा तो ? एका-एक एक कल्पित निराशाकी काली छाया ने उसके शुभ्र हृदयपर छाकर उसे व्याकुल बना डाला । अब अपनी आकांक्षाकी खण्डहरोंमें लोट-लोटकर वह रोने भी लगी । किन्तु कुछ देर बाद ही निराशाके घने बादलोंसे ढके उसके मानस-आकाशमें आशाकी एक बिजली चमकी । उसके मनकी आँखोंमें राजनकी अनुराग-भरी आँखें

नाच उठीं । उन नयनोंकी चितवनमें अनुरागकी छिपी शुभ्र सरिता याद आते ही वह सनाथ हो उठी ! वह बोल उठी—“नहीं राधा ! निराश न हो तू ! तेरा मास्टरजी महान है, अतिमहान ! तू विश्वास कर उसपर ! निराश न हो तू !”

इस विश्वासके अंकुर उत्पन्न होते ही उसकी जड़ भी जम ही गई । मनोरथके फल-पुष्पोंसे सजकर वह विश्वास सुन्दर वृक्षमें परिणत भी हो गया । और राधा उसकी सुखद छायाके नीचे आश्वस्त होकर एक समय अनजाने माँ निद्राकी मीठी गोदमें समा भी गई ।

[१७]

लाहौरके मलहोत्रा-परिवारका वातावरण राधाके लिये आरम्भमें बड़ा अनोखा था, अजीब लग रहा था। वहाँ माँको माँ या माताजी न कहकर 'मदर' या 'मामा' कहा जाता। बापको बाबूजी या पिताजी न कहकर 'फादर' या 'डैडी' कहा जाता। कई बार कई गँवार नौकरोँको इसकेलिये जुर्माना भी किया जा चुका था, कि उन्होंने घरकी मालकिनको मेमसाहब के बजाय 'बीबीजी' कहकर संबोधित किया था। भोजनको भोजन, जलपानको नाश्ता या जलपान कहना, तथा खानेके समय निरे हाथका प्रयोग करना असभ्यताका प्रतीक समझा जाता। डिनर, लंच या सपरमें बगैर छुरी-काँटिके कोई स्वाद ही नहीं आता। पुरुषोंकी पोशाक और लिवास विशुद्ध युरोपियन होकर भी स्त्रियोंके लिवासमें भारतीपन भी था। साड़ीकी प्रशंसा विदेशोंमें भी थी। अतः यह परिवार भी उसके मोहसे मुक्त न हो सका था। इसके अतिरिक्त रूप-रंग, शक्ल-सूरत और नाम-धाम भी सबके भारतीय ही थे। क्योंकि स्वयं गृह-पतिका नाम वसन्तकुमार मलहोत्रा था, गृहिणीका स्नेहलता, पुत्रका सुदर्शन तथा दोनों कन्याओंके मनोरमा और सरला।

मनोरमाने ही बड़े आग्रहसे राधाको इस परिवारमें रोक रखा। अन्यथा वह कालेजके होस्टलमें भी रह सकती थी। मनोरमाको एक दिली सहेलीकी बड़ी जरूरत थी, जिससे वह मनकी सुने, मनकी सुनाये। वह इसी वर्ष 'ग्रेजुएट' होकर एम० ए० की छात्र बन चुकी थी। उम्रमें भी राधासे तीन-चार साल बड़ी ही थी। किन्तु वयका तीन-चार वर्ष-का व्यवधान व्यवधान नहीं माना जाता। राधाके अबतकके संस्कारोंसे-अरुचि रहते भी परिवारके सब-लोग उसे प्यार करने लगे थे। राधा तरुणी थी, सुन्दरी थी, सुशीला थी। और सबसे अधिक वह प्रतिभा-

सीला थी। और इस बातने उस परिवारको सबसे अधिक प्रभावित किया कि वह मैट्रिक परीक्षामें युनिवर्सिटीभरमें प्रथम आई थी। जो भी हो, धीरे-धीरे राधा उनकी बनती गई। अर्थात् राधाके पूर्व आचार, विचार और संस्कारपर मलहोत्रा-परिवारके आचार, विचार और संस्कार हावी होते गये। एक समय राधा उनमें बिलकुल घुल-मिल गई।

अब राधाकी दृष्टि बदल गई, विचार बदल गये। उसका समाज बदल गया, साज-सज्जा बदल गई। अब वह देशी आचार-विचारको, भारतीय संस्कृति-सभ्यताको जंगली और 'बार्बरस' कहते जरा भी संकोच न करती। अब उसके दिलमें अपने देशकी पिछड़ी जाति, पिछड़े समाज और पिछड़े वर्गके लिये सहानुभूति न थी, दर्द न था। उनमें मिलकर उन्हें सुधारनेकी, ऊपर उठानेकी भावना न थी, विचार न था। अब वह अपनेको एक पृथक् वर्गकी, पृथक् समाजकी समझने लगी थी। अब वह उस वर्गकी, उस समाजकी थी जिसके जीवनका एकमात्र उद्देश्य ऊँची-से-ऊँची आधुनिक शिक्षा प्राप्तकर ऊँची-से-ऊँची नौकरी प्राप्त करना, अधिक-से-अधिक पैसे कमाना, शान-शौकतकी जिन्दगी बिताना, सभा-सोसाइटियों तथा क्लबों और गोष्ठियोंमें अच्छी सपाटेदार अंग्रेजी बोलकर प्रभाव जमाना था। 'यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्' ही जीवनका चरम और परम लक्ष्य था।

अब राजन राधाकी नजरोंमें एक पढ़ा-लिखा गँवारके अतिरिक्त और कुछ न था। उसका लिवास, उसका चेहरा, उसका आचार और व्यवहार सब-कुछ उसकी आँखोंमें नगण्य बन गये थे, निन्दनीय बन चुके थे। उसे अपने सहचरके रूपमें कल्पना करते ही अपने पहलेके पागलपनपर उसे बड़ी ही हँसी आती, रोम-रोम घृणा और वितृष्णासे भर जाते। अब तक जेलमें उसके नाम लिखे अपने प्रेमिल पत्रोंकी याद आते ही वह संकुचित हो जाती, अपने-आपपर तरस आ जाता, हँसी भी आती। किन्तु अब उसे पश्चात्तापकी भट्टी नहीं जला पाती, अपने पूर्व

अविवेककी व्यथा रुला नहीं पाती। अब वह उन संस्कारोंसे मुक्त हो चुकी थी।

अब वह सोचती—“किन मूर्खताभरे संस्कारोंमें पल रही थी मैं भी ? कितने परिष्कृत हैं ये लोग ? खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने, उठने-बैठने, बोलने-चालने, मिलने-मिलाने हर बातमें एक व्यवस्था, अदब और अदा ! और इन सबके होते हुए भी अपनी मूर्खताभरी रूढ़ियोंसे उन्मुक्तता ! इसीको कहते हैं जीना ! इसीको कहते हैं ‘सिविलाइजेशन’ (सभ्यता) ! इसीको कहते हैं ‘कल्चर’ (संस्कृति) !”

फिर उसे याद आ जाती अपनी बूढ़ी माँ। हर बातमें रूढ़ियोंसे बुरी तरह चिपकी हुई ! वह गाढ़ा लिवास—गाढ़ेकी ओढ़नी, जामा और सिलवार ! नित्य-प्रातः नहा-बोके मंदिरोंमें जाना, कीर्तन और भारती करना, चरणामृत लेना, शिरपर चन्दनकी बिन्दी लगाना, माला फेरना—यह-सब याद आते ही अरुचि और घृणासे वह भर जाती। मन मिचलाने लगता। किन्तु फिर भी वह पेशावर जाकर माँसे अवश्य मिल आती। वह नहीं चाहती कि उसकी माँ स्वयं लाहौर आ-आकर उसे दूसरोंकी नजरोंमें गिराये। उसे सखी-सहेलियोंके छिपे व्यंगका निशाना बनाये। परन्तु इधर कुछ दिनोंसे उसने पेशावर जाना भी बन्द कर दिया था।

एक दिन व्युटी-बॉक्स (शृंगारदान) खोले अपनेको वह सजा रही थी। अपनी सुन्दर सहेली मिस उषाकी देखा-देखी उसने भी अपने कमरतक लटकते बालोंको कटाकर गर्दनतक बना लिया था। उन्हें सजाकर अब चेहरेको सजानेमें लगी थी। अपनी स्वाभाविक कमानीदार भौंहोंको अधिक कमानीदार बनानेके आवेशमें वह ‘ट्वीज’ का प्रयोग भी करने लगी थी। ट्वीजके द्वारा भौंहोंके कुछ फालतू बाल उखाड़ भी चुकी थी। क्रीम और पाउडरका प्रयोग हो चुका था। लिप्स्टिकका प्रयोग अभी पूरा भी नहीं कर पाई थी कि बेहरेने आकर खबर दी—“पेशावरसे माँजी आई हैं।”

मुनकर राधा चौंक उठी ! मारे विरक्ति और झुंझलाहटके उसका चेहरा एकाएक धूमिल बन गया । उसके मुँहसे निकल पड़ा—“हाय ! यह बुढ़िया मेरा माथा खा लेगी ! हर महीने पेशावरसे दौड़ पड़ेगी ! उजड़ु, गँवारिन कहाँकी !”

और उसके सम्भलनेसे पहले ही चाची स्वयं वहाँ आ धमकीं । अपनी बिटियाका आजका साज देखके दंग रह गईं ! कुछ क्षण अवाक् आँखोंसे देखती रहनेके बाद बगैर अगल-बगल देखे ही वे बोल पड़ीं—“राधा ! यह तू क्या बनती जा रही है ? और भट नीचेही फरशपर बैठकर दोनों हाथोंसे माथा थामकर—“हे भगवान ! मैं यह क्या देख रही हूँ ! भले घरकी लड़की इस तरह रंडी-पुतरिया बनती जा रही है !”

अपनी गँवार माँके इस मन्तव्यपर राधाके हृदयमें क्रोधका तूफान उठ खड़ा हुआ । मारे क्रोधके थर-थर कापती वह कुछ बोल न सकी । एक बार अपनी आग-भरी आँखोंसे माँकी ओर देखकर ही चुप रह गई । लेकिन ज्यों ही उसकी दृष्टि दरवाजेकी ओर पहुँची वह पुनः एक बार चौंक उठी ! अप्रतिभ होगई ! मनोरमा वहाँ खड़ी-खड़ी व्यंग्यभरी आँखोंसे ताकती मुस्कुरा रही थी ।

अबतक राधा बहुत-कुछ सम्भल चुकी थी । मनोरमा जा चुकी थी । अब वह धीरेसे माँकी बगलमें झुककर जरा शान्त स्वरमें बोली—“तुम इतनी जल्दी-जल्दी क्यों आया करती हो चाची ? आजकलके लोग इसे ‘अच्छा नहीं समझते । अब तुम न आया करो यहाँ । मैं हर हफ्ते चिट्ठी लिखा करूँगी, या खुद ही कभी-कभी आ जाया करूँगी । समझ गईं न ?”

“हाँ, समझ गई !”—मने एक बार बिटियाको आश्चर्यभरी आँखोंसे देखकर धीरेसे जवाब दिया ।

उस वृद्धाकी इस बातकी कतई आशा न थी कि राधा यहाँ-तक पहुँचकर उसका स्वागत करेगी । किस उल्लासको लिये वह अपनी प्रिय पुत्रीको देखने आई थी ! दिल टूट गया ! हृदयमें निराशाकी धँधियाली छा गई ! निराशा और क्षोभके आवेशमें फिर एकाएक

उठकर खड़ी होकर बोलीं—“हाँ राधा ! मैं गलतीपर थी । अब नहीं आया करूँगी । और तुझे भी अब आनेकी जरूरत नहीं !”—कहकर वे बड़े वेगसे कमरेसे बाहर होगईं ।

बंगलेके फाटकपर तांगा उनका खड़ा था । उनका नौकर रिंसी-राम वहाँ मौजूद था । तांगेपर भरे दिलसे बैठकर सीधे स्टेशनकी ओर वे चल पड़ीं ।

राधा हक्की-बक्की भौंचक्की रह गई ! उसकी धारणा बन चली थी शायद स्वाभिमानका अभिमान सभ्योक्तक ही सीमित है । कुछ देर आश्चर्य-विजडित आँखोंसे चुनचाप खड़ी रही । फिर सोफेपर जा बैठी । हथेलीपर कपोल रख, कुहनीके बल तकियेके सहारे लेट गई । बहुत-कुछ सोचती रही, किन्तु माँकी गहरी व्यथाको वह रंचमात्र भी अनुभव न कर सकी ।

“साहेब आगये हैं !”—कुछ देर बाद फिर बेहरेने आकर खबर दी ।

“कोन साहेब रे ?”—राधाने चौंककर पूछा ।

“लूथरा साहेब !”

मि० लूथराका नाम सुनते ही राधा सीधी होकर बैठ गई । उसके दिलमें सहसा मीठी-सी गुदगुदी पैदा होकर भट बिला भी गई ।

वह तड़फड़ उठ खड़ी होकर बोली—“साहेबसे बोल दे, मैं अभी आई ।”

बेहरा चला गया । राधा फिर आइनेके सामने आ खड़ी हुई । गौरसे देखा । चिन्ताकी एक हल्की छाया जैसे चेहरेके आकर्षणको कुछ कम कर रही थी । साज-विन्यास सब ठीक था । ओठोंके शृङ्गारमें जो कमी थी भट पूरी कर ली । रह-रहकर ओठोंपर मुस्कान लाकर चेहरेसे चिन्ताकी छाया छिपानेकी कोशिश करने लगी । जब उसे अपनी मनोहरतापर विश्वास हो गया, अन्य अङ्गोंके प्रसाधनोंको व्यवस्थित करने लगी । परिधानको ठीककर अपने उभरे वक्ष-स्थलोंको बार-बार निहारने लगी । फिर पाँचक मिनट बाद ही अपने चारों ओर रूपकी

फिरणें बिखेरती, पैरोंमें मानो कलाको सँवारती, पीढ़ियोंपरसे उतरती नीचे बैठकखानेमें प्रविष्ट हुई।

वहाँ स्प्रिगदार कुर्सीपर बैठे मि० एस. एन. लूथरा (आई. सी. एस.) मि० मलहोत्रासे जहाँ-तहाँकी बातोंमें लगे थे। उनके मुँहमें लगी सिगारका सुगन्धित धुआँ सारे कमरेको सुवासित किये था। राधाके कमरेमें प्रविष्ट होते ही मि० लूथराने भट संभ्रमसे उठ खड़े होकर—‘हल्लो मिस राधा ! गुड इवनिंग !’—कहते अपना लम्बा रोयाँदार मोटा हाथ आगे बढ़ा दिया।

और राधाने भी ओठोंसे मोहिनी मुस्कानकी छटा छिटकाते हुए अपना गुलाबी कोमल हाथ आगे कर दिया। ‘शेफ-हैन्ड’ के समय जरा चिहूँक उठनेका अभिनय करती वह पासकी कुर्सीपर बैठ गई।

राधाके तुरन्त बाद ही सजी-धजी मनोरमा भी आ गई। और मि० लूथराने पूर्ववत् उठकर अपनी अभ्यस्त अभिवादन-भंगीसे हाथ बढ़ा दिया, और जरा हँसकर मनोरमाने भी। और उसके बाद ही सरलाको साथ लिये मिसेज मलहोत्रा भी तैयार होकर आगईं। अभिवादनका वही सिलसिला जारी रहा।

आज लारेन्स-गार्डनके इंडियन-क्लबमें नाचका दंगल था। राधा भी नाचेगी, मनोरमा भी। और भी बहुतेरी युगल-जोड़ियाँ। सो, नास्ता-पानीका प्रबन्ध भी आज क्लबमें ही था। मि० लूथराकी कार-पर राधा, मनोरमा और स्वयं लूथरा सवार हुए, तथा मि० मलहोत्राकी कारपर मिसेज मलहोत्रा, सरला और स्वयं मलहोत्रा। सरला अभी निरी बालिका थी, शायद बारहकी। कॉनवेंट स्कूलमें पढ़ा करती। अपने भद्र-समाजकी सुयोग्य सदस्या बननेकी शिक्षा वह ले रही थी। वे सबके-सब लारेन्स-गार्डनकी ओर रवाना हो चले।

क्लबमें पहुँचकर परिचय और अभिवादनका अभिनय आरम्भ हुआ। नगरकी गिनी-चुनी भद्र-मंडली जमी थी। कुछ नये चुस्त चेहरे भी। मि० लूथराके सम्पर्कसे राधाकी गणना सामान्य सदस्योंमें न थी।

वह रूप और रंगसे भी आकर्षणका केन्द्र बनी रहती। अब-तक बैरिस्टर गुप्ता भी मलहोत्रा-मंडलीमें शामिल हो चुके थे। नास्ता-पानीके बाद नृत्य आरम्भ हुआ। अनेक जोड़ियाँ परस्पर कमर और गर्दनमें हाथ डाले नाचती रहीं। अपनी चुस्ती और चातुरीके प्रदर्शनसे अपने और पराये दिलोंको आन्दोलित करती रहीं। लेकिन राधाका नाच आज जमा नहीं। बाजी मनोरमाके हाथ रही। वह दोके साथ नाची थी— मि० लूथरा और बैरिस्टर गुप्ताके साथ। दोनों बार ही उसने शाबाशी और वाहवाहीके शब्द सुने। किन्तु राधा केवल मि० लूथराके साथ नाचकर भी अन्य दिनोंकी तरह रंग न जमा सकी। वह प्रसन्नताका नाट्य करके भी चेहरेपर उभरी उदासीको न छिपा सकी।

धीरे-धीरे नाचका दंगल समाप्त हुआ। कुछ लोग हॉलसे बाहर निकल चले और कुछ युगल-जोड़ियाँ प्राइवेट-रूमकी तरफ बढ़ चलीं। मनोरमाका मन ईर्ष्याकी आगसे जल उठा जब उसने देखा कि लूथरा राधाका हाथ पकड़े प्राइवेट-रूमकी ओर बढ़ रहा है।

“माइ डालिंग !”—राधाका हाथ पकड़े कोचकर बैठते हुए मि० लूथरा बोले—“आज बात क्या है ? उदास क्यों है आप ?”

“नहीं डियर !”—जवाबमें राधा मुस्कुराकर बोली—“ठीक तो है।”

उसके कोमल हाथको जरा दबाकर मुस्कुराकर मि० लूथरा फिर बोले—“कुछ छिपा रही हैं आप। क्या मुझसे बताने लायक बात नहीं है ?”

“नहीं, है क्यों नहीं ? कोई ऐसी बात नहीं। यही जरा सवेरेसे शिरमें दर्द है।”

“ऐं !”—मि० लूथरा एकाएक बेचैनीका नाट्य करते हुए बोले—“यह कोई बात ही नहीं ? सवेरेसे शिरमें दर्द, और मुझे पता भी नहीं ? क्या कहती हैं आप भी ?”

“मामूली-सा दर्द है। सोचा, आपको बताकर नाहक परेशान करने-

से फायदा ?”

“ऐं !”—मि० लूथरा पुनः चौक पड़े—“यह भी कोई बात है ? आप मुझसे दुराव रखती हैं मिस राधा !”

“नहीं डियर !”—राधा चेहरेपर मोहिनी मुस्कान भरकर बोली—“ऐसा बहम न पाला करें आप । भला आपसे दुराव ?”

फिर सहसा गम्भीर होकर—“फिर कहां रहूंगी मैं ?”

मि० लूथराके रोम-रोममें बिजली कौंद गई । राधाका हाथ पकड़कर वे बोले—“कोई मेडिसिन (दवा) बगैरह ले लेनी चाहिये आपको । तो चलें डा० होपकिन्सके यहाँ । जरा रिक्लियेशन (मनबहाल) भी हो जायगा । क्यों ?”—कहकर वे उठ खड़े हुए । उनके पीछे राधा भी उठ खड़ी हुई ।

दोनों क्लबके ग्राउण्डमें आ गये । वहाँ लोग दोमें या समूहमें खड़े हो, या चलते-फिरते बातें करनेमें मशगूल थे । मि० लूथरा मि० मलहोत्राके पास जाकर बोले—“मिस राधाकी तबीयत आज ठीक नहीं मिस्टर मलहोत्रा ! हम जरा डाक्टरके यहाँसे हो आवें । क्यों ?”

सुनते ही मि० मलहोत्रा बेचैन हो उठे ! स्वरमें आकुलताके घड़े उड़ेलते हुए बोले—“ऐं ! तबीयत ठीक नहीं ?”—और भट राधाके पास जाकर उसकी पीठपर हाथ रखकर—“तुमने तो बताया ही नहीं बेटी ! क्या हो गया ? बोलो तो ! बताओ तो !”

“नहीं डेंडी !”—राधा नम्रतासे मुस्कराकर बोली—“मैं अब ठीक हूँ । जरा शिरमें दर्द था । मि० लूथरा जिद्द कर रहे हैं डाक्टरसे दिखानेको ।”

“अच्छा, अच्छा !”—उसकी पीठपर हल्की थपकी लगाकर मि० मलहोत्राने कहा—“हो आओ ! हरज क्या है ? बुरा क्या है ?” फिर मनोरमाको निकट बुलाकर—“मन्नी ! तुम भी हो न आओ मि० लूथराके साथ डाक्टरके यहाँसे ? राधारानीकी तबीयत जरा.....!”

“नहीं डंडी !”—मनोरमाने उदासीन स्वरमें जवाब दिया—“जाती तो जरूर, लेकिन उधर वक्त हो रहा है ‘थर्ड शो’ का। मि० गुप्ता जिद्द कर रहे हैं। मेट्रोमें जेम्स हिल्टनका ‘लॉस्ट हॉरिजन’ लगा है आज।”

“अच्छा, अच्छा ! तो जरूर जाओ !” फिर मि० लूथरासे बड़ी नम्रतासे “तो, हो आवें आप-लोग भी। हम-लोग भी जरा चक्कर लगा लें।”—कहकर वे वहाँसे अलग हो गये।

इसके बाद राधा मि० लूथराके साथ, और मनोरमा बैरिस्टर गुप्ता-के साथ कारमें जा बैठी। मि० मलहोत्रा अपनी पत्नी और छोटी पुत्रीके साथ बागकी सैर करने लगे।

कारके गवर्नरकी कोठीके पाससे गुजरते समय राधा बोली—
डाक्टरके यहाँ जानेके बजाय अगर नहरकी ओर चलें तो ठीक। क्यों मि० लूथरा ?”

“जैसा हुक्म हो आपका !”—मि० लूथराने मुस्कुराकर जवाब दिया।

“खुली हवा लगनेसे नबीयत ठीक हो जायगी !”

मि० लूथराने कारकी हैंडिल घुमा दी। कार अब नहरको जानेवाली सड़कपर बड़े वेगसे दौड़ने लगी। साथ ही मि० लूथराके हृदयकी गति भी वेगवती हो चली। नहरका सुनसान किनारा और यह चहचही चांदनी रात ! सोचते ही उनकी शिराओंमें उफान आने लगा, अंगोंमें अंगड़ाई आने लगी। आशिकके उस समयके रोमांसका अनुभव कीजिये जब मासूक स्वयं उसकी चाहकी ओर इशारा कर दे ! राधा स्वयं कभी इतना निकट उनके नहीं आई थी। मन-ही-मन उसके नैकट्यका अनुभव करते-करते मि० लूथरा कुछ विह्वल-से, उम्रगोंकी तरंगोंमें कुछ बहे-से कारकी हैंडिल पकड़े बहुत-कुछ सोचते जा रहे थे। पचैक मिनटमें ही वे नहरकी भालपर जा पहुँचे। कार खड़ी हो गई। मि० लूथरा दरवाजा खोल जवानीके वेगसे बाहर आये। स्वयं बढ़कर राधाको बड़े आदरसे

उतारा । कारको सोफरके हवाले कर वे नहरकी ओर बढ़ चले ।

झालपर अभिनव चाँदनीकी झिलमिलाती आभा मानो टूट-टूटकर बिखर रही थी । मानो नहरकी दीड़ती धारापर नाचती और रेंगती जा रही थी । मि० लूथरा राधाके हाथ-में-हाथ ढाले, नहरके किनारे घनी हरी दूबोंकी बिछी दरीपर पैर धरते धीरे-धीरे जा रहे थे । एक समय एक निर्जन-निराले थलमें दोनों-जनों धासपर रुमाल ढालकर घामने-सामने बैठ गये ।

मि० लूथराने राधाका हाथ अपने हाथमें ले लिया । रोमांचक स्पर्शका अनुभव करते-करते उनकी भावनाएँ कवितामय बनने लगीं । शराबका मीठा नशा, और उधरसे नहरकी कल-कल धाराने इन भाव-नाओंमें रंग भरना शुरू किया । मि० लूथरा फारसीके भी विद्वान थे । उमर खय्यामकी रुबाइयाँ अपनी सारी रंगीनियोंके साथ उनके दिलपर रंग जमाने लगीं । एक समय वे अपने मोटे और रोबदार गलेमें भरसक मिठास लानेका प्रयत्न करते हुए अलापने लगे :—

“खय्याम अगर बादहपरस्ती खुश बाश ।
बा माह खे अगर नशस्ती खुश बाश ।
चूँ आक्रबतुल् अम्र फनाल्वाही सुद ।
अंगारके नेस्ती चो हस्ती खुश बाश ।१।
मगुजार के गुस्सा दर हसारत गीरद ।
ब अन्दोह मुहाले रोजगारत गीरद ।
मै खुर ब कनारे सजये आबे रवा ।
जाँ पेशके खाक दरकनारत पीरद ।२।

वे इन रुबाइयोंको बार-बार दुहराते रहे । और राधा जरा धाश्न-नारी आँखोंसे उनके भाव-विह्वल चेहरेको निहारती रही ।

अब मिस्टर लूथरा इन रुबाइयोंकी व्याख्या करते हुए राधासे बोले—“माइ डालिंग । आजसे सदियों-पहले फारसका मकतूब खायर उमर खय्याम हमें बिन्दगीका सन्देश दे गया है । बेको, वह क्या

कहता है :—

‘ऐ खय्याम, अगर तू शराबके रंगमें मस्त है तो खुश रह, रंजके लिये कोई बजह नहीं। अगर तू चाँदको लजानेवाली खूबसूरत औरतके पास बैठा है तो भी खुश रह। अगर आखिर तुझे बरबाद होना ही है तो अभीसे तू अपनेको नेस्त-नाबूद क्यों नहीं मान लेता ? अपनेको ऐसा ही बरबाद समझकर खुश रह’ । १ ।”

फिर उन्होंने दूसरी रुबाईकी व्याख्या करते हुए कहा :—

“ऐ खय्याम, तू अपनेको किसी दिली बेचैनीके कब्जेमें मत आने दे, और न किसी वाहियात फिक्रसे अपनी जिन्दगीको उदास होने दे। किसी दरियाके किनारे हरियालीमें बैठकर मजेसे शराब पीता जा। क्योंकि वह दिन दूर नहीं जब यह दुनिया तुझे हड़प लेगी और तू खाकमें मिल जायगा । २ ।”

फिर वे एकाएक रोमान्सके आवेशमें आकर दर्दभरे दिलसे बोले—“यह-सब सोचकर जिन्दगीसे मोह पैदा हो जाता है माइ डालिग। सोचता हूँ, जब यह जिन्दगी किसी-न-किसी दिन खाकमें मिल ही जायगी, तो खुलकर इसका मजा क्यों न लूटा जाय !” माइ स्वीट, आखिर कबतक हम इन्तजारमें तड़पते रहेंगे ! इस जिन्दगी और जवानीका खर्चा-जर्खा कीमती है डालिग !.....

‘यह चाँदनी रात ! यह नहरका किनारा ! इसकी फुदकती और मचलती धारा ! हम भी क्यों न इसके सुरमें सुर मिलाकर अपने प्यारके गीत गावें राधा ! अपने दिलके तारोंको एकमें मिलाकर हम भी क्यों न प्यारकी रागिनी गावें प्यारी ! माइ डालिग, तुम बड़ी बेरहम हो ! कबतक तड़पाती रहोगी !” कहते-कहते उन्होंने उसे खींचकर छातीसे चिपका लिया ।

राधा भी रोमान्समें अवश हो उठी। क्षणभर आलिंगनका आस्वाद वह लेती रही। लेकिन भट वह सम्भल गई। जरा खिसक-कर अलग हो गई। धड़कते दिलपर काबू पाकर गला साफकर वह

बोली—“यह तरीका ठीक नहीं मि० लूथरा ! यह नहरका किनारा है, और आप हैं लाहौरके डिप्टी-कमिशनर । अगर देख लिये गये, क्या पोजीशन होगी आपकी ? चलिये, वापस चलें । जाने, सोफर भी क्या सोचता होगा ।” कहकर वह भट उठ खड़ी हुई ।

मि० लूथरा भी उठ खड़े हुए । बड़ी कठिनाईसे तूफानी रोमान्स के आवेगपर काबू पा सके । जरा अपराधी-भावसे लड़खड़ाते स्वर में बोले — “ठीक ! मैं गलती कर रहा था । आपने बचा लिया मुझे थैंक यू डालिंग, थैंक यू ह्वेरी मच् !”

दोनों चल पड़े । कुछ देर चुपचाप चलत रहनेके बाद मि० लूथरा एक समय निश्चित स्वरमें बोले—“अब जल्द किसी फैसलेपर पहुँच जान हम-दोनोंके लिये ठीक रहेगा । मैं तो पहुँच चुका हूँ । मेरे दिलमें अब राई-रत्ती भी हिचक नहीं, दुविधा नहीं ।” फिर एकाएक खड़े हो राधाका हाथ पकड़ जरा दीनताभरे अनुनयके स्वरमें—“बाक ! वह वक्त मेरी जिन्दगीका सबसे खुशनसीब होगा राधा, जिस-दिन सारे समाजके सामने इन हाथोंको अपना कहकर अपनाऊँगा । क्या, मुझे अपना नहीं बनाओगी राधा ?”—कहते-कहते जैसे उनका गला भर आया ।

मि० लूथराका माथा नत हो गया । उनके पद और अधिकांश का सारा अहंकार, व्यक्तित्वकी सारी किशालता इस क्षण इस तरुणीके चरणोंमें गिरकर बिखर गई । इस क्षण लूथरा लाहौर जिलेका शासक न था । वह था एक निरा मानव, जिसके हृदयसे प्रणयकी भावनाने सारी अहंभावना दूर कर दी थी । इस प्रणयमें दगा न थी, फ़रेब न था । वह अनेकोंको छल चुका था, अपने प्रणयका मिथ्या विश्वास दिला-दिलाके अनेक हृदयोंको दगा दे चुका था, किन्तु राधाके प्रति उसके मनमें कभी भी कपट-भावना नहीं आई । वह वास्तव में इस तरुणीको जीवन-सहचरी बना जीवनको धन्य बनानेके सपने देख रहा था । इस समय उसके प्यारभरे दीन नयनोंसे मानो हृदयकी

सारी ईमानदारी टपक रही थी ।

राधा स्थिर आँखोंसे लूथराकी आँखोंमें देख रही थी । वह विपलित हो उठी—“विश्वास रखें !”—वह दृढ़ता स्वरमें बोली—“मैं आपकी बन चुकी हूँ । मेरा दिल भी फँसला कर चुका है । कुछ दिन और सत्र करें । ब्रदर (भैया) को आ जाने दें । उनका रिजल्ट अब निकल चुका होगा ।”

मि० लूथराको मानो स्वर्ग मिल गया ! तपस्या पूरी होनेपर मानो इष्टदेवका वरदान मिल गया ! वह राधाके हाथोंको बड़े प्यारसे चूमकर खुशी और सन्तोषसे गद्गद स्वरमें बोला— “मैं बाकई आज दुनियाका सबसे खुश-किस्मत इन्सान हूँ राधा !”

दोनों फिर चल पड़े । लूथराका हृदय आशा और आनन्दके प्रतिरेकसे विह्वल हो रहा था । चलते-चलते उसके पैर भी विह्वल हो रहे थे । लग रहा था, मानो जीवनका चरम और परम लक्ष्य वह पा चुका हो । मानो उसके उद्देश्यके अर्थ और इतिका संगम हो चुका हो ।

“आपके ‘ब्रदर’ कब तक आ जायेंगे ?”—उत्सुकताभरे स्वरमें उसने पूछा ।

“अब देर नहीं है ।”—राधाने सहज स्वरमें जवाब दिया—“इस महीने के अखिर या अगले महीनेके शुरूमें ।.....मैं उन्हें बड़ा प्यार करती हूँ मि० लूथरा ! मुझपर उनका बड़ा एहसान.....”

कहते कहते राधा रुक गई । एकाएक उसके हृदय-पटपर बचपन-से अवतारके जीवन-चित्र मानो बिजनी-से चमक उठे । स्मृतियोंके झरोकेसे वह दब गई, सहम गई और संकुचित भी हो चली । और फिर फौरनकी गुरुतासे कुछ थकी-सी चुप-चाप चलती रहकर एक समय वह कारके निकट आ पहुँची ।

मि० मलहोत्रा अपनी कोठीपर वापस आ चुके थे । उनके व्यवहारिक चेहरेपर भी इस समय निराशाकी घनी छाया छाई हुई थी । जब सरला अपने कमरेमें चली गई, एकान्त पाकर पत्नीसे निराशामन्त्रे स्वरमें बोले—“यह लूथरा भी हाथसे निकलता दीख रहा है लता ! यह भी पक्का लंपट ही निकला ।”

“हाँ”,—मिसेज मलहोत्रा जरा हाथ-मुँह चमकाकर दबे स्वरमें बोलीं—“तो, तुमने समझ रखा था कि पक्का सदाचारी होगा ! इन अमीर और पके बैचलरोंका गिरोह जैसे अवतक ब्रह्मचारी ही रहेगा ! और तुम्हारी भद्र-पोसाइटीमें इस लंपटगीरीसे अछूता है ही कौन ? भले ही हम बाहरके लोगोंसे छिपे हों, लेकिन सचाईसे इनकार तो नहीं किया जा सकता ? जरा अपनी छातीपर हाथ रखकर सोचो तो ?”

अपनी पत्नीसे ऐसे उत्तरकी उमीद उन्हें न थी । वे सहसा अप्रतिभ हो गये । इस रूप-परिचायक उत्तरके खरोंचे खाकर मनका छिपा संकोच मुखपर आ गया । शरमाकर धीरेसे बोले—“हाँ !... लेकिन यह तो कुदरतकी पुकार है लता ! बात एक ही है, लेकिन इन्सानकी इस कुदरती हरकतको हैबानी हरकतसे अलग करनेके लिये, उसे खूबसूरत बनानेके लिये, उसपर सिविलाइजेशन (सभ्यता) का पर्दा डाल दिया गया है ।”

मिसेज मलहोत्रा इस वक्त हार माननेके मूडमें न थीं । बोलीं—“तो, जो-कुछ भी करते रहो इस सिविलाइजेशनकी नकाब लगाकर ? दिलको जरा भी दरेग नहीं ? फिर तुम लूथराको ही लंपट क्यों कहते हो ? वह भी वही-कुछ कर रहा है जो आज ऊँची सोसाइटीके सभी

भद्र-लोग कर रहे हैं ?”

मि० मलहोत्रा बात बढ़ाना नहीं चाहते थे । अब सहसा आत्मसम-पङ्गके स्वरमें बोले—“अच्छा भई, मान गया तुम्हारी बात ! लेकिन सोचना यह है कि मन्नीका क्या होगा ?”

“मन्नीका क्या होगा ?”—मिसेज मलहोत्रा अपने उसी रागमें बोलीं—“उसका भी वही होगा, जो आजकल भद्र-घरोंकी आसत पढ़ी-लिखी लड़कियोंका होता है । कोई मन-चाहा फॅम गया तो ठीक, नहीं तो जीवनभर क्वारी रहो ! अगर बाप-दादोंकी जमाकी हुई पूँजी हो, तो मजेमें पोलिटिक्स भाड़ो ! किसी पोलिटिकल पार्टीके लीडरोंके गिरोहमें शामिल हो लेक्चरोंकी बोझार करो ! और नहीं तो किसी स्कूल-कलेजकी टीचरेस या हेड-मिस्ट्रेस बनकर जिन्दगीके सबेरे दिन बिताओ !”

“छी !”—मि० मलहोत्राके मुखसे धिक्कारका शब्द निकल पड़ा—“इस वक्त जाने तुम किस मूढ़में हो लता ? अपनी श्रीलादके लिये भी क्या यही-सब चाहती हो तुम ? मैं तो बाप होकर भी जब-कभी उसके जिस्मकी ओर ख्याल करता हूँ, घबड़ा जाता हूँ ! इस तेईस-चौबीसकी उम्रमें ही तीस-बत्तीसकी दीखती है । खैर, यह लूथरा तो हाथसे निकल ही गया । अब देखना है कि यह गुप्ता भी न निकल जाय !”

“तो मुझे क्या कहते हो ?”—इस बार मिसेज मलहोत्रा जरा नरम होकर बोलीं—“मैं तो मन्नीकी माँ हूँ । किस माँका दिल नहीं करता अपनी श्रीलादको सुखी देखनेको ? लेकिन आजकलके जैसे छोकड़े, वैसी छोकड़ियाँ ! किसीका भी दिमाग जमीनपर नहीं ! और तिसपर तुमने पाल रखा है एक आस्तीनका साँप । पहले इस नागन-को निकालो अपने घरसे, फिर और कोई बात !”

“जो होना था हो चुका लता !”—मि० मलहोत्रा जरा शिर खुजलाते हुए बोले—“अब चतुराई इसीमें है, कि नाराजी जाहिर

करनेके बजाय खुशी जाहिरकी जाय। नाहक रिलेशन खराब करने-से क्या फायदा ? लूथरा राधासे शादी करके रहेगा। और वह भी उसकी ओर पूरी-तरह झुकी दीखती है। ऐसा क्यों न हो ? छोकरी जैसे देखनेमें परी-मी है, पढ़ने-लिखनेमें भी वैसी ही तेज। और लूथरा भी मामूली आदमी नहीं ! उम्र अधिक हो जानेपर भी, शक्ल-सूरत अच्छी न रहनेपर भी 'स्टेट्स' तो छोटा नहीं ?”

“रहने भी दो जरा !”—मिसेज मलहोत्रा जरा ऐंठकर बोलीं—
“मेरी मन्नी किस बातमें कम है उससे ? उसकी आँखें जरा बड़ी हैं, तो मन्नीकी जरा छोटी। अगर उम्रमें कुछ बड़ी है तो एज्यूकेशनमें भी बड़ी है। मन्नी एम० ए० में है, और वह अभी एफ० ए० भी नहीं हो पाई। और यह लूथरा.....”

इतनेमें फाटकपर कारकी हार्न बजी। मुँहकी बात मुँहमें ही रह गई। दरबान दौड़ा फाटक खोलने और दम्पती दौड़े स्वागत-के लिये। कारसे मि० लूथरा उतरे और ऋट दरवाजा खोलकर उन्होंने बड़े आदरसे राधाको उतारा। मन-ही-मन दोनों दम्पती जल उठे। लेकिन ऊपरसे स्वरमें वात्सल्यका घड़ा उड़ेलकर मि० मलहोत्रा बोले—“हम तो बड़ी फिक्रमें थे। अब मेरी राधारानी कैसी है ? मैं तो सोच ही रहा था.....” फिर आगे बढ़कर राधाकी पीठपर हाथ रखके—“क्यों बेटी, अब कैसी तबीयत है तुम्हारी ?”

“अच्छी है डेंडी !”—राधा मुस्कराते हुए बोली, और मि० लूथरा-से 'शेक-हैंड' के बाद विदा ले अपने कमरेकी ओर चल पड़ी।

मि० लूथरा भी मलहोत्रा-दम्पतीको 'गुडनाइट' कहते हाथ मिला-कर अपनी कारपर जा विराजे।

×

×

×

आरम्भके दिनोंमें राधा और मनोरमामें दाँत-कटी रोटी थी। उस परिवारने बड़े ध्वासे इस पठित गँवार कन्याको नई सभ्यता-के विधि-विधानों और अब-अदाओंमें शिक्षित किया था। नव कर्मी

वह सम्य-सोसाइटीमें प्रतिष्ठित हो सकी थी। अब उस रविवार कन्या-को सम्यताके पंख लग गये थे। 'गुरु गुड़ और चेला चीनी' वाली बात चरितार्थ हो चली थी। अब वह प्रणयके क्षेत्रमें मनोरमाकी प्रबल प्रतिद्वन्दी बन गई थी। परस्पर एक-दूसरेकी आँखोंका काँटा बन रही थीं। अब राधा, केवल प्रणयकी दुनियामें ही नहीं, हर क्षेत्रमें व्यक्तिवादी बन रही थी। हर वस्तुको व्यक्तिवादी दृष्टिकोणसे देखनेकी आदी बन रही थी। आज नृत्य-गोष्ठीमें मन्नीसे पराजित होकर भी प्रसाय-गोष्ठीमें विजयी बनकर आकाशमें वह उड़ चली थी।

मि० लूथरा अबतक अनेकोंसे खेल चुके थे। एक ही परिवारकी इन दो तितलियोंसे भी काफी दिनतक खेलते रहे। मनोरमा और राधा दोनों ही गोलियाँ फेंकती रहीं। पर बाजी आई राधाके हाथ। लूथरा-ने भी अब बहुत खेल खेल चुकनेके बाद अन्तमें राधाके कदमोंमें झुकनेका फैसला कर ही लिया। मि० गुप्ता अभी नया बिलायत-फिरा बैरिस्टर था। अभी उसका कारोबार जमा भी न था। पल्लेके पैसेसे किसी प्रकार शान-शौकत कायम रखे था। वह भी इन दोनोंसे खेल रहा था, और ये दोनों भी उससे। किन्तु दोनोंका ही अधिक झुकाव मि० लूथरापर था।

मि० गुप्ता नौजवान था, सुन्दर था। उसमें मि० लूथरासे दस-बारह साल छोटा था। किन्तु एक आई. सी. एस. की प्रतिद्वन्द्विताके योग्य न था। वह अभी-अभी मनोरमाको सिनेमा दिखा उसे घर छोड़ गया था। यह देख राधाके दिलमें डाह पैदा हो गई। मि० लूथरापर विजय प्राप्त करके भी उसकी ईर्ष्याकी आग अभी शान्त नहीं हुई। बल्कि इस विजय-दर्पने उसके अहंकारको और भी उन्नत बना डाला। उस आगको और भी भभका डाला। वह बर्दाश्त नहीं कर पा रही थी कि कोई भी पुरुष उसके सामने ही किसी अन्य तरुणीको प्यार करे, प्यार करनेका साहस करे! वह स्वयं किसीके भी प्यार-को ठुकरा सकती है; किसीको भी हरा सकती है; किसीको भी नीचा

दिखा सकती है; किन्तु, किसी अन्यको वह अधिकार नहीं कि वह किसी अन्यको जी-भरकर ताक भी सके। किसी अन्यसे प्रणयकी भिक्षा कर सके। यह राधाका अपमान है; राधाके सौन्दर्यका अपमान है; बल्कि स्वयं सौन्दर्यका तिरस्कार है! राधा रूपकी रानी है! वह प्रणयकी महारानी है! अतः किसी भी प्रणयीको बिना उसकी अनुमतिके प्रणयकी सीमामें प्रवेशका अधिकार नहीं! मि० गुप्ता अपराधी है! मनोरमा अपराधी है! वह दोनोंको दण्ड देके रहेगी! मजा चखाके रहेगी! अपने अधिकारका प्रभाव जमाके रहेगी!

यह निश्चय करते ही राधाका चेहरा गर्वसे उदीप्त हो उठा। अब वह सोफेपर पड़ी न रह सकी। उसने बेंच-स्विच् दबाया। सारा कमरा प्रकाश-पुंजसे आलोकित हो उठा। वह उठी, और उसी वेशमें आइनेके सामने जा खड़ी हुई। विद्युत्की प्रतिच्छायामें उसका सौन्दर्य और भी निखर उठा! अब-नंगे अंगोंकी भाँकती सुन्दरतापर अपने-आप वह रीझ उठी! खिचे नयनोंपर कमानदार भौंहोंका मोहक विन्यास! खड़ी नाक और तनी ग्रीवा! कोमल कपोलोंके योजक पतले चिबुकके ऊपर पतले-पतले ओठोंकी चमकीली लाली! शिरपर चमकीले केश! चौड़े वक्षपर उन्नत उरोज! लचीली पतली कमर और मांसल सुडौल बाहें! वह बार-बार इस सौंदर्य-सुधाका पान करती रही, मुग्ध होती रही! उसका हृदय बोल उठा—“राधा, तू सचमुच रूपकी रानी और प्रणयकी महारानी है!”

वह आकर फिर सोफेपर लेट गई। उसने स्विच दबाई। प्रकाशकी समाधिपर पुनः अन्धेरा हावी हो गया। उसने आँखें मूँदीं। पर नींद नहीं आई। पुनः कुछ सोचने लगी। उसके हृदय-पटपर लूथरा आ पहुँचा। एक चालीससाला, बड़े-बड़े जबड़ोंवाला दानवाकार मानव। क्षणभरके लिये वह सहम गई! उसके मनमें कुछ अस्वस्ति-सा उत्पन्न हो गया। बेचैनी महसूस होने लगी। उसके हृदयने कहा—“यह तो ठीक नहीं हुआ! यह तेरे-योग्य नहीं! न रूपमें, न रंगमें,

न उम्रमें ! बड़ा अन्तर है राधा !” फिर उसकी आँखोंमें बैरिस्टर गुप्ताका तरुण चेहरा प्रगट हुआ । उसके हृदयने कहा—“यही तेरे योग्य है राधा ! इसीको बर ! किस गड़बेमें गिरी जा रही है तू ?” लेकिन बुद्धिने जवाब नहीं दिया । वह रह-रहकर उसके दिलको मि० लूथराकी ओर धकेल रही थी । अब उसे याद आ गई मि० जिन्नाकी प्रणय-कहानी । चालीससाला कुरूप जिन्ना, और सोलहसाला सुन्दरी तरुणी ! किस बातकी कमी थी उस पारसी तरुणीको ? वह थी रूपकी रानी और धन-सेठकी कुमारी । कोई भी सुन्दर कुमार उसपर मुग्ध हो सकता था । वह किसीको भी अपने कदमोंपर झुका सकती थी । पर वह स्वयं जाकर झुकी एक अतरुण-असुन्दरपर ! वह प्यार करती थी । राधा भी प्यार करती है । यदि अठारह-उन्नीसकी राधा चालीसके लूथराको प्यार करे, यह आश्चर्य नहीं ! अनहोनी नहीं ! उपहासजनक नहीं !

फिर एकाएक उसे याद आ गई अपने बचपनकी बात । जब वह केवल चौदहकी थी, चारसह्रकी एक अग्रणी पुरोहित-कन्या, मनि ब्याहकी बात चला दी थी । पचाससाला पंडित सुखलालके गले वह बाँधी जा रही थी । सोचते ही उसके अंग-अंगमें भयके रोंगटे खड़े हो आये । अनेक ब्रेटे-ब्रेटियोंका बाप था वह ! राधाके बापकी उम्रका ! उसके हृदयने पूछा—“तू किस दशामें होती आज, यदि काशीनाथने तेरा उद्धार न किया होता ? तू किस बातपर गर्व कर रही है राधा ? गरीबोंकी कौममें तुझ-जैसी हजारों सुन्दर कन्याएँ पैदा होकर गरीबीमें ही गल-पच जाती हैं ! तू गर्व न कर ! शुक कर उस इन्सान काशीनाथका जिसने इतनी जल्दी तुझे यहाँतक पहुँचा दिया ! मि० लूथरा-जैसे महामहिमाशाली व्यक्तिको शिर-आँखोंपर लेकर अपने सौभाग्यपर आप ईर्ष्या कर ! रूपकी रानी वा प्रणयकी महारानी बननेकी स्पर्धा न कर !”

क्षणभरमें ही उसके गौरवका पंख कटकर धराशायी हो गया ।

वह धूलमें लोटने लगी। काशीनाथके प्रति श्रद्धा और कृतज्ञताके बवंडर-से उसका हृदय विचलित हो उठा। वह उच्छ्वसित हो उठी। उसकी आँखोंमें आँसू आ गये। इस समय उसके मन-मन्दिरमें काशीनाथकी पावन प्रतिमा विराज रही थी। वह सारे मनसे, मनके रेशे-रेशेसे इस मूर्तिकी अभ्यर्थना कर रही थी। अब वह व्याकुल हो उठी भैयाको देखनेके लिए। इसी महीने तो आयेंगे। आइ. सी. एस. बनकर। कितना प्रसन्न होंगे यह जानकर कि उनकी राधा एक आइ. सी. एस. को बरेगी? भैयाने ही तो कई बार कहा था कि राधा अपना घर आप ढूँढ़ेगी। सो, राधाने ढूँढ़ ही लिया—एक परम-प्रतापशाली आइ. सी. एस. को!

राधाका हृदय सौभाग्यकी सरितासे सिंचित होने लगा। अब इस सरितामें गौरवकी प्रखरता न थी, थी बिनभ्रताकी शान्त शीतल धारा। इस समय इस धारामें गोते लगा-लगाकर वह अपना जन्म सफल समझ रही थी। पेशावरमें रहते समय अपनी सखी-सहेलियोंकी लालसाएँ सुना करती। वह भी कभी दबे दिलसे किसी आइ. सी. एस. की सहचरी बननेकी आकांक्षा कर बैठती। सो, आज उस महत् आकांक्षाको सफलताके इतने निकट आ पहुँची देख उसके संतोष-की, उसके आनन्दकी सीमा न रही। इस प्रकार आनन्दकी डुबकियाँ लेते-लेते एक समय वह सो गई। खरटि लेने लगी।

“मेरी प्यारी बहन राधा !

“जिन आशाओंकी कलियाँ लिये इंग्लैण्ड आया था, वे बिना फूले ही मुरझा गईं । अब सिवा निराशाके इस जीवनका कुछ संबल नहीं रहा बहन !

“तुम्हारे जयाका सपना पूरा न हो सका ! वह आइ. सी. एस. न बन सका ! वह आइ. सी. एस. की योग्यताकी कसौटीपर खरा न उतर सका ! वह फेल हो गया !

“अब सही मानेमें समझ पाया हूँ राधा, कि देश-भक्ति और देश-भक्तिकी भावनाका उद्गार कितनी बड़ी बाधा है इस आइ. सी. एस. की योग्यतामें ! कुछ दिन पहले लंदनकी एक भारतीय गोष्ठीमें कुछ बोल गया । वातावरण ही वैसा था । वह भाषण निश्चित रूपसे अपने देशमें विदेशी शासनके अनुकूल नहीं था । बस, यही मेरी अयोग्यताका कारण था । नहीं तो, अपने अनेक सफल साथियोंसे कुछ दिन पहलेतक मैं बहुत ही योग्य माना जाता जा रहा हूँ ।

“अब पछता रहा हूँ राधा, कि मैं भी क्यों न अपने राजनकी तरह किस्साखानीके मैदानमें जा डटा ? न घरका रहा, न घाटका !

“तुम्हारी हालकी चिट्ठियाँ पढ़ता रहा हूँ ।” तुमने अपनी कमला भाभीके बारेमें पूछा है । क्या छिपाऊँ तुमसे बहन ! लिखते दिल टूट रहा है कि अब वह तुम्हारी भाभी नहीं रही ! वह निश्चित रूपसे किसी औरकी बन चुकी है ! मेरे एक अन्य सफल साथीको उसने जीवन-साथी चुन लिया है !

“इसे क्या समझूँ राधा ? तकदीरकी विडम्बना या तदवीरका सीखा ताना ? तुम्हारा वह हँसोड़ भैया अब वह नहीं रहा ! आइ. सी.

एसकी महत्वाकांक्षामें असफल होकर भी मैं बही बना रहता, अगर प्यारकी दुनिया दगा न दे गई होती ! अब समझपाया है इस प्यारके महत्वको !

“मैं तुमसे भी अनुरोध करूँगा बहन, कि तुम भी किसीका दिल तोड़कर सारी स्त्री-जातिको कलंकित न करना राधा !

तुम्हारा—

प्यारा भैया ।”

“पुनश्च :

“लेकिन जब इतनी दूर आ चुका हूँ, इतना समय बिता चुका हूँ, तो निश्चय कर चुका हूँ कि खाली-हाथ स्वदेश नहीं लौटूँगा । आइ. सी. एस. न सही, बैरिस्टर ही सही ।

लन्दन, इस्ट एण्ड

ता०

राधा अभी-अभी कालेजसे आई थी । अपने कमरेके दरवाजेपर टँगें लेटरबाक्स खोलकर उसने अपनी आजकी डाक निकाली । तीन-चार चिट्ठियाँ थीं । लन्दनसे हवाई डाकसे आये लिफाफेको देखते ही उसका दिल बाँसों उछल पड़ा था । कांपते हाथ और घड़के दिलसे उसे खोलकर पढ़ना आरंभ किया । लेकिन हाय ! प्रथम-प्रासे मक्षिका-पातः ! प्रथम अनुच्छेदको पढ़ते ही उसका माथा चकरा गया । बड़ी मुश्किलसे वह पत्रको समाप्त कर पाई । आँखोंके आगे अंधेरा-सा छा गया ! वह भट भीतरसे किवाड़ बन्दकर जड़-कटे वृक्षकी भाँति अर्धकिर सोफेपर जा गिरी । हृदयमें हाहाकारका तूतान उठ खड़ा हुआ ! वह दिलमें एकाएक उठी हूकको दबा न सकी । रुमाससे चेहरा ढककर वह रो पड़ी । अधु-विह्वल स्वरमें बार-बार दुहराने लगी—“हे भगवान् ! यह क्या हो गया ? यह क्या हो गया ? हे भगवान् !”

इस नई सभ्यतामें दीक्षित होकर वह अनेक प्रियजनोंको त्याग चुकी

थी। माँको भी। लेकिन अपने भैयाको वह न त्याग सकी। अपने भैयाके प्रति श्रद्धा, प्रेम और कृतज्ञतासे वह भरी थी। अपने उसी प्यारे भैयाके निराशा और वेदनासे विचलित पत्रको पाकर वह अत्यन्त विचलित हो उठी। वेदनाके बवंडरसे हृदय उसका आकुल हो उठा।

वह सोफेपर आँखें बन्द किये निस्तब्ध, निष्कम्प-सी पड़ी रही। उसके मनकी आँखोंमें पत्रकी कुछ पंक्तियाँ चिनगारियाँ-सी चमक रही थीं—“देशभक्ति और देशभक्तिकी भावनाका उद्गार कितनी बड़ी बाधा है इस आई० सी० एस० की योग्यता में!.....अब समझ पाया हूँ इस प्यारके महत्वको!.....क्यों न अपने राजनकी तरह किस्साखानीके मैदानमें जा डटा!.....तुम भी किसीका दिल तोड़कर सारी स्त्री-जातिको कलंकित न करना राधा!”

राधा सोचने लगी—“देशभक्ति आई० सी० एस०की योग्यता-में बाधक है। विदेशी शासनमें कोई भी देशभक्त बड़ा नहीं बन सकता। राज-भक्ति और अंग्रेज-भक्तिसे बड़प्पन मिलता है, पैसा मिलता है, ओहदा मिलता है, खिताबें मिलती हैं। जीवनका सारा सुख-साधन प्राप्त होता है। माना कि आई० सी० एस०के लोग ऊँची अक्ल और दिमागके हैं। होते होंगे। लेकिन ऊँची अक्ल और दिमाग ही तो सब-कुछ नहीं? क्या चरित्रकुछ नहीं? नहीं-नहीं! चरित्र सब-कुछ है! जो अक्ल और दिमाग चरित्रसे हीन हो वह कुछ नहीं! कुछ नहीं! कुछ नहीं!!! वह हेय है! निन्द्य है! अपवित्र है!!!” सोचते-सोचते ही उसके मानस-पटपर लूथरा आ खड़ा हुआ। अधिकारके दर्प-से दमकता हुआ व्यक्तित्व! राधाकी आँखें घृणासे कुंचित हो उठीं! वह मन-ही-मन बोल उठी—“दूर हो! दूर हो नागकीय कीड़े!”

फिर उसके सामने काशीनाथकी वह पंक्ति चमक उठी—“मैं भी क्यों न अपने राजनकी तरह किस्साखानीके मैदानमें जा डटा!”

राधाका हृदय उससे फिर बोल उठा—“हाय री अभागिन राधा ! जिस रत्नको तू त्याग चुकी, उसे तेरा भैया आज भी कलेजेमें छिपाके रखे है !” अब उसके हृदय-पटपर राजन आ खड़ा हुआ । चेचकके घने-गहरे दागोंके बीच कपारके एक कोनेमें गोली छिदनेका एक घना दाग भी । गर्व और सन्तोषसे चमकता हुआ चेहरा ! राधा अंतिम बार जेलमें इस चेहरेको देख आई थी । अब वह बारम्बार बड़ी श्रद्धासे, बड़े स्नेहसे उसे देखने लगी । अत्यन्त भावनाभरे स्वरमें बोली—“राजन ! मेरे मास्टरजी ! तुम महान हो ! तुम सचमुच महान हो ! लूथरा जैसे कोटि-कोटि कीटोंको तुम्हारे चरणोंपर, तुम्हारे पैरोंकी धूलपर बाँधे !” सोचते-सोचते ही उसके हृदयमें स्वर्ग उतर आया । अब उसके मनमें राजनका गौरव-गरिम, चरित्र-चर्चित, पवित्र चेहरा चमक उठा । वह बोली—“क्षमा करना मेरे मास्टरजी ! मैं तुम्हारी हूँ ! तुम्हारी ही रहूँगी !”

फिर मन-ही-मन काशीनाथका विषाद-विचलित चेहरा यादकर भरे दिलसे वह बोली—“विश्वास रखिये भैया ! आपकी बहन राधा, किसीका दिल तोड़कर सारी नारी जातिको कसकित नहीं करेगी !” अब राधाके दिलसे जैसे मनो बोल उतर गया । उसे कुछ हल्कापन अनुभव हुआ । कुछ शांति महसूस हुई । किन्तु दूसरे ही क्षण उसे पुनः लूथरा याद आ गया । उसकी प्रणय-परियाचना याद आ गई । नहर-के किनारे वह गिड़गिड़ाता दीन चेहरा ! राधा सहम गई । क्या यह लूथराको दगा देना नहीं ? उसका दिल तोड़ना नहीं ? वह स्तब्ध हो गई । कुछ देर चुपचाप सोचती रहकर फिर बोली—“नहीं, उसके दिल है ही कहाँ ? वह तो स्वयं अनेकोंके दिल तोड़ चुका है । दर्जनोंसे खेल-कर सबको दगा दे चुका है । नहीं नहीं, उसे मैंने कभी प्यार नहीं किया, कभी दिल नहीं दिया ! यदि मैंने प्यार किया था, दिल दिया था, तो उसके ओहदेको, उसकी शान-शौकतको, जिसकी चका-चौधमें मेरी आँखोंकी वास्तविकता नष्ट हो चुकी थी, मन्द पड़ चुकी

बी । “नहीं, मेने तुझे प्यार वहीं किया ! दिल नहीं दिया ! महार ! लम्पट ! दुश्चरित्र !”

राधाका दिल पुनः घृणासे भर उठा । अब उसे एक घटना याद आ गई । ‘लारेन्स-गार्डन’ के मिन्टमुमरी हॉलमें एक बहुत बड़े देशी-नरेशको जाने नहीं दिया गया था । उस नरेशने इस क्लबके लिये नगद ५० हजार चन्देके दिये थे । लेकिन वह काला था, देशी-नरेश होकर भी भारतीय था । वह कैसे गोरे नर-नारियोंके साथ नाचेगा ? उन्हें नाचते देखनेकी घृष्टता कर सकेगा ?

राधाका मन मिचला उठा ! बोली—“लूयरे ! तू भी तो नहीं जा सकता उस हॉलमें ? तू भी तो नहीं नाच सकता उन गोरे नर-नारियोंके साथ ? तू आई० सी० एस० है तो क्या ? अपने देशके मूर्खों और अनजानोंकी नजरोंमें महान है । लेकिन आजाद देशके उन सामान्य मोँकोंकी नजरोंमें भी तू काला ही है, गुलाम ही है, कुत्ता ही है ! एक सामान्य बागीकी भी कहीं अधिक इज्जत है उनकी नजरोंमें । नहीं नहीं, तू मेरे मास्टरजीका स्थान नहीं ले सकता, वहाँतक नहीं पहुँच सकता । वह अति महान है ! अति विशाल है !”—कहते-कहते अपने मास्टरजीके प्रति श्रद्धा-भक्तिसे वह साराबोर हो उठी ।

फिर वह कमलाको उद्देश करके बोली—“कमले ! यह तू क्या कर बैठी ? छी ! तुमने प्यारको इतना बाजारू समझ लिया ? नहीं, यह तुम्हारा दोष नहीं कमला ! यह दोष आजके उस सभ्य समाजका है जिसमें तुम पैदा हुई हो, पली हो । जहाँ पैसा और ओहदा ही सब-कुछ है । चरित्र और ब्यक्तित्व कुछ नहीं ।”

राधा पुनः घृणासे विचलित हो चली । वह सहसा हाथ जोड़कर बोल उठी—“ले कमले ! तेरे इस प्रकाश-प्राप्त सभ्य समाजको सदाके लिये नमस्कार !”

वह भट सोफेपरसे उठ खड़ी हुई । चट किवाड़ खोल कमरेसे बाहर आई । ऊपरसे ही दरवानको आवाज दी । दरवाजा आकर हाथ जोड़कर

खड़ा हो गया । राधा बोली—“अभी कोठीमें कोई है तो नहीं रामलाल ?”

“नहीं हुजूर !”—उसने हाथ जोड़कर जवाब दिया—“साहेब अभी कोर्टसे नहीं आये । मेमसाहेब बड़ी मिससाहेबको लेके बाहर गई हैं । छोटी मिससाहेब स्कूलसे नहीं आई ।”

“अच्छा !”—राधा बोली—“जा तो, जल्द एक तांगा तो ले आ ! स्टेशनके लिए !”

“जी !”—कहकर दरवान चला गया । उसे आश्चर्य तो अवश्य हुआ, किन्तु एक आज्ञाकारी भूत्यकी तरह बिना कुछ पूछे तांगा लेने चल पड़ा ।

पाँचेर मिनटमें ही एक बढ़िया तांगा आ गया । राधा अब-तक तैयार हो चुकी थी । दरवान उसका सूटकेस ले जाकर तांगेपर रख आया । राधा नीचे आ गई । एक बंद लिकाफा दरवानके हाथ थमाकर बोली—“जब साहेब कोर्टसे आ जायें, उन्हें दे देना !”

राधा तांगेपर बैठ गई । नौकर बंशीधरने बड़े विनयसे हाथ जोड़कर कहा—“मे भी साथ चलूँ स्टेशन-तक ?”

“नहीं नहीं !”—राधाने मना किया—“तुम लोग यहीं रहो । मैं अकेली ही जाऊँगी ।”

तांगा चल पड़ा । इस समय राधाको लगा जैसे वह नरक-कुंडसे निकल रही हो । तांगेकी गतिके साथ हृदयकी गति पेशावरकी ओर बढ़ती जा रही थी । दस मिनटमें ही वह स्टेशनपर आ गई । संयोगसे पेशावरकी गाड़ी खड़ी थी । उसने झट तांगेवालेको भाड़ा चुकाया । झट टिकट कटाकर सेकेंड क्लासके डब्बेमें जा चढ़ी । मुँह-माँगा इनाम पाकर कुली भी खुशी-खुशी चलता बना ।

गाड़ी जा रही थी । राधाका मन पेशावर पहुँच चुका था । पुराने ढंगकी बड़ी कोठी; पुराने आचार-विचारोंसे चिपटी अपनी बूढ़ी माँ; रहीम, रजिया और बनारसी; अपनी कई सखी-सहेलियाँ; जेलके

सीखचोंके पीछे बन्द उसका मास्टरजी । वही पुरानी दुनिया । राधाका मन इस दुनियामें अब घूमने लगा । विर-परिचित प्रियजनोंसे मिलनेकी लालसा जहाँ उसे प्रसन्न बना रही थी, वहाँ कुछ यादकर एक गहरी वेदनाकी गहरी टीस उसके मनको रुला भी जाती । हृदय भर आता, आँखें भर आतीं । उसका मन उसे धिक्कार रहा था—“राधा, किस दिलसे अपनी स्नेहशीला वत्सला माँका अपमान किया था तूने ? किस कलेजेसे कहा था तूने—“माँ, अब तुम न आया करो यहाँ !” राधाका हृदय विदीर्ण हो उठा—“माँ ! माँ ! मेरी प्यागी माँ ! मुझे माफ कर दो माँ ! अपनी इस अकृतज्ञ भ्रष्ट पुत्रीके अपराध क्षमा कर अपने चरणोंमें बगह दो माँ !”—कहते-कहते वह वास्तवमें रो पड़ी । भट चेहरेको रुमालसे छिपाकर अपने बथेंपर सेट गई ।

[२०]

आज राजन रिहा होगा । जेल-जीवनकी सात-साला अवधि पूरी हो चुकी थी । आज सवेरेसे ही वह प्रतीक्षामें था । जेलसे बाहर निकलकर प्रियजनोंसे मिलनेकी अधीरता उसके दिलको गुदगुदा रही थी । हृदयमें एक मीठी कँप-कंपीसी थी । उसे आशा थी कि राधा और काशी कम-से-कम आज अवश्य मिलेंगे । विलायतसे वापस आनेके बाद वही जो राधाके साथ एक बार आकर मिल गया, फिर दुबारा नहीं आया । राधा भी नहीं आई । उसके पत्र कभी-कदाचित् आ जाते, किन्तु उनमें शिष्टाचारकी नीरसता होती । हार्दिक आवेदनकी सरसता मानो खत्म हो चुकी थी । लेकिन फिर भी राजनका हृदय आशाकी डोरमें बँधा था । वह सोचा करता—“राधाकेलिये ऐसी उदासीनता अस्वाभाविक नहीं । जब मलहोत्रा-परिवारमें थी, उदासीन हो चली थी, किन्तु बादमें जब लाहौर छोड़ पेशावर में आ गई, कैसा अपनापन था उसके मिलनमें ! कैसी सरसता थी उसके आवेदनमें ! फिर वह लाहौर चली गई । काशीनाथ भी वहाँ जम गया । यह वहाँके आतावरणका ही परिणाम तो नहीं ? लेकिन आज, आज तो उन्हें अवश्य आना चाहिये ? शिष्टाचारके नाते भी तो ?”

राजन जेलसे बाहर आया । पर न वहाँ राधा थी, न काशीनाथ । पर ये बहुतेरे उसके अपने—चाची, रहीम खान, रजिया और बनारसी । अट उसने आगे बढ़कर चाचीके चरण छुए । चाचीने छातीसे लगा लिया । रहीमखान, रजिया और बनारसीके स्निग्ध आलिंगनोंमें बँधकर उसके दिलके कोमल तार बज उठे । स्नेहकी नीरव रागिनी आँखोंसे बाहर आ गई ।

“एँ ! तुम ? लीला ?”—सामने उसे देखकर राजन चौंकर

बोला—“तुम क्यों आ गई ? नाहक इतनी दूरसे ?”

“और तुम ?”—आँखोंमें खुशीके आँसू और ओठोंपर मुस्कुराहट भरकर लीला बोली—“तुम क्यों नाहक जेलमें जा घुसे ? इतने-दिन क्यों नाहक पड़े रहे ?”

राजन हँस पड़ा। हँसकर वह लीलाके गलेसे लिपट गया। आँखोंसे शुभ्र लड़ियाँ बिखर चलीं।

“लीला !”—अब सग्हलकर उसने आँखोंसे लीलाका परिचय कराया—“ये हमारी चाचीजी हैं, ये मेरे भैया, ये मेरी भाभी और यह मेरा बेटा बनारसी !”

सब हँस पड़े। चाची भी हँसती हुई बोलीं—“अभी तो शादी भी नहीं की तूने ? फिर बगैर शादीके बेटा कैसे हो गया रे ?”

बनारसी लजा गया। अब वह सात-आठसाला शिशु न था, बल्कि चौदह-पन्द्रहका सुन्दर किशोर।

“पूछ देखो उससे।”—राजनने हँसकर जवाब दिया—“वह मेरा है या नहीं ?” फिर मुस्कुराती आँखोंसे रजियाको देखकर—“वयों भाभी, झूठ बोल रहा हूँ मैं ?”

“नहीं भैया मेरे !”—रजिया भी बुर्केके भीतरसे हँसकर बोली—“तुम भला झूठ बोलोगे ?” फिर हँसीका फौवारा छूट पड़ा।

“चाचीजी !”—अब राजन लीलाका परिचय कराते उनसे बोला—“इनका नाम है लीलावती। बनारसकी हैं। अभी लाहौरसे आई हैं मेरे ही लिये।”

लीलाने चट हाथ जोड़ सबका अभिवादन किया। चाची चट आगे बढ़कर उससे गले मिलीं।

“क्यों राजन ?”—वे लीलाका हाथ पकड़कर बोलीं—“यह तो राधाकी ही उमरकी होगी ?” फिर लीलासे—“क्यों धिटिया, ठहरी कहाँ हो ?”

“धर्मशालामें।”—लीलाने सकुचाते हुए जवाब दिया।

“क्यों रे राजन !”—चाची अब बरस पड़ी—“तूने ब्रिटिया-को घरका पता नहीं दिया था ?” फिर लीलासे—“यह तो बड़ा अन्याय हो गया बेटी ! अपने घरके रहते तू धरमसालमें ठहरेगी ? चल-चल ! कहाँ है तेरा सामान ? अपने घर चलें !”

लीला इस वात्सल्यसे विचलित हो उठी ! मुस्कुराकर बोली—“मैं सामान लेकर नहीं चला करती चाचीजी ! सब-कुछ इसी हाथ-बेग में है ।”

“अच्छा तो घर चलें !”

लीला जरा संकुचित होकर बोली—“इस बार तो नहीं चाचीजी ! मुझे इसी अगली गाड़ीसे लाहौर लौटना है । कभी दूसरी बार आऊँगी, तो आपके ही पास रुकूँगी !”

“यह भी कोई बात है भला ?”—चाची उपालंभके स्वरमें बोली—“इतनी दूरसे आकर दो-चार रोज भी नहीं रुकेगी ? अब तो अपना घर है तेरा ? धरमसालमें तो नहीं रहना है ?”

“ठीक तो है !”—राजनने सह दिया—“अभी तो चलो ! बाब-में मना लेना चाचीजीको !”

रहीम खान अबतक बड़े गौरसे लीलाको देख रहे थे । एकाएक बोले—“इतनी देर बाद तुम्हें पहचाना बहन ! पंडित-रामशंकरजी-की लड़की हो न तुम ?”

“जी !”—लीलाने उन्हें आश्चर्य-चकित आँखोंसे देखकर कहा—“आप उन्हें कैसे जानते हैं ?”

“क्यों न जानूँगा बहन ? बनारसमें नौ साल बिता चुका हूँ । वहीं तुम्हें बचपनमें देखा था । अब तो जमाना गुजर गया । तब मैं बिल्कुल जवान था ।” फिर दाढ़ीकी ओर संकेत करके—“अब तो बूढ़ा हो चला । बाल सफेद हो चले ।”

“तुम रहीम-भाईको नहीं पहचानतीं लीला ?”—राजनने याद दिलाते हुए कहा—“वहाँकी कांग्रेस-कमेटीके वर्षों खजान्ची रह

चुके हैं !”

लीलाको धक्से याद आ गया !

“माफ करेंगे रहीमभाई !”—हाथ जोड़ क्षमापनके स्वरमे वह बोली—“अब मैं आपको अच्छी तरह पहचान गई ।”

“माफी अब वैसे नहीं मिलेगी ।”—रहीम खानने मुस्कुराकर कहा—“अपनी भाभीके साथ, चाचीजीके साथ कुछ दिन पेशावरमें बिताओ ।” फिर बनारसीको संबोधित करके—“अपनी बुआजीको नमस्ते कर बेटा ! अब यह तेरी ही ड्यूटी रही कि तू इन्हें कुछ दिनके लिये रोक रखे ।”

अब बनारसीने लीलाका हाथ पकड़ा । एक तांगेपर लीला, बनारसी और रहीम खान सवार हुए तथा दूसरेपर चाची, रजिया और राजन । तांगे शहरकी ओर चल पड़े ।

“आजकल काशी और राधा कैसे हैं चाची ?”

राजन अपनी उत्सुकता दबा न सका । इस अवसरपर राधाको न देख वास्तवमें वह मन-ही-मन निराश हो गया था । सो अंतमें उसने पूछ ही दिया ।

“क्या पूछते हो बेटा, उन दोनोंका हाल ?”—चाची अंगुलियोंसे कपार ठोककर बोली—“मेरा तो माँका दिल है । जहाँ रहें, सुखसे रहें ! मगर सच कहती हूँ राजन, बिलाइत जाके लोग भरस्ट हो जाते हैं । किसी बातका विचार नहीं रहता । वह खुद पूरा साहेब बनकर आया, और उसके साथ राधा भी पूरी मेम बन गई ! क्या बताऊँ तेरेसे बेटा ?”

राजनके दिलको जैसे एक जोरका धक्का लगा ! जैसे चहेरेपर अकस्मात् निराशाकी एक छाया-सी छा गई ।

“क्या ?”—उसने आश्चर्य-चकित स्वरमें पूछा—“राधा मेम बन गई ? राधाने काशीसे शादी कर ली क्या ?”

“नहीं रे नहीं !” चाची उसका आश्चर्य और आशंका दूर करती

हुई बोलीं—“शादी कैसे होगी ? आखिर भाई-बहन ही तो ठहरे ! कहनेका मेरा मतलब है कि उन दोनोंकी चाल-चलन पूरे साहेबों-जैसी, फिरंगियों-जैसी बन गई है।”

राजन कुछ आश्चर्य हुआ। उसने फिर पूछा—“तो अब वह पेशावरमें कम आता है चाची ?”

“पेशावर क्यों आयेगा ? नाहौरका बड़ा साहेब पेशावर-जैसी छोटी जगहमें आकर अपनी हुतक कैसे करायेगा बेटा ? आया था शुरू-शुरूमें एक-दो बार।”

“और राधा ?”

“साहेबसे मेम किस बातमें कम ? सुना है मेमसाहेब आजकल अकालतकी पढ़ाई कर रही हैं। खैर। जो मनमें आवे करो ! मैं क्यों बोलने लगी ? मैं तो मूरख गेवार हूँ। क्या जानूँ आज-कलकी बात ? मगर जो भी कहो बेटा, तुम-लोगोंका यह जमाना मुझे तनिक भी अच्छा नहीं लगता !”

“हम भी पसंद नहीं करते चाची !”—राजनने जरा आवेशमें कहा—“इस बेईमान जमानेको मिटाकर एक बढ़िया-सा, ईमानदार जमाना लानेकी हम कोशिश कर रहे हैं, जिसमें तुम-जैसे लोग भी खुश रह सकेंगे चाची !”

“अच्छा !”—चाची उदासीन स्वरमें बोलीं—“भगवान् की जैसी मर्जी ! इन्सान भला क्या बनायेगा, क्या लायेगा ? कुछ दिन और बचे हैं। यह सब देख-दाखके एक दिन आखें मूँद लूँगी। तुम लोगोंकी उमर लंबी हो ! जियो-जागो ! जमाना बनाओ, जमाना पलटो !”

“अच्छा चाची, राधाको देखे तुम्हें कितने दिन हुए ?”

“यही कोई दो महीने हुए होंगे ! मगर सच कहती हूँ, एक दिन भी वहाँ टिकनेको दिल नहीं करता ! मैं तो वहाँका अन्न-जलतक नहीं छूती। एक बात और। वे दोनों भीतरसे पसन्द भी नहीं करते कि मैं अधिक बार वहाँ आऊँ-जाऊँ !” कुछ देर रुककर फिर बोलीं—

“साहेब और मेम बनकर लोग माँ-बापतकसे धिन करते हैं । पिछली बारकी बात है, जब राधा लाहौरके मलहोत्रा-साहबके घर रहा करती । मैं हुलसकर उससे मिलने गई । जाने किस सिगार-पटारमें लगी थी । मेरा जाना उसे बिल्कुल पसन्द न आया । मुझे दुत्कार दिया बेटा ! मैं चली आई । मगर देखा कि कुछ ही दिन बाद बिटिया मेरी, बिल्कुल मेरी बिटिया बनकर लौट आई है ! आकर पैरोंपर गिरकर माफी मांगने लगी । लगा कि किस कलेजेमें छिपाकर रखूँ अपनी राधाको ! क्या बताऊँ बेटा, उस दिन कितनी खुशी हुई मुझे !”

उम वृद्धाकी आँखोंसे वात्सल्यके आँसू टपक पड़े । ओढ़नीमें आँखें पोंछती हुई बोलीं—“लाहौर जाके उनसे जरूर मिलना बेटा ! माल रोड़पर एक बड़ा-सा बंगला है । बालिस्टर काशीनाथका नाम लिखा है । राधासे बोलना—चाहे जितना भी पढ़-लिख जाओ, मगर जिसने जनम दिया उसे दुखी न करो !”

आँखोंमें सहसा उभरे आँसुओंको पोंछकर फिर बोलीं—“काशी और राधा तुझे तो चिट्ठी लिखते होंगे बेटा ?”

“बहुत दिनोंसे कोई चिट्ठी नहीं मिली !”—राजनने भरे दिलसे जवाब दिया ।

“अब तुझे भी नहीं पूछते ! क्यों पूछेंगे ? तू तो वही रहा जो पहले था । देखो तो नमकहरामी ! जिसके साथ इतना नेत-मेंत, दाँत-कटी रोटी, उसे भी भूज जाय ? आजके दिन भी मिल जानेकी बात नहीं सूझी उन्हें ?”

“मैं ही जाके मिलूँगा चाची !”

“हाँ, जरूर मिलना !”—फिर जरा रुककर—“क्या मिलोगे उन नमकहरामीसे ?”

तांगा रुक-रुककर अब भरी गलीसे गुजर रहा था । वे एक समय चौक पहुँच गये । तांगेसे उतरकर घरकी ओर चले ।

X

X

X

तीसरे दिन राजन और लीला जब लाहौरके लिये तैयार हो रहे थे, चाची कमरेमें आई। गिड़गिड़ाकर बोलीं—“कुछ दिन और नहीं रुकोगे बेटे ! ये तीन दिन मेरे तीन पलकी तरह बीते ? काशी और राधा तो छिन ही चुके। तुम दोनोंको देख-देखकर लगता था उन्हें ही देख रही हैं। रह न जाओ बेटे !”

चाचीकी आँखोंसे भरना बह चला। लीलाकी बड़ी-बड़ी आँखोंसे मोतियोंके दाने भरने लगे। राजन भी सजल होकर मुँह फिराकर पुस्तकके पन्ने पलटने लगा।

“लीला तुम्हारी एक स्कूलमें पढ़ाती हैं चाची !”—राजनने सामने होकर कहा—“सिर्फ तीन ही दिनकी छुट्टी थी। सो तुम्हारे प्रेममें पड़कर सारी छुट्टी यहीं बिता चुकीं। एक और बात चाची ! लाहौरमें कुछ और लोग मुझे देखनेको बड़े व्याकुल होंगे। अगर यह बात नहीं होती, मैं यहीं रह जाता। लीला भी कुछ दिन और रुक जातीं।”

चाची बड़े आवेशसे बोलीं—“अच्छा, तब जरूर जा बेटा ! औरोंके भी तो दिल है। मगर जाकर इस बुढ़िया चाचीको न भूल जाना !” कहकर इस बार मुँह ढककर रोने लगीं।

इस वृद्धाके हृदयको इस प्रकार ममता, मानवता और वत्सलतासे भरा देख लीला अधीर हो उठी। उस अनाथ-कन्याका भूखा हृदय मातृत्वकी इस मूर्तिमती ममतासे, उसके माधुर्यसे भर उठा। वह विचलित हो उठी। भरी आँखों और भरे दिलसे उसने चाचीके चरण छुए।

चाचीसे विदा लेकर लीला और राजन रजियाके घर पहुँचे। उन सबोंसे भी भरी आँखों और भरे दिलसे विदा ले स्टेशनकी ओर चल पड़े। बनारसी स्टेशनतक साथ गया।

[२१]

“हलो राजन ! गुड मीनिंग !...कब आये जेलसे छूटकरजी ?... सोच ही रहा था कि एक बार जाकर मिलेंगे ! राधा भी कह रही थी । हमें तो रिहाईकी तारीखका पता ही न था ! पेपरमें भी नहीं निकला !...पेपरवाले भी पोजीशनकी इज्जत करते हैं । विद्या, ज्ञान और चरित्रकी कहीं पूछ नहीं, कहीं इज्जत नहीं ! खैर ! ये तुम्हारे सात साल कटे तो मजेमें ? ..चाय-बाय मँगवाऊँ तुम्हारे लिये ?... अच्छा, तो अभी नहीं पियोगे ? तो फिर कभी आओ न, वक्तसे ? चाय-बाय साथ पियेंगे ! जेल-लाइफके बारेमें कुछ पूछेंगे, कुछ सुनेंगे, कुछ सुनावेंगे ।”

कहकर काशीनाथ बार-बार अपनी कलाईपर बँधी घड़ीकी ओर देखने लगा । राजन चुपचाप कुर्सीपर बैठा अपने बाल्य-बन्धुका शिष्टा-चारिक अभिनय देखता रहा । न उसे अपनी आँखोंपर विश्वास हो रहा था, न कानोंपर । इस थोड़ेसे असेमें इतना विशाल परिवर्तन ! इतना अलगाव ! वह कौन-सी दीवार आ खड़ी थी बीचमें ? वह कौन-सा अकाल आकर उस स्नेह-सरिताको सुखा ले गया था ? सूखा शिष्टाचार ओए तीखा व्यंग्य ! फिर भी राजन वहाँ बैठा ही रहा । उसकी आँखें फिर भी किसीको खोजती ही रहीं ।

राधा एक झलक दिखाकर दरवाजेपरसे ही मुड़ गई थी । सहसा उसे साहस नहीं हुआ कि वह उसी वेशमें मास्टरजीसे मिले । उसे आशा भी न थी कि राजन वहाँ आयगा । एक अवांछित अतिथिकी तरह वहाँ वह पहुँचा था । काशीनाथ और राधा अभी तैयार थे बाहरके लिये । हाईकोर्टके एक जजके घर कोई उत्सव था । नगरके सभी नामी नागरिक निमंत्रित थे । समय हो चुका था । राजन दाल-भातमें

मूसलचन्दकी तरह पहुँच गया था ।

राधा अपने कमरेमें गई । आइनेके सामने खड़ी हो उसने अपनेको निहारा । संकोचके पहले धक्केके प्रभावसे अब वह मुक्त हो चुकी थी । उसके हृदयमें सभ्यताका स्वाभिमान जग चुका था । अपने कमरेसे निकलकर स्थिर-चित्तसे अब ड्राइंग रूम (बैठ खाना) में प्रविष्ट हुई । चेहरेपर मन्द मुस्कान लाकर हाथ जोड़कर बोली—
“नमस्ते मास्टरजी !”

मास्टरजी निहाल हो गये । लेकिन जरा-सा मुस्कुराकर ही चुप रह गये ।

“हाँ राधा !”—काशीनाथने पुनः अपनी हाथ-घड़ीको निहारकर कहा—“फिक्स्ड टाइम (निश्चित समय) क्या है ?”

“ग्यारह ।”—राधाने खड़े-खड़े ही जवाब दिया ।

“ओ ! इट इज टू लेट (बहुत देर हो गई !).....अच्छा राजन, जरा माफ करना । जस्टिस मेहराके यहाँ आज एक फन्कशन है । हम दोनों वहीं जा रहे हैं । हाँ, कार तो तैयार है न ?”

“तैयार है ।”—राधाने जवाब दिया ।

“अच्छा राजन !”—काशीनाथ उठ खड़ा होकर बोला—“किसी दिन आगो जरूर । नाराज न होना ।”

राजन बिना कुछ कहे ही कमरेसे बाहर हो गया । हृदय उसका मुन्न पड़ गया था । चेहरा रक्तहीन और ओठोंपर पपड़ियाँ ! राजन अहातेसे निकल गया । राधा खड़ी-खड़ी देखती रही । हृदयमें अनजाने एक हल्की-सी टीस उठकर बिला गई ।

“तुम चुपचाप खड़ी क्यों हो गई ?”—काशीनाथने उसे याद दिलाया—“चलो, वक्त काफी बीत चुका !”

“नहीं तो !”—गधा जरा चौंक उठी—“चलिये !”—कहकर वह भी कारकी ओर बढ़ चली ।

राधा इस सभ्य-समाजमें पुनः प्रविष्ट होकर भी मि० लूथराको

अपना न सकी। राधासे ठुकराये जानेके कारण ही शायद निराशा या प्रतिशोधकी भावनासे मि० लूथराने मनोरमाको अपना लिया था। भले ही वे कुरूप थे, गत-यौवन थे, पर एक आई. सी. एस. की पत्नी बन जानेपर मनोरमाका सौभाग्य बहुतेरियोंकी आँखोंका काँटा बन ही गया था। राधा, जो उस समय मलहोत्रा-परिवारसे निकलकर सारे सभ्य समाजपर मन-ही-मन घृणाकी चिनगारियाँ बरसाती पेशावरकी ओर, और राजनकी ओर मुड़ चली थी उसमें कारण थे उसके हृदयमें अपने भैयाके प्रति असाधारण स्नेह और कृतज्ञताके भाव। काशीनाथके निराशाभरे शब्दोंने उसके कोमल-कृतज्ञ एवं स्नेहिल हृदयपर इस प्रकार आघात कर दिया कि वह सम्भल न सकी। एका-एक विचलित हो उठी।

किन्तु, फिर वही काशीनाथ जब बिलायतसे बदलकर वापस आ गया, उसने राधाको पुनः उस सभ्य-समाजमें खींचनेकी कोशिश की, तो राधाने जरा भी विरोध न किया। क्योंकि काशीनाथकी किसी भी इच्छाका विरोध कर सकना उसके लिये आसान न था। लेकिन इस बार दुबारा इस समाजमें प्रविष्ट होनेके बाद उसके हृदयमें राजनके लिये कभी अवज्ञाका भाव उत्पन्न नहीं हुआ। वरन उसके मनके किसी अनजाने स्थलमें अनजाने ही जब-तब श्रद्धाकी रागिनी भी बजा करती। किन्तु फिर भी अब राधाके लिये आसान न था कि वह पुनः पीछे मुड़कर राजनको जीवन-सहचरके रूपमें कल्पना करनेका साहस कर सके। अपने जीवनकी नावको मन-ही-मन काशीनाथको सौंप जाने किस अज्ञात-अनंतकी ओर वह बही जा रही थी।

X

X

X

राजन समाज-कार्यालयके अपने कमरेमें वन्द हो गया। वर्षों बाद जेलसे छूटकर अपने प्रिय बन्धुसे स्वयं मिलने गया था। ऐसे सूखे, दिखावटी और अपमानकारक सत्कारकी उसे आशा न थी।
 कन अरमानों और जालसाजोंको लिये वहाँ पहुँचा था ! चलनेसे पूर्व

बुद्धिने मना भी किया, किन्तु हृदयने नहीं माना। जिस हृदयमें आज वर्षोंसे राधाको छिपाये सब्ज-बागके सपने देखा करता, जिन भावनाओंसे जेल-जीवनके सूनेपनकी सरस बनाये रहता, जिन आशाओंसे हृदय उसका हरा बना रहता, उन सबका केन्द्र उस राधाको एक बार जी-भरकर देखनेके लोभसे वह मुक्त न हो सका था। उसने राधाको देखा। राधाने भी देखा। किन्तु आज परस्परकी इस देखा-देखीमें वह कुछ दिखाई न दिया जिसे देखनेकी इच्छासे वह घाँट पहुँचा था। आँखोंके सामने ही अब-तकका बना-बनाया प्रयत्न-किला पलमात्रमें गिरकर चकनाचूर हो गया ! उसकी खंडहरोंमें बैठकर दिलके फफोले फोड़ने-तकवी आशा न रही ! वह रोने लगा। अब प्रणय-चिताकी राखमें सिवा रो-रोकर लोटनेके कोई चारा न रह गया !

“हाय राधा !”—मन-ही-मन रोता हुआ वह बोला—“यह क्या कर दिया तुमने ? मेरे सारे सपने धूलमें मिला दिये ? राधा, क्या सचमुच विश्वास कर लूँ, कि तुम मेरी नहीं बनोगी ? दिन नहीं करता कि ऐसा सोचूँ और ऐसा समझूँ ? आः राधा ! मेरे हृदयकी यह आह, यह वेदना यदि तुम-तक पहुँच पानी ! कोई पहुँचा पाता ! तुम नारी हो। माँ, बहन और सगिनी हर रूपमें अपने हृदयके स्वर्गिक स्नेहसे संसार को सींचती हो, उसे जीवन-दान देती हो। क्या मैं.... क्या मैं उस दानके योग्य नहीं राधा ? तुमपर विश्वास किया था। तुम्हारे हृदय-पर विश्वास किया था। तुम्हारे चेहरेपर हृदयकी स्वर्गीय स्वच्छता देखी थी। क्या यह-सब भ्रम था राधा ? क्या नारी-हृदयकी स्वच्छता-पर विश्वास करना धोखा था राधा ?”

राजन चुप हो गया। अब उसके हृदय-पटपर उसका बाल-सखा काशीनाथ आ खड़ा हुआ। लेकिन उन बाल-सखा काशीनाथसे आजके काशीनाथमें मानो कोई साम्य नहीं ! मानो आकाश-पातालका अन्तर पड़ गया था ! कहां सरल-हँसोड़ चेहरेपर हृदयकी छलकती स्वच्छता, और कहां अभिजातताके गर्व-गुम्फित अहंभावका यह शुष्क व्यवहार ?

विरक्तिसे हृदय भर उठा ! अपमानकी व्यथासे मन काँप उठा ! जैसे लगा कि काशीनाथ उसका प्रणय-प्रतिद्वन्द्वी हो । वह राधाको उससे छीन रहा हो । यह सोचते ही उसके हृदयमें क्रोधकी आग भभक उठी ! लगा कि इस आगमें वह काशीनाथको जला देगा ! कुछ क्षणकेलिये प्रतिशोधकी पाशविक भावनासे वह भर उठा । वह सोचने लगा कि इसी क्षण जाकर वह काशीनाथको उसकी नीचताका दण्ड दे ! क्षुद्र, लम्पट, बदमाश ! जिसे वहन समझकर पाला उसे आज.....

वह रुक गया । उसकी इस पाशविक भावनासे मानव-भावनाका संघर्ष छिड़ गया । मानव-भावना विजयी बनी । किन्तु थकी-सी, निराश-सी । काशीनाथका क्या दोष यदि राधा स्वयं उससे (राजनसे) पृथक् हो गई ? स्वयं उससे दूर हो गई ? उसे अपने सहचरके योग्य न समझा ? राजनने अपने व्यक्तिको देखा, अपनी परिस्थितिपर विचारा । वह बोला—“हाँ राधा, मेरे पास सिवा हृदयके और कुछ नहीं । मैं और कुछ नहीं दे सकता था । वह वैभवका जीवन, वह विलासका संसार मैं तुम्हें नहीं दे सकता था । मैंने तुम्हें प्यार किया है, सच्चे दिलसे प्यार किया है । जाओ, मुझसे दूर रहकर भी तुम सुखी रहो राधा !”

लेकिन सद्गुरुताका यह आत्म-सन्तोष अधिक देरतक कायम न रह सका । उसका हृदय पुनः बोल पड़ा—“राधा, क्या हृदयका दान सामान्य दान है ? क्या हृदयका वैभव सामान्य वैभव है ? तो मैं क्या ससम्भू ? क्या नारी, हृदयके वैभवका, हृदयके दानका सम्मान नहीं कर सकती ? करनेकी क्षमता नहीं रखती ? क्या वह बाह्य-वैभवकी चकाचौंधको ही सर्वस्व मानती है ? उसीकी ओर आकृष्ट होती है ? वह इसी वैभवका खिलौना है ? क्या नारीत्वका यही मूल्य है ?”

राजन अब निराश हो गया । हृदयपर निराशाका अन्धेरा छा गया । क्षणभरके लिए सारा संसार मानो अन्धेरेकी विराट् कुक्षिमें आ छिपा । कुछ देर वह निःशक्त, निश्चेष्ट पड़ा रहा । फिर उसने

देखा, इस अन्धेरेके आवरणको चीरती हुई कुछ मूर्तियाँ उसके मानस-पटपर आ खड़ी हुईं—अपने चारों ओर प्रकाशकी शीतल किरणें बिखेरती हुई चाची, रजिया, और लीला। माँ, बहन, और संगिनीके सौरभसे हृदयके सूने उपवनमें प्राणका संचार करती हुईं। राजन रो पड़ा ! नारी, तू महान है ! तू हर रूपमें महान है। चाचीकी आँखों-से वात्सल्यकी अजस्र धारा वह रही थी; रजियाकी आँखोंसे बहन और भाभीके रसभरे स्नेहकी सरिता छलक रही थी; और लीलाकी आँखोंसे जीवनके सच्चे साहचर्यकी शीतल और सुगन्धिमय किरणें बिखर रही थीं।

राजनका मन उच्छ्वसित हो पड़ा। एक ओरसे धीरे ठोकर खाकर बड़े वेगसे वह लीलाकी ओर दौड़ पड़ा। राजन बोल पड़ा—“लीला ! मेरी प्यारी लीला ! स्नेहमयी लीला ! प्रेममयी लीला ! मुझे माफ़ कर दो लीला ! मैं बड़ा नीच हूँ ! बड़ा स्वार्थी हूँ !”

वह फिर रो पड़ा। चादरमें सारा बदन लपेटे तख्तपोशपर पड़ा-पड़ा वह हिचकियाँ लेने लगा।

“राजन ! क्या सो गये ?”

किबाड़पर एक कोमल हस्ताघात हुआ। आवाज लीलाकी थी। राजन भट सम्हलकर उठ बैठा। किबाड़ उसने खोल दिये।

लीला उसके चेहरेको देख अवाक रह गई ! व्याकुल होकर बोली—“वह तुम्हें क्या हो गया जी ? तुम क्या गुनगुना रहे थे अभी ? तबीयत तो ठीक है तुम्हारी ? जरा देखूँ !”

लीलाने आगे बढ़कर उसकी नाड़ी पकड़ी, कपारपर हाथ रखा, पैरपर भी। फिर जरा आश्वस्त होकर बोली—“नहीं, बुखार नहीं है।” फिर उसे तख्तपर बैठाकर उसकी बगलमें स्वयं बैठ गई। पूछा—“तुमने आज दोपहरका खाना क्यों नहीं खाया ? बहनजी बता रही थीं। चलो, खाना खालो तैयार है।”

“नहीं, मैं नहीं खाऊँगा !” राजन एक शिशुकी तरह मचलकर बोला।

“क्यों ?”—लीला मानो माँकी तरह पुचकारते हुए बोली—“खानेसे भी कोई रुठता है ? चलो, उठो ! अच्छा, यहीं ला दूँ ?”

राजन चुप रहा । उसकी आँखोंमें आँसू थे, हृदयमें हाहाकार ! लीलाने गौरसे देखा ! उसका हाथ पकड़ बड़े प्यारसे वह बोली—
“बात क्या है ? मुझे नहीं बताओगे ?”

जवाबमें वह लीलाकी गोदमें बालककी तरह लुढ़क पड़ा । रूमालसे मुँह ढककर शिशुकी तरह सिसक पड़ा—“बताऊँगा लीला ! आज सब-कुछ बताकर तुमसे माफी माँगूँगा !”

राजनकी इस प्रवृत्तिसे लीलाके दिलमें कुछ आश्चर्य, कुछ आशंका-के भाव उठ खड़े हुए । वह कुछ देर उसके सिरके बालोंमें अंगुलियाँ फिराती रही । राजन चुपचाप आँखें मूँदे पड़ा रहा ।

“अच्छा !” —लीला धीरेसे बोली—“अब कुछ खालो । बादमें सब-कुछ सुना देना । विद्यापीठसे अभी आ ही रही हूँ । मालूम हुआ, तुमने दिनका खाना भी नहीं खाया ! ... उठो-उठो ! इस तरह लेटे देखकर लोग क्या कहेंगे ? देखो, बहिनजी इधर ही आ रही हैं !”

बहिनजीका नाम सुनते ही वह तड़फड़ उसकी गोदसे शिर हटाकर उठ बैठा । बहिनजी कमरेमें आ गईं । राजनकी ओर क्षणभर देखकर बोलीं—“तुम्हारा चेहरा तो बड़ा उदास है राजन ?” फिर हाथसे कपार सहलाकर—“बुखार तो नहीं है !”

“जरा शिरमें दर्द है । और कुछ नहीं ।” —लीलाने सफाई पेश की ।

“तो इमीलिये कोई खाना छोड़ देगा ?” बहिनजी जरा उलहनेके स्वरमें बोलीं—“भर पेट खा लो ! अभी दर्द खत्म ! तुमने खबर तो दी होती राजन ? फुर्सत मिलती नहीं कि खुद आकर एक बार देख भी जाऊँ । तो यहीं भेज दूँ तुम्हारा खाना ?”

बहिनजी तख्तपोशपर बैठ गईं । बोलीं—“हाँ भई लीला, जाकर राजनका खाना यहीं ला दो ! मैं यहीं बैठी हूँ तब तक ।”

लीला खाना लाने चली गयी । पाँच मिनटमें ही परोसा लगाके ले भी आई । बहनजी तख्तपोशसे उठकर बोली—“दिनभरका भूखा है । जरा पूछ-पाछकर भरपेट खिला देना ! अच्छा ?”—कहकर वे स्वयं रसोई-घरको चली गईं ।

[२२]

भोजनके बाद लीला और राजन लारेन्स-गार्डनमें जा पहुँचे थे । एक पहाड़ीकी निर्जन भाडीमें दूबकी मुलायम दरीपर दोनों बैठे थे । राजन अपने असफल प्रणयकी कथा सुना रहा था और लीला चुपचाप एकटकसे उसे सुनती जा रही थी । आज राजनके दिलसे संकोच दूर हो चुका था, बाधा दूर हो चुकी थी । आज वह लीलासे कुछ भी छिपाना चाह नहीं रहा था । अपना सब-कुछ उसपर उत्सर्ग कर देना चाह रहा था ।

“लीला !”—अपनी कहानी सुनाकर गिड़गिड़ाकर वह बोला—“मुझे माफ न करोगी तुम ?”

“क्यों ?”—लीलाने सहज स्वरमें जवाब दिया—“माफी किस बातकी ?”

“तुम मुझे अपराधी नहीं मानती ?”

“क्यों ? अपराध किस बातका ?”

लीलाकी इस उदासीनतापर राजनको प्रसन्नता नहीं हुई । वह निराश हो गया । जैसे हृदयको एक धक्का लगा । वह सोचे हुए था कि यह-सब सुनकर लीला भीतरसे प्रसन्न होकर ऊपरसे नाराजी दिखायेगी । लेकिन उसका ढंग देखकर राजनको लगा जैसे लीला अब प्यार-वारके झमेलेसे दूर हट चुकी है । जेलसे मुक्त होनेके बादसे राजनके मन-को जिस स्नेह-जलसे वह सींचती आ रही है, उसमें आत्मीयताकी स्वच्छता है, प्रणयका सुवास नहीं । तो क्या अब वह लीलाको नहीं पा सकेगा ? अपने जीवन-सहचरके पदपर आसीनकर वह उसे कृतार्थ नहीं करेगी ? क्या वह लीलाके द्वारासे भी दुरदुराया ही जायेगा ? लेकिन इसमें दोष किसका है ? वह स्वयं भी तो लीला को दुरदुरा चुका है ? वह स्वयं भी तो द्वारपर आई हुई लक्ष्मीको ठुकरा चुका है ?

उसके हृदयने कहा—“राजन, अपराधी तू है ! अपराधका दण्ड यदि मिल रहा है, तो खुशीसे शिर-आँखोंपर रख ! अब जीवन-भर रो-रोकर अपने पापोंका प्रायश्चित्त कर ! अपने अपराधकी ग्लानिसे ही उसका हृदय विदीर्ण हो उठा । उसकी आँखोंमें ग्लानि-मिश्रित निराशा-के आँसू उभर आये ।

“तुम मुझे प्यार नहीं करतीं लीला ?”—गद्गद और भर्राये स्वरमें उसने लीलासे पूछा ।

“अपने दिलसे पूछ देखो !”

लीलाकी आँखोंसे भी सहसा मोतियोंके कुछ दाने बिखर पड़े ।

राजनसे अब रहा नहीं गया । इन आँसुओंके कुछ दानोंमें मानो स्वर्गकी शुभ्रता, त्रिलोकीका सौन्दर्य, और नारी-हृदयकी चिरन्तन महिमा उसे छिपी दिखाई दी । राजनका सारा विषाद पलमात्रमें धुलकर साफ हो गया । उसका सारा अन्तःकरण सौभाग्यके स्वर्गिक आह्लादसे भर उठा ।

“तुम मुझे प्यार करती हो लीला ! जरूर प्यार करती हो !”—कहते हुए वह लीलाके गलेसे लिपट गया—“तुम चुपचाप, छिपे-छिपे जो कुछ भी देती आ रही हो, मुझे अन्यत्र कहीं भी नहीं मिला लीला ! मैं तुम्हारा हूँ लीला ! जीवनभर तुम्हारा ही रहूँगा ! मुझे माफ कर दो लीला !”

“ऐसा नहीं करते !”—कटकर लीला उसके भुजपाशसे मुक्त हो गई । फिर सहसा उभरे आँसुओंको आँचलसे पोंछकर सहज स्वरमें वह बोली—“तुम मेरे हो, जीवनभर मेरे रहोगे, यह तुम्हारे कहने-न-कहनेपर निर्भर नहीं करता राजन ! क्या तुम आज ही मेरे बने हो और आज ही मैं तुम्हें पा सकी हूँ जो इस सफाईकी जरूरत ? तुम भूल कर रहे हो जी ! जब हम पहले-पहल बनारसमें मिले थे, मैं एक बालिका ही तो थी, केवल बारह वर्ष की । तब तुम किस रास्ते उस बालिकाके हृदयमें जा बैठे सो वह स्वयं भी नहीं जान पाई । उसका

बचपन बीता, जवानी आई, और अब वह यौवनकी अन्तिम पौढ़ीपर भी पैर रख चुकी है, लेकिन अपने हृदयकी उस थातीको क्षणमात्रके लिये भी वह दूर न कर सकी !”

राजन सुन रहा था । लीलाके सहज स्वर्गिक उद्गारोंसे मानो धरतीपर स्वर्ग उतर रहा था । इस क्षण ये दोनों ही धरतीके सामान्य जीव न थे ।

लीला कहती गई—“आरम्भके दिनोंमें मुझे अपने-आपपर विश्वास न था । सन्देह था कि मेरी निधि मुझसे छिन न जाय ? इसीसे तुमसे कई बार विवाहका आग्रह भी किया । लेकिन अब ? अब किसका सामर्थ्य है कि मेरे हृदयकी थातीको मुझसे छीन ले ! फिर इसमें अपराध कैसा, और क्षमा कैसी ?”

“सच लीला ?”

“तो झूठ !”

“लीला !”—राजनने इस बार गम्भीर स्वरमें कहा—“यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि स्त्रियाँ इन अपराधोंको जल्द क्षमा नहीं करतीं । ईर्ष्याकी आगमें वे जला करती हैं । सब-कुछ सुनकर भी तुम्हें राधासे घृणा नहीं हुई ?”

“होता होगा । मैं स्वयं भी अनुभव कर चुकी हूँ यह-सब । लेकिन लीला तो अब वह लीला नहीं रही ? मैं डींग नहीं हाँकती राजन, लेकिन अबसर यदि आ सका, तो बता दूँगी कि राधा मेरे लिये क्या है ।”—कहते-कहते उसके चेहरेपर एक ऐसी आभा दमक उठी जो इस दुनियाकी न थी ।

राजन आँखें फैलाये उसे देखता रहा ।

“राजन !”—लीला फिर बोली—“राधा मेरे प्रियकी प्रिय है । तुम विश्वास रखो कि लीला उससे सिवा प्रेमके घृणा नहीं कर सकती !”
राजनका दिल भर उठा । इस तेजस्वी नारीके तेजवान चरणोंमें झुककर अपनेको पवित्र करनेकी आकांक्षा उसकी प्रबल हो उठी । वह

उसके रँर तो न छू सका, लेकिन हृदय उसका सहसा श्रद्धासे नत हो गया। मन-ही-मन वह बोला—“नारी ! तेरे उस पहलूको कोटि-कोटि प्रणाम, जो लीलामें प्रगट होकर इस समय धरापर स्वर्गकी वर्षा कर रहा है !”

राजन चुपचाप अतृप्त आँखोंसे लीलाके महिमामय मुखको निहारता रहा।

“राजन !”—लीलाने फिर कहा—“यह क्षमा और क्षमा-प्रार्थनाका अभिनय वहाँ होता है जहाँ ऊपरसे एकतामें बन्धकर भी भीतरसे दुरावकी दीवार खड़ी होती है। मैं झूठ नहीं कह रही हूँ, कि अपने-सहित अपने प्रियतमको भी मैं समाजपर निछावर कर चुकी हूँ। अब तो वह अमर हो चुका है। समाजकी इस अमर निधिको कोई अमर बनकर ही मुझसे छीन सकती है। अन्यथा नहीं। यह तो विश्वास ही रखो राजन !”

राजन आश्चर्यभरे कानोंसे लीलाके शब्द सुनता जा रहा था। अब उसने आश्चर्यभरे स्वरमें पूछा—“तुमने कहाँ सीखा यह-सब लीला ?”

“तुमसे राजन ! केवलमात्र तुमसे !” लीलाने बड़ी दृढतासे निर्धोक जवाब दिया—“इस जीवनका जो-कुछ भी है, वह सब तुम्हारा है।” फिर सहसा भरी आँखोंसे भरे स्वरमें—“मेरे हृदयके देवता ! हृदयमें बैठे-बैठे तुमने जो भी कहा वही किया मैंने, जो भी सिखाया वही सीखा मैंने। जब बनारससे भागकर तुम्हारे साथ आ रही थी, कितनी व्याकुल थी मैं विवाहके लिये ? तुमने ही तो कहा था—‘लीला, मैं तुम्हें वहाँ लिये जा रहा हूँ जहाँ रहकर तुम नई दृष्टि और नया आलोक प्राप्त करोगी। और तब विवाहका यह भूत भी गर्दनसे उतर भागेगा। और तुम्हारी यह बेचैनी भी मिट जायगी।’ सो, तुम्हारा वह कहना कितना सच था राजन ?”

“तो विवाह नहीं करोगी अब ?”—राजनने जरा घबड़ाये स्वरमें उससे पूछा।

लीला विहँस पड़ी—“लगता है अब वह भूत तुम्हारी गर्दन पर चढ़ बैठा है।”

“यह तो प्रकृतिकी पुकार है लीला ! कबतक उपेक्षा की जा सकती है इसकी ?”

“उपेक्षा की जा सकती है यदि सामने कोई महान लक्ष्य मौजूद हो।”

राजन कुछ अप्रतिभ हो गया। जीवनका सारा लक्ष्य ही अबूरा पड़ा था। विवाह तो परम लक्ष्य होता है लक्ष्य-हीन व्यक्तिका। उसके तो जीवनका कुछ लक्ष्य है, जीवनका कोई सत्य है जिसे प्राप्त किये बिना इन-सब सामान्य बातोंसे उलझना सिवा आत्म-वचनाके और है क्या ? लेकिन फिर भी इस समय वैवाहिक जीवनकी आकांक्षासे वह इस प्रकार अभिभूत हो चुका था कि निराशाके स्वरमें वह बोला—“तुम ठीक कह रही हो लीला ! तो इस भूतको अब भगा ही देना चाहिये ?”

लीलाने उसके चहरेपर एकाएक निराशाकी उभरी हुई छायाको लक्ष्य किया। वह पिघलकर बोली—“नहीं, अब भगानेकी जरूरत नहीं। यह प्रश्न तो वहाँ उपस्थित होता है जहाँ नर-नारीके लक्ष्यमें एकता नहीं होती।”

राजन आश्वस्त हुआ। लीलाका हाथ पकड़कर उल्लासभरे स्वरमें बोला—“तो सच लीला ? विवाह करोगी न मुझसे ?”

लीला हँस पड़ी—“देखती हूँ यह भूत भगानेसे भी भागेगा नहीं। फिर वह विश्वासदायक स्वरमें बोली—“तुम इतने उतावले क्यों हो रहे हो ? जो हाथ सदा तुम्हारे हाथमें है उसे पानेके लिये इस प्रकार व्याकुल क्यों हो रहे हो ? तो चलो, आज दादाजीसे कह सुनायें और कल ही हम-दोनों दोपायेसे चौपाये बन जायें।”—कहकर वह उठ खड़ी हुई—“अच्छा, अब चलो, काफी देर हो चुकी। बहनजी भी परेशान होंगी। काम भी बहुत बाकी है। कल अखबार भी निकालना है न ?”

राजन भी उठ खड़ा हुआ। हर्षके प्रतिरेकमें भट उसने लीलाके दोनों हाथ पकड़ लिये। उन्हें चूम भी लिया।

“अब संकोच काहेका ?”—लीला स्थिरभावसे जरा मुखको आगे करके मुस्कुराते हुए बोली—“लो ! इन ओंठोंको भी चूम लो !” कहकर खिलखिलाकर हँस पड़ी ।

“अच्छा, अब हो गया !” राजनने उल्लसित होकर कहा—“अब चलो !”

अब दोनों-जने पहाड़ीके पौढ़ीनुमे पथसे नीचे उतर चले । दिलमें प्रणयकी मीठी भावना, अंगोंमें अँगड़ाई, और पैरोंमें मीठा आलस्य लिये वे धीरे-धीरे ऊपरसे उतर रहे थे । लारेन्स-उपवनकी सड़कें चाँदनीसे धुली थीं । हाथ-में-हाथ डालकर कई युगल-जोड़ियाँ उनपर चिलक रही थीं, और आज राजनका दिल भी किलक रहा था । विना किसी बाधा-संकोचके वह लीलाके हाथ-में-हाथ डाले शिर उठाकर उन सड़कोंसे चल पड़ा ।

“अच्छा ली ना !”—राजनने चलते-चलते ही पूछा—“पं० रमाशंकर-जीका क्या हाल है आजकल ?”

“ओ !”—लीला किसी भूली हुई बातको मानो याद करती हुई बोली, “सो तो बताना भूल ही गई तुमसे ! आजकल बड़े मजेमें हैं । लेकिन बहुत बूढ़े हो चले हैं । कभी-कभी सोचती हूँ उन्हें भी यहीं बुला लूँ । अपनी नजरोंके सामने रहें तो ठीक रहेगा ।”

“चिट्ठी-पत्री होती है उनसे ?”

“वर्षोंसे हो रही है । तुम्हें बताया नहीं था । इस बीच कई बार मैं बनारस भी हो आई हूँ । जब-तब जाके उनके आश्रमका प्रबन्ध भी कर आती हूँ ।”

“अच्छा !”—राजन प्रसन्नताभरे आश्चर्यके स्वरमें बोला—“तो समझौता भी हो चुका तुम्हारा ?”

“होता क्यों नहीं ? आखिर पिता पुत्रीसे और पुत्री पितासे कब-तक बिलग रह सकते ? पिताजी उस समय जेलसे आये ही थे जब मैंने पहली बार चिट्ठी दी थी । अपने चले आनेके सारे कारण स्पष्ट

कर दिये थे । उन्हें सिर्फ साल ही भरकी सजा हुई थी । समाज-कार्यालय-में वे आये थे । मुझे अकेलेमें मिलकर बोले—“बिटिया, तुमने सचमुच मुझे पतित होनेसे बचा लिया । जाने किस नारकीय नशेमें मैं अन्धा हो चला था ।’ पिताजी रो पड़े । रोते-रोते ही बोले—‘मुझे माफ कर दिया न बेटी ?’ मुझे भी रुलाई आ गई । मैं बोली—‘आपकी बिटियामें वैसी शक्ति कहाँ कि वह आपको माफी देनेका साहस करे ! पिताजी, इस जीवन-में आपके उपकारोंको कभी भुला भी सकूँगी ?’ वे बोले—‘सचमुच बिटिया, तुम्हारे मुखसे ‘पिताजी’ संबोधन सुनकर अपने-आपसे ईर्ष्या होने लगी है । यों तो तुम स्वतन्त्र हो । जहाँ दिल करे रहो । लेकिन इतना अनुरोध अवश्य करूँगा कि इस बूढ़ेको भुला मत देना । रमाशकरका घर तब भी तुम्हारा ही था, अब भी तुम्हारा ही है । जल्दी-जल्दी खोज-खबर लेना भूलना मत बिटिया !’ कहकर बिलखकर रो पड़े । उस दिनसे बराबर चिट्ठी-पत्री हो रही है । जब-तब स्वयं जाकर देख-भाल आती हूँ । चलो न कार्यालय ! वहीं उनकी चिट्ठियाँ दिखाऊँगी तुम्हें ।”

“चलो !”—राजनने खुश होकर कहा—“यह भी अच्छा ही हुआ !”

इस प्रकार वे दोनों मानो हृदयके आकाशमें उड़ते हुए बहुत-कुछ कहते-सुनते एक समय समाज-कार्यालयमें आ पहुँचे । राजन भट ‘समाज’ के प्रूफ पढ़नेमें लग पड़ा, और लीला कुछ देर बाद बहनजीके पाससे लौटकर ‘मेकअप-करेक्शन’ में लग पड़ी ।



वहाँ धुने कपासोंके ढेर-जैसे बादलोंके झुंड क्षितिजके छोरको छूते, आकाशको चूमते । गरीबोंकी अभिलाषाओं-जैसे पलमें बनकर पलमें बिगड़ जाते । देवदासके घने पत्र-गुच्छकोंसे मोतियोंके करोड़ों शुभ्र दाने बना और बिखरा करते । आपसमें धरती और आकाश आँख-मिचीनी खेलते । भर-भरकर बहते भरनोंकी तालपर प्रकृति अपना कल-नाद सुनाती । और प्रकृति-पटरानी पर्वतकी चोटियोंपर देवदास और वनके हरे अवगुंठनोंसे समस्त विश्वको निहारती रहती ।

वैरिस्टर काशीनाथ और राधा इन सब दृश्योंको आज दिनोंसे देखते आ रहे थे । डलहौजीके शैल-शिखरपर एक आलीशान बंगलेमें उनका निवास था । समाजके अन्य भाग्यवानोंकी तरह ये दोनों भी मैदानी क्षेत्रों की उमससे आकुल होकर वहाँ तन-मनको हरा बनाने आये थे । संध्याको ठंडी और गरम सड़क की सैर; रंग बिरंगी आधुनिक पोशाकोंमें सजी तितलियोंकी टोलियाँ; तरह-तरहके मेकअप और भाँति-भाँतिके शृंगार; क्लब, होटल और सिनेमाका रसभरा संसार ! और स्वर्ग कहते किसे हैं ?

आजका दिन साफ था । आज प्रातःसे ही भगवान सूर्य अपनी न्यामतें बिखेर रहे थे । धूपमें कुर्सी डाले काशीनाथ किसी अंग्रेजी उपन्यासको पढ़ रहा था और राधा सुदूर नीचे राबी और चक्की नदियों की टेढ़ी-मेढ़ी धाराएँ देख रही थी । उनपर दोपहरी सूर्यकी किरणें पड़-पड़कर चाँदीकी चकाचौंध पैदा कर रही थीं । राधा कभी उन्हें देखती, कभी सम-विषम पर्वत-शिखरोंपर दूर-दूर बसे छोटे गाँवोंको; सपंकी भाँति मानो रेंगते बयारी-नुमा खेतोंको; हरी-भरी भाड़ियोंको ।

“प्रकृतिकी अद्भुत करामात !”—एक समय राधा बोली—“ये चोटियाँ क्या हैं मानो पृथ्वीकी उभरी शिरायें हैं; मानो पृथ्वी सिकुड़-

कर बंडल-सी बन गई है; और इसीसे दूरी सामीप्यमें और सामीप्य दूरीमें परिणत हो चला है। देखिये तो भैया, वह रात्रीकी धारा ! तीस-बत्तीस मील दूर कहते हैं। लेकिन लगता है जैसे दो मीलसे अधिक दूर नहीं ! और पहाड़ोंपर बसे उन गांवड़ोंको देखिये, एक साथ दर्जनोंको देख लीजिये ! लगता है सब पास-पास बसे हों, लेकिन हैं वे दूर-दूर ! और उन बर्फसे ढकी चोटियोंको देखिये। कहते हैं वे दस-बारह दिनके रास्तेपर हैं, पर लगते हैं तीन-चार मीलसे अधिक दूर नहीं ! 'अद्भुत करामात है माँ प्रकृति तेरी ! तेरी महिमाको असंख्य नमस्कार !'

काशीनाथ मुस्कुरा पड़ा। बोला—“तुम तो आजकल बिल्कुल कविता बनी हुई हो राधा ! हर बातमें, हर सांसमें कविताकी रगिनियाँ।” फिर कलाईकी ओर देखकर—“अच्छा, अब कविता छोड़ो। एक बज गया। दिन साफ है। क्या याद नहीं कलके ‘की’ की ? कल कलबमें रायबहादुर दूनीचंदने ‘इन्वाइट’ (निमंत्रित) किया था न ?”

इतनेमें फोनकी रिंग बजी। राधाने दौड़कर ‘रिसीवर’ उठाया। कान और मुँहसे भिड़ाये हँसती - मुस्कुराती पाँच-सात मिनटतक दूरबोल-वार्तालापमें वह लगी रही।

“क्या है राधा ?”—काशीनाथने पूछा।

“वही जो अभी आपने याद दिलायी थी। रायबहादुर कह रहे हैं जल्दी करनेको। कुछ लोग इकट्ठे भी हो चले हैं।”

काशीनाथ चट कुर्सीसे उठ खड़ा हुआ। अपने कमरेमें चला गया। राधा भी अपने कमरेमें जाकर ड्रेसिंग टेबुलपर बैठ गई।

राधा अब वह राधा न थी। यद्यपि उसे पूरा पता न था कि यौवन उससे विदा माँग रहा है, किन्तु अंगोंके क्रमिक ढीलापन और उरोजोंकी उतराईने उसे आतंकित करना आरंभ कर दिया था। लेकिन फिर भी युवत्वके नैसर्गिक सौन्दर्यको बलपूर्वक रोकनेमें वह लगी ही रहती। यों तो सुन्दरता उसकी थी ही बेजोड़, तिसपर साज-शृंगार उसमें चार-चाँद लगा देती।

केशोंका विन्यास ठीक था। मुखपर क्रीम, पाउडर और पफके प्रयोगसे उसका गोरा चेहरा और भी गोरा बन गया। क्यूटेक्सकी पालिसने नखोंमें लानी भर दी। लिपस्टिककी लाली ओठोंपर हावी हो चली। सिन्ककी पीली साड़ीपर पीला ब्लाउज। हाथमें हेंगिंग मनीवेग। पैरोंमें ऊँची एड़ीकी चप्पल।

बाहर वह निकली। काशीनाथ भी निकला। अपने पालतू 'बुलडाँग' की जंजीर पकड़े वह राधाकी बगनसे चलने लगा।

"अगर वक्त मिला तो 'पंचपूले' भी चलेंगे आज!"—काशीनाथने कहा।

"जरूर!"—राधा जैसे खिलकर बोली—"जरूर चलेंगे। वही तो एक जगह है डलहौजीमें!"

"अच्छा चलो! वह तो योगियोंकी जगह है राधा! आजकल ऐसी ही जगहें पसन्द आती हैं तुम्हें?"

"और लोग भी तो पसन्द करते हैं उसे? क्या सब-के-सब योगी ही हैं?"

इसके बाद इधर-उधरकी बातें करते बगरोटेकी चढ़ाई चढ़ते एक समय रायबहादुरके प्रासादमें दोनों पहुँच गये। रायबहादुरका सारा परिवार इस सम्मानित अतिथिके सत्कारमें जुट पड़ा। दूसरे मेहमानोंने भी खड़े होकर स्वागत किया। हस्तान्दोलनकर अपनेको कृत-कृत्य किया। फिर सभी अपनी जगह बैठ गये। रायबहादुरकी कन्या मालती राधाके बगलकी कुर्सीपर आ बैठी। कोठीके कम्पाउण्डमें ही एक किनारे देवदारु-निकुञ्जोंके नीचे मेजें बिछी थीं। वहाँसे बाहरका सारा दृश्य दीख रहा था। दूर-दूर कोठियोंकी लाल रंगसे रंगी टीनकी छतें बड़ी ही सुन्दर लग रही थीं।

मेजोंपर सफेद चादरें बिछी थीं। बर्दीबन्द खानसामे प्लेटें परोस रहे थे। पूरा पश्चिमी तरीका था। अतिथियोंकी जाँचें भी सफेद तौलियोंसे ठकी थीं, ताकि भोज्य-पदार्थके किसी चीजके संपर्कसे कपड़े

खराब न हों। छुरी-कांटोंसे अब मुखमें आहुनियाँ दी जाने लगीं। मुख्य अतिथि थे मिस्टर काशीनाथ खन्ना और मिम राधारानी। शेष दो-तीन उनके सम्मानमें आमन्त्रित हुए थे। अब मुँहकी मशीन तेज होनेके साथ वाणी भी वाचाल बन चली थी। देश-विदेशकी राजनीति, उद्योग-धन्धोंकी गिरी दशा, संसारके बाजारोंकी मन्दी, मजदूरोंकी हड़ताल आदिकी चर्चा भी छिड़ चुकी थी।

भोजन समाप्त हो चुका। मेजें साफ हो गईं। अब चाय-काँफी आई। अभी चाय-काँफी चल ही रही थी कि तीन और सफेदपोश वहाँ आ धमके। इन विन-वुलाये मेहमानोंपर रायबहादुरजी प्रसन्न नहीं ही हुए। किन्तु कुर्सीसे भट उठ खड़े होकर स्वरमें प्रसन्नताके घड़े उड़ेलते हुए बोले—“आइये ! आइये ! पधारिये ! बहुत-दिन-बाद दर्शन हुए पंडितजी महाराज ! अहोभाग हमारा ! यह कुटिया आज पवित्र हो गई हमारी !”

भट अन्दरसे कुछ और कुर्सीयाँ आ गईं। तीनों-जने बैठ गये। रायबहादुर भी बैठ गये।

“कहिये !”—“रायबहादुर डलहौजी-कांग्रेस-कमेटीके जेनरल सेक्रेटरी पं० धर्मनन्दजीसे हाथ जोड़कर बोले—“क्या हुक्म है इस दासको ?”

पं० धर्मनन्दजीके चश्मा-चुस्त चेहरेपर गौरवकी आभा निखर आई। मुस्कुराकर बोले—“हुक्म बादमें करूँगा। पहले परिचय करा दूँ।.....आप हैं आर्य-समाजके उपदेशक पं० धर्मवीरजी वेदालंकार। लाहौरसे पधारे हैं। और आप हैं यहाके समाज-मंदिरके सेक्रेटरी महाशे करमचन्दजी।”

रायबहादुरने सबको नमस्कार किया और बदलेमें सबके नमस्कार ग्रहण किये।

पं० धर्मनन्दजी फिर बोले—“आप तो जानते ही हैं रायबहादुर-साहब, कि कोई भी सामाजिक कार्य बगैर रईसोंकी मददके पूरा नहीं

हो पाता । इसके बाद ये लोग खुद अरज करेंगे आपकी खिदमतमें ।” फिर जेब-घड़ी निकाल उसपर एक बार आंखें दौड़ाकर—“अभी वक्त है नहीं कि कुछ देर और बैठूँ आाकी सेवामें । ‘चेरिंग-क्रास’ में एक मीटिंग है आज !” फिर दोनों हाथ जोड़कर—“इजाजत है न अब ?”

“अजी साहब !”—रायबहादुर बोले—“यह भी कोई बात है कि अभी आये, और अभी चल दिये ? बारिसमें भीग तो नहीं रहे ? यह भी कोई तरीका है ? पहले चाय-पानी, नाश्ता-वास्ता, कुछ बात-चीत । उसके बाद फिर मीटिंग तो है ही । दस मिनट लेट ही सही आज ?”

“आप तो जानते ही हैं रायबहादुर-साहब,”—पंडितजीने हाथ जोड़कर जवाब दिया—“कि, मैं चाय-वायसे परहेज रखता हूँ ।”

“हां हां ! सो तो मैं भूल ही गया था !”—रायबहादुर जरा अदबसे आंखें फैलाकर बोले—“आप तो बड़े महात्मा-पुरुष हैं जी ! बड़े सदाचारी हैं !” फिर अन्य सभी लोगोंको उद्देशकर बोले—“आप-लोग नहीं जानते होंगे इन्हें । हमारे पंडितजी हर नशेकी चीजसे परहेज रखते हैं । बिल्कुल सादी जिन्दगी है ! सन्तोंकी जिन्दगी है जनाब ! सारी गीता जवानपर है ! डलहौजीका बच्चा-बच्चा जानता है, इज्जत करता है ! आप हमारे समाजके रतन हैं, रतन !”

“जरूर ! जरूर !”—अन्य सभी व्यक्तियोंने शिर हिलाकर रायबहादुरका समर्थन किया ।

पंडितजी चलनेको उत्सुक हो उठे । रायबहादुरने रोककर कहा—“जरा एक मिनट ! पहचान तो हो जाय आपसमें...ये हैं लाहौरके बहुत बड़े बैरिस्टर मि० काशीनाथ खन्ना...आप है उनकी बहन मिस राधारानी । इस साल वकालतकी तैयारी कर रही हैं ।...आप हैं रायसाहेब मेहराजी । जानते ही होंगे इन्हें ।...और आप हैं डाक्टर रामचन्दर बाली ।”

पंडितजीने सबके प्रति हाथ जोड़े, और दूसरोंने उनके प्रति ।

“अच्छा पंडितजी !”—रायबहादुरने पुनः आप्रह किया—“कुछ

दूध-दाध, फल-फ़ूट ?”

“नहीं ! अभी तो वक्त नहीं । फिर कभी !”—कहकर पंडितजी उठ खड़े हुए । पुनः एक बार सबको सम्मिलित नमस्कारकर वहाँसे विदा हो पड़े ।

“अच्छा महाशेजी !”—अब रायबहादुरजी वेदालंकारजीसे बोले—“क्या पीयेंगे ? चाय या कॉफी ?”

“सब-कुछ चलता है बाबूजी !”—वेदालंकारजीने मुस्कराकर जवाब दिया ।

“सब-कुछ चलना है ? तब ठीक है । यही तो चाहिये ! यही तो जिंदगीका तरीका है !...अच्छा, क्या तख्तलुस फरमाया आपने ?... वेदालंकारजी ! पंडित धरमवीर जी वेदालंकार !...मैं जानता हूँ आपका नाम । आपकी विदुतासे भला कौन परचत नहीं ?...आपके परचारके बारेमें बराबर पढ़ा करता हूँ । हमारे पास आरिया गजट बराबर आया करता है ।”

और वेदालंकारजीने बड़ी नम्रतासे जवाब दिया—“यह-सब आप बड़ोंकी कृपा है ।”

“आपने बड़ी किर्पा की जी ! पधारकर हमारी कुटिया पबित्तर कर दी ।” फिर जग आहिस्तेसे—“मगर एक बात ! जब आये तो अकेले चले आते । हम क्या आपसे बाहर हैं ? पंडित धरमानन्दको साथ लानेकी जरूरत तो न थी ?...क्यों जी, महाशे करमचन्द जी ? क्या मैं झूठ कह रहा हूँ ? आदमी तो अच्छा नहीं ? बड़ा खतरनाक है ! क्यों, क्या ख्याल है आपका ?”

वेदालंकारजी चुप रहे । महाशे करमचन्दजी शिर खुजलाते हुए बोले—“हाँ ! बात आपकी सही है । है कुछ ऐसा-ही सा ।”

अब महाशे करमचन्द और वेदालंकारजी भी चाय-पानीसे निबट चुके । वेदालंकारजीने कुछ कहनेकी तैयारी करते देख रायबहादुर घड़ीकी ओर देखकर बोले—“मैं सब-कुछ सुनूँगा । बेफिक्रीसे सुनूँगा ।”

फिर उन दोनोंको एकान्तमें ले जाकर—“अभी एक मीटिंगमें जा रहा हूँ। तकलीफ तो जरूर हुई आपको। लेकिन क्या बताऊँ, पंडित धरमानंद हैं तो कांग्रेसके जनरल सेक्रेटरी, पर इतनी भी समझ नहीं कि कहीं जानेसे पहले वक्ता भी मुकर्रर कर लें। खुद भी तकलीफ उठाई, आप लोगोंको भी तकलीफ दी। अच्छा, आप कल किसी वक्त तशरीफ फरमायें ! मैं कोठीपर ही होऊँगा ! समझे जी, वेदालंकारजी ?”

वेदालंकारजी जरा निराश आँखोंसे चुपचाप ताकते रहे।

“कोई बात नहीं वेदालंकारजी !”—रायवहादुरने ढाँड़स बँधाया—“ऐसा तो होता ही है। धरमके काममें जरा तकलीफ तो करनी ही पड़ती है।” फिर जरा धीरे से—“हाँ, एक बात ! देखिये, यह सब बात पंडित धरमानंदसे नहीं बताइयेगा ! नहीं तो वह बना काम भी दिगाड़ देगा ! समझे ?”

वेदालंकार और महाशेजी विदा हो गये। रायवहादुर फिर कुर्सी-पर आ बैठे। डाक्टरसाहेबको एक रोगी देखना था। फीसके पैसे मारे जाते। अतः वे भी चल पड़े। रायसाहेब मेहराका जाना भी लाजिमी था। उनकी रायसाहेबानी बीमार थीं। अब बच गये केवल घरवालों के अतिरिक्त काशीनाथ और राधारानी।

“क्या बताऊँ खन्ना-साहेब !”—अब रायवहादुर अपनी परेशानी प्रगट करते हुए बोले—“जब देखो तब अंदा ! कोई कांग्रेसकी तरफ-से आता है, तो कोई हिन्दू-महासभाकी ओरसे। फिर ये अरिया-समाजी ही क्यों पीछे रहें ? इन पंडितों और परचारकोंके मारे नाकमें दम आ गया है जी ! जब बिपक जायेंगे, कुछ लेके ही छोड़ेंगे। अगर सामने तारीफ न करूँ, खातिर न करूँ, तो पब्लिक में जाके बदनाम करेंगे। डरना ही पड़ता है, खातिर करनी ही पड़ती है।... और वह जो पंडित आया था गांधी टोपी और धोती पहने ! पक्का शैतान और पक्का बुद्धू भी है। जरा सोचिये तो ? ये ही बुद्धू मुल्कपर हुकूमत करेंगे ? इन्होके चिल्ल-पों मचानेसे अंग्रेज-लोग यहाँसे चले जायेंगे ?”—

कहते-कहते वे हाँफने लगे ।

“नहीं जी !”—काशीनाथने बड़ी दृढ़तासे जवाब दिया—
“अँग्रेज यहाँसे नहीं जाते ! लेकिन ‘शो’ तो कुछ चाहिये ही । यह तो
दुकानदारी है जनाब । खाने-कमानेका एक जरिया । कांग्रेस भी खा-कमा
रही है, देखा-देखी दूसरी जमातें भी ।”

सुनकर रायबहादुरकी मानो सारी थकावट मिट गई ।

“ठीक कहा आपने खन्ना-साहेब !”—स्वरमें प्रसन्नताके घड़े
उड़ेलकर वे बोले—“बिल्कुल ठीक कहा ! ये सभी भुवखड़ हैं, सभी खाऊ-
बजाऊ हैं ! और इन्हींमेंसे कुछ गुंडे हम शरीफोंकी जेब कतरनेपर तुले
हुए हैं ! एक तो दुनियाका बाजार मन्दा ! कल-कारखानोंका बुरा हाल !
तिसपर मजदूरोंको भड़का देंगे ! हड़ताल करवा देंगे !... कहिये
खन्नासाहेब, अगर मुनाफा भी मजदूरोंमें ही बाँट दें, तो खुद क्या
खायें ? क्या खुद भूखों मरें ?”

“इसमें भी वही बात है जनाब !”—काशीनाथने पुनः जताया—
“अपनी लीडरीकी धाक जमाना और खाने-पीनेका जरिया कायम
रखना इसके सिवा और कुछ नहीं है रायबहादुर !”

“बस बस, खन्नासाहेब ! आपके मुँहमें घी-शक्कर ! अगर सर-
कार बहादुर हम शरीफोंकी पीठपर न हो, तो ये गुंडे हमें दिनदहाड़े
लूट लें ! कौड़ीका कंगाल बना दें !” फिर जरा आहिस्तेसे—“इसीसे
तो जब-तब कुछ बड़े लीडरोंको तोहफे भी पेश करते हैं, ताकि हम शरीफों
की जान बची रहे । इसीसे तो गांधीजीको इतना दान देते हैं ।...
लेकिन देखियेगा, यह सब किसीसे कहियेगा मत !”

“नहीं, कहूँगा क्यों ? मैं सब-कुछ जानता हूँ । आखिर वर्धा बगैरह-
का इतना बड़ा ‘शो’ बगैर पैसे-से ही तो नहीं चल रहा ? और पैसा
कोई आसमानसे तो नहीं टपक पड़ता !”

अब बात-चीतका रुख राष्ट्रीयसे अन्तर्राष्ट्रीय विषयपर आ
गया ।

“आपने रेडियो तो सुनी ही होगी।”—रायबहादुर बोले—“कोई ताज्जुब नहीं कि दूसरे बड़े जंग के बादल किसी भी वक्त बरस पड़ें। लेकिन एक बात समझमें नहीं आती खन्नासाहेब, कि इस हुरामी हिटलरको क्या सूझ गई कि ब्रिटेनके बजाय रूससे समझौता कर बैठा? चाहिये तो यह था कि ब्रिटेन और जर्मनी मिलकर रूसका खात्मा कर देते। दुनियाके शरीफोंके सिरसे एक बड़ी बला टल जाती। इस कमीने रूसकी देखा-देखी दुनियाके सारे मजदूर शोख बनते जा रहे हैं। दुनियाके सारे भुक्खड़ोंमें अकड़ आ गई है।”

“यह तो पोलिटिक्स है जनाब! यह सब चलता ही रहता है। नहीं तो कौन किसका दोस्त और कौन किसका दुश्मन? पता नहीं अँट किस-करवट कब बैठ जाय?”

“क्यों खन्नासाहेब?”—रायबहादुर धीरेसे बोले—“अगर जंग छिड़ ही गयी तो जीत किसकी होगी? अंग्रेज जीतेंगे या जर्मन? क्या खयाल है आपका?”

“कहा कुछ नहीं जा सकता। कोई भी जीते, हमें तो गुलाम बनके ही रहना है?”

“हाँ! सो तो ठीक है! ठीक कह रहे हैं आप!.....अच्छा, सुना है कि हिटलर वेदको बहुत मानता है? अपनेको आरिया कहता है?”

“हाँ, कहता है। लेकिन इससे क्या? हिन्दुस्तानको वह थोड़े ही आजाद कर देगा?”

रायबहादुर जरा देर चुन रहे। फिर बोले—“अंग्रेज ही जीतें तो ठीक। जाना-पिचाना मालिक है। दूसरे जाने कैसे हों?”

“अच्छा!”—काशीनाथने अब कलाईकी ओर देखकर कहा—“अब इजाजत हो! किनी दिन इस गरीबके घर भी तशरीफ फरमायें। आज गानारानीकी तबीयत है पंचपूजे चलनेकी। अभी वक्त है।”

“हाँ हाँ! जरूर जरूर!”—रायबहादुर गर्दन हिलाते हुए बोले—“बड़ी मेहरबानीकी आपने। बड़ी खुश-किशमती होगी आपके यहाँ जाकर

अगर...। अच्छा, तो पंचपूले जायेंगे आप-लोग ?” फिर राधाकी ओर मुँकुराती आँखोंसे देखकर—“अगर राधाराजीकी तबीयत है तो जरूर जायें ! चलता तो मैं भी साथ, लेकिन आज एक दोस्तके घर...उनकी बीबी बीमार है जरा ।”

“नहीं, तकरीफ करने की जरूरत नहीं । हम खुद चले जायेंगे ।”

“कहिये तो भला ! आप-दोनों की सोहबतमें तकरीफ ?” फिर अपनी तरफ़ी कन्या—“हाँ मालो ! चली जाओ न खन्नासाहेबके साथ ! कर आओ न पंचपूलेकी सैर !”

मालतीने कहा—“अच्छा !” और उठकर वह अपने कमरेमें चली गई ।

“अच्छा खन्नासाहेब ! जरा एक मिनट और तकलीफ़ फरमायें । जरा इधर भी एक मिनट ।”—रहकर वे काशीनाथको अपने बैठकखानेके भीतर ले गये । राधा भी साथ गई ।

बैठकखानेमें प्रविष्ट होते ही दोनों मुग्ध हो गये ! सामने ही दीवारसे सटाकर रखा सम्राट् पंचमजार्जका एक विशाल तैल-चित्र, सुनहले चौड़े फ्रेममें जड़ा हुआ । दोनों बगल की दीवारोंसे सटाकर स्टेडसे जड़े आदमकदके दो बड़े आइने, ठीक आमने-सामने । नीचे गुलगुले कालीनोंसे बिछा फरश और उसपर जहाँ-तहाँ सजाकर बिछे हुए बाघके शिरदार चमड़े, जिनकी तरेरी आँखोंसे मानो किरणें तब भी बिखर रही थीं । दो-दो फुटके अन्तरपर हिरन और बारहसिंगे आदि के शिँशे सजी हुई दीवारें और दीवारोंके चारों कोने मृत्त भातूके शिँशे सजे हुए । और बीच-बीचमें विश्वविश्रुत कलाकारोंके बताये हुए चित्रों की सजावट भी कम आकर्षक न थी ।

मेहमानोंको अपने मेजवान की सुखिनी तारीफ़ करनी ही पड़ी । अब एक शिँशे फोटो सामने आकर लगी जहाँ रह गया । वह भारतके तत्कालीन वायसरायका फोटो था । बड़े यत्नमें सजाकर रखा हुआ था । वायसराय और वायसरानीके चरणोंमें रायबहादुर का सा सा विचार बैठा हुआ आमनी तय्यार था इधरा तर रहा था । उस फोटोके नीचे

सबके नामके अतिरिक्त यह भी लिखा था कि हिज एक्सेलेन्सी वाय-सरायने अमुक तारीखको इस परिवारमें पधारकर सबको कृतार्थ किया था। इसीके फलस्वरूप उसी वर्ष लाला दूनीचंदजी रायबहादुर दूनीचंदजी बने थे।

उस फोटोके समक्ष खड़े होकर बड़े गर्वसे रायबहादुरजी बोले—
“हुजूर वाय-सरायने दावत देनेमें मेरा पूरा एक लाख खर्च आया था खन्ना-साहेब ! देख कर बहुतेरोंके दिलोंमें डाहकी आग सुनग पड़ी थी। अजी क्या कहें खन्नासाहेब, अपनी हिन्दू कीम अपने कौममें किसीकी बरकत देख भी तो नहीं सकती ! इसीसे तो यह हाल है हम-लोगोंका ! देखिये मुसलमानोंमें जाकर। कितना एका है उनमें ! सभी एक-दूसरेपर मरते हैं। एक-दूसरेकी बरकतसे खुश होते हैं !”

अबतक मानती भी सज-धजकर आ गई थी। काशीनाथने एक बार मुस्क्राती आँखोंसे उसे देखा। घड़ीकी ओर देखा। फिर रायबहादुरसे हाथ जोड़कर बोला—“अब इजाजत हो !”

“हाँ हाँ, जरूर ! अच्छा बेटी मालो ! हम-लोग शामको बड़े डाकखानेपर फिर मिलेंगे।”

तीनों-जने चल पड़े। रायबहादुर अपनी पत्नीके साथ फाटकतक आकर उन्हें अरियात गये। तीनों-जनें काफी दूर बढ़ गये। रायबहादुर पत्नीके साथ खड़े-खड़े उन्हें देखते रहे। फिर पत्नीसे बोले—“जोड़ी तो बुरी नहीं जी ? खन्ना कोई मामूली आदमी नहीं ! वैरिस्टरका ओहदा ! अच्छी प्रैक्टिस ! लाखके करीब जायदाद ! अपनी ही बिरादरीका !”

“है तो ठीक !”—पत्नीने भी सहमति जमाई।

“लेकिन तुम्हारी लाइलीकी नज़रोंमें ठीक उतरे तब न ?”

“न उतरेगा, तो जिन्दगीभर क्वारी रहेगी ! तुम्हीने तो उसे सिर चढ़ाकर खराब किया है !”

रायबहादुर विवाद बढ़ाना नहीं चाहते थे। चुचाप वापस बंगलेमें आकर कुर्सीपर बैठ गये। कुछ सोचनेमें लवलीन हो गये।

“असली डलहौजी तो बगरोटा है !”—बगरोटेकी ढलानसे उतरते-उतरते राधाने कहा—“प्रकृतिकी सारी पुष्कलता मानो यहीं विराज रही हो ! मानवके चुने मस्तिष्क मानो यहीं एकत्र हों ! देवदारु और बन्नके वनोंसे घिरे सुन्दर बंगले; देवदारु-निकुंजोंके बीचसे गुजरती हुई सड़कें ! हर ओर हरियाली और हर ओर प्रकृतिकी प्रचुरता !” फिर मालतीका हाथ पकड़के—“आप-लोग सचमुच बड़े भाग्यवान हैं जी !”

“शाबाश !”—काशीनाथने हँसकर शाबाशी दी । फिर वह मालतीसे मुस्कुराते हुए बोला—“आजकल मिस राधारानी तो कविता बनी हुई हैं । यदि लिखती हैं पद्य-काव्य तो बोलती हैं गद्य-काव्य । आप भी रखती हैं कुछ कविता-ओविताका शौक ?”

“जी !”—मालती अपने पतले-पतले ओठों और रसीली आँखोंमें मीठी मुस्कान भरकर बोली—“बी. ए.में मैंने हिन्दी ली थी । कुछ कर लिया करती हूँ जब-तब ।”

“तो अब निस्तार नहीं आपका !”—राधाने मालतीका हाथ पकड़ लिया—“अब तो सुनानी ही पड़ेगी आपको !”

मालती मुस्कुरा पड़ी—“लेकिन मेरी कविता आप-जैसी भावोंमें बँधी नहीं होती । वह तो अट-पटे दिलकी ऊटपटांग पुकार होती है ।”

“ठीक ! बहुत ठीक !”—काशीनाथने शह दिया—“अटपटे दिलकी ऊटपटांग पुकारके सिवा और कवितामें होता ही क्या है मालतीजी ?”

राधाने मुस्कुराकर आग्रह किया—“तो अपने उसी अटपटे दिलकी ऊटपटांग पुकारको ही सुनाती चलिये । हम-लोग भी मजा लूटें उसका ।”

“लेकिन डर है कि इस ढलानपर पैर अटपटा बनकर कहीं सारा मज्जा न किरकिरा कर दे। और आपका यह कुत्ता भी कम मनचला नहीं। देखिये आगे ही जोर लगाये जा रहा है। फिर देखनेवाले हँसेंगे। मजा तो खूब आयेगा ही।”—कहकर मालती हँस पड़ी।

राधा इस हँसोड़ तबीयतकी तरुणीसे बड़ा प्रभावित हुई। दिलसे एकाएक शिष्टाचारकी दूरीको फेंककर उसका हाथ भकभोरती बोली—
“तो सुनाओ न ? इतने नखरे क्यों बघार रही हो ?”

और मालती दबी हँसीसे अपनी गोरी गालोंको फुलाकर बोली—
“जरा धीरेज भी तो धरो न ? जानतीं नहीं कि इस ढलानपर कविता सुननेसे दिल ढल जाता है ?”—कहकर वह फिर धीरेसे हँस पड़ी।

“शाबाश !”—काशीनाथने एक बड़े जोरका ठहाका मारकर कहा—“आपके तो हर शब्दसे कविता निखर रही है मालतीजी ?”
फिर राधासे—“अब निबटो इनसे ! तुम दोनोंका कवि-सम्मेलन हो, और मैं कविताका रस लिया करूँ !”

“यह तो राधा-इनके साथका प्रताप है खन्नासाहेब !”—मालतीने मुस्कराकर जवाब दिया—“नहीं तो, कवि क्या, मैं कविकी दुम भी नहीं। मैं तो यों ही मखौल कर रही थी।”

“तो तुम कविता नहीं करतीं ?”—राधाने उसे उपालंभभरी आँखोंसे देखा।

और मालतीने उसके मुँहके निकट मुँह ले जाकर कहा—“हाँ जी, करती हूँ, करती हूँ, जरूर करती हूँ। लेकिन तब, जब बड़े डाकखानेकी चौकपर सन्ध्याको सज-धजकर इकट्ठा हुए परियों और परीबाजोंको देखती हूँ। सच कहती हूँ बहन, जब उन्हें देखती हूँ, सारा दिल ही कविता बन जाता है। पढ़ा करती हूँ पेरिसके फैशनके बारे में, मगर मैं तो डलहौजीको ही पेरिस समझती हूँ। कौन कहेगा कि मेरा देश कंगाल है ? किसी भी बातमें किसीसे कम है ?”

सुनकर काशीनाथ जरा चौंका ! उसने फिरकर एक बार मालतीको

देखा और फिर चुपचाप आगे चलने लगा ।

राधा क्षणभरके लिये अप्रतिभ हो गई । उसने मालतीको एक बार ऊपरसे-नीचेतक निहाया । फिर बोली—“लेकिन तुम भी तो किसी परीसे कम नहीं हो ?”

और मालतीने बिना किसी हिचकके जवाब दिया—“तो मैं क्या किसी और लोकसे आई हूँ ? जिन लोगोंमें परियाँ पैदा होती हैं, मैं तो उनके सरदारके घर पैदा हुई हूँ राधा-बहन !”

राधा अवाक रह गई ! एक बार आश्चर्यभरी आँखोंसे उसके व्यंग्य-विकसित चेहरेको देखकर शिर झुकाये चलने लगी ।

“मैंने अपनी कविता तो सुना दी राधा-बहन !”—मालती मुस्काती हुई बोली—“कहा न था कि मेरी कवितामें अटपटे दिलकी ऊटपटांग बुनार होती है ? सो तुमने सुन ही ली । अब अपनी सुनाओ ! अब तुम्हारी बारी है ।”

राधा मौन रही । यह मन-ही-मन कुछ चिढ़ चली थी ।

अब वे तीनों-जनों बड़े डाकखाने की चौकदार पहुँच चुके थे । यह बड़े डाकखानेकी चौक डलहौजीकी जान समझी जाती है । कई ओरसे सड़कें आकर यहाँ एक बन जाती हैं । ठंडी और गरम सड़क, बगरोटेकी फिसलती और चढ़ती सड़क, पंचपूलेकी सड़क, चंबेकी सड़क, बेलूनकी सड़क जाने कितनी सड़कोंका संगम यहाँ होता है । ठंडी-गरम सड़कके बगलकी ऊँची पहाड़ीकी हरियाली; बगरोटेकी चोटीपर देवदारु और बन्नके बनोंका वैभवशाली विन्यास; नीचे कटिबंधोंपर फिमलते हुए जंगल और दूर-दूरके गाँव; सड़कोंपर विन्यासके साथ ऊपर-नीचे बनी हुई आधुनिक ढंगकी कोठियाँ; आधुनिक दुकानों और होटलोंकी कतार, यह-सब उसके अहिमामय आकर्षणमें चार-चाँद लगा देते हैं । तो फिर क्या आश्चर्य यदि सारे डलहौजीके भद्र नर-नारी पूरी साज और शृंगारके साथ वहाँ हर संख्याको एकत्र हो प्राणका मंचार किया करते हैं ? वहाँ ‘जिंदगी जिंदा-दिली का नाच है’ यही एक अभिनय का वादश है । वहाँ जाते ही

बूझोंकी मुर्दा-दिली भी जहन्नुमकी चल देती है। आँखोंके आदान-प्रदानमें जवान्नीकी रंगीनियाँ मानो लुटती चलती हैं। लेकिन आज काशीनाथ, राधा और मालती वहाँ बगैर रुके ही पंचपूलेकी सड़ककी ओर मुड़ गये। जब वे लुहालू गांवकी मोड़से सप्तधाराकी ओर जा रहे थे, किसी एक मूर्तिकी ओर इशारा करके मालती बोली—“देखो, वह कौन आ रहा है? समझूँ तो तब, जब उसपर कोई कविता करे। लो, यह देखो—

‘पेट पीटसे सटा हुआ, आँखें भीतरको धसी हुई’,
बोझ बुढ़ापेका ढोती झुक-झुककर कमर कराह रही !”

मालतीजी इस सपाटेकी तुकबन्दीपर राधा भी हँस पड़ी, काशीनाथ भी। और मालती मानो खीझकर बोली—“भई, हँसते क्यों हो आपलोग? कविता तो आखिर हुआ करती ही है ऐसी? हम परियों और परीवाजोंपर तो युगोंसे ही कविताएँ बनती आई हैं। जानूँ तो तब यदि इनपर भी कोई बनाये।...हाँ राधा बहन, तुम तो मानी हुई कवि हो न? इन्हें देख कुछ प्रेरणा नहीं मिलती तुम्हें? इनमें सत्य, मु-र और शिव नहीं दिखाई देते तुम्हें? बाह जी! अरी कुछ भी तो बोलो! बोलो न आगे की तुकें! मुझे तो सूझती ही नहीं!”

राधा और काशी फिर खिलखिला पड़े। मालती फिर सहज स्वरमें बोली—“तुम तो मुफ्तकी कवि बन गईं राधा-बहन! लो, सूझ गई—

‘फटे चीथड़ोंके भीतरसे उसकी हड्डी झाँक रही,
अधबूढ़े चहरेपर उसके, हाथ झुरियाँ झूल रहीं।”

मालतीकी इन तुकबंदियोंपर राधा लोट-पोट होकर हँसने लगी। काशीनाथने भी हँसकर कहा—“अब मान गया मालतीजी, कि आप पूरे कवि हैं। बल्कि मैं तो कहूँगा कि कवि-सम्राट्!”

“धन्यवाद !”—मालतीने दोनों हाथ जोड़ दिये—“कम-से-कम आप तो लोहा मान गये मेरा! क्यों राधा-बहन, तुमने अभी माना या नहीं?”

“मैं भी मान गई भाई !”—राधाने मुस्कुराकर जवाब दिया ।

“अच्छा, लो ! सत-धारा आ गया ।”—मालती बोली—“पानी पीके दिल ठंडा कर लो । कविताके कीटाणु भाग खड़े होंगे । डाक्टरोंका मत है कि सतधारेके पानीसे टी० बी० तकके कीटाणु भाग खड़े होते हैं ।”

“हाँ भई !”—राधा शान्त स्वरमें बोली—“पानी तो सचमुच ही बड़ा मीठा, बड़ा बारीक है । चाहे कंठतक खा लो, सबको पचा दे ।”—कहकर वह आगे बढ़ी । भट एक पतली नलीसे गिरती धाराके नीचे उसने चुल्लूमें मुँह लगा दिया ।

“मुझे भी कविताकी अपच हो चली है !”—कहती मालती भी आगे बढ़ी । एक दूसरी नलीके नीचे उसने भी चुल्लूमें मुँह लगा दिया ।

पानी पीते-पीते ही राधा हँस पड़ी । बेचारीका गला सरक गया । पानी पीना छोड़ अब वह मीठे उलहनेके स्वरमें बोली—“भई मालती, तुम बड़ी शंतान हो ।”

मालती पानी पीना छोड़कर गंभीरतासे बोली—“तो अचरज क्या है ? शैतान होना कोई बुरी बात तो नहीं ? हमारी सोसाइटी सिवा शंतानियतके और शिक्षा देती ही क्या है ?”

राधा और काशीनाथ दोनों ही अप्रतिभ होकर चुपचाप उसके चेहरेको देखने लगे ।

“आइये न खन्नासाहेब आप भी !”—मालती मुस्कुराते हुए बोली—“सतधारा न सही, तीन-धारा तो है ही । पीकर खुश हो लीजिये ।”

“मुझे प्यास नहीं लगी है ।”

“यदि हाथ लगाकर पानी पीना सम्म्यताके विरुद्ध हो, तो ले आऊँ आपके लिये खोमचेवालेसे माँगकर गिलास ?”

काशीनाथ मन-ही-मन चिढ़ उठा, लेकिन ऊपरसे मुस्कुराकर—

“अच्छा जी ! मैं भी पी लेता हूँ । नाराज न हों आप !” — कहकर दो-तीन चुल्लू पानी वह भी पी आया ।

अब मालती भट खोंमचेवालेके पास जाकर उससे चार पैसेकी चर्फी ले आई । काशीनाथके कुत्तेके आगे रखकर बोली—“ले भई टौमी ! तू भी खाकर मनकी मुराद मिटा ले ! तू भी क्या समझेगा कि किसी कविसे पाला पड़ा था !”

इस बार काशीनाथ और राधा दोनों ही जोरसे हँस पड़े । हँसते-हँसते ही वे अब तीनों पंचपूलेकी तरफ चल पड़े ।

चलते-चलते ही राधा बोली—“भई मालती, तुम भी बड़ी खुश-दिल हो ! दिल करता है कि तुम्हें दिलमें छिपाके रख लूँ !”

“ना ना !” — मालती मानो चौंककर बोली—“ऐसा न करना ! मैं बड़ी शैतान हूँ ! कहीं दिलको ही काट खाने लगूँ तो ?”

फिर इस बार हँसीका कहकहा आकाशमें गूँज उठा ।

तीनों जने चलते रहे । आगे-आगे उनका कुत्ता । सामने एक तेरह-चौदहसाला पहाड़ी-कन्या आ रही थी, जंगलसे सूखी लकड़ियोंका बोझ शिरपर लादे हुए । मैली पायजामा, मैला कुर्ता और मैली ओढ़नीमें भी सौन्दर्य छिपाये छिप नहीं रहा था । उसके संकोच-सुन्दर भोले मुखड़ेसे गुलाबकी स्वच्छ लाली मानो फूटती प्रतीत हो रही थी । स्वभाव-रक्त पतले ओठोंपर नाकका सुनहला लुटकुन लटक रहा था । खड़ी-सीधी नाक और पतली-सुरेख भौंहोंके नीचे बड़ी-बड़ी काली आँखें । इन तीनोंको अत्यंत निकट देख वह संकुचित हो चली । भट रास्ता छोड़, मुँह फिराकर एक ओर खड़ी हो गई ।

चलते-चलते ही मालती एक बार उसकी ओर गहरी आँखोंसे देखकर स्थिर स्वरमें बोली—“यदि किसी तरह ये पहाड़ी हम मुफ्तखोरोंकी जमातमें शामिल हो जायें, तो मैं निश्चयसे कहती हूँ कि ये पहाड़ी कन्याएँ हम परियोंकी रानी ही बन जायें !”

यह बात न काशीनाथको अच्छी लगी, न राधाको । दोनों ही चुप

रहे । अब वे पंचपूलेर पहुँच चुके थे । सन्ध्या हो चली थी । यात्रियों-का आवागमन भी बन्द हो चला था ।

“आइये खन्नासाहेब !”—मालती जरा थके स्वरमें बोली—
“जरा पैर मोड़ लिया जाय । मैं तो थक गई हूँ ।”—कहकर टीनकी छतके नीचे बेंचपर वह बैठ गई । काशीनाथ और राधा भी जा बैठे ।

तीन ओरसे उत्तुंग पर्वत-चोटियाँ वृक्षों की घनी छायामें छिपी मानो प्रहरी-सी वहाँ खड़ी थीं । दो ओरसे पर्वत-शिखरसे पंचपूले की निर्भङ्गी भर-भर करती, चट्टानों और पत्थरोंपर बल खानी, लुढ़कती एक ओर अनन्तको जा रही थी । और सामने पके-काले फलोंसे लदी हुई रसों की छोटी-छोटी भाड़ियाँ, जलके छींटोंसे निरन्तर अभिषिक्त हो रही थीं ।

अब मालती उन भाड़ियोंकी ओर लपक पड़ी । कुछेक फजदार टहनियाँ तोड़ ले आई । काशीनाथ और राधाके आगे रखकर बोली—
“इस ऋतुमें यहाँ आकर यदि रसोंके रससे रसना गीली नहीं की, सो आना ही क्या ।”

कहकर एक टहनीमेंगे फल तोड़-तोड़कर वह खाने लगी । राधा-ने भी एक टहनी हाथ में लेकर एक-दो फल चखे । किन्तु काशीनाथने अभी छुआ भी न था ।

“खन्नासाहेब !”—मालती व्यंग्यभरे स्वरमें बोली—“यह देशी फल है । देशी तीका बरतनेमें कोई हर्ज नहीं । सच कहती हूँ आपसे, हाथसे तोड़कर खानेमें बड़ा मजा आ रहा है ।”

काशीनाथ भीतरसे चिढ़कर भी ऊपरसे हँसा । एक टहनी उसने भी सठा ली । एक-दो फल उसने भी चखे । उसे बड़ा आश्चर्य लग रहा था रायबहादुरकी इस इकलौती कन्याके उच्छृंखल व्यंग्य और तीखे परिहासपर । प्राधुनिक बड़े घरोंकी अन्य कन्याओंकी तरह वह भी क्लबोंमें जाया करती; किन्तु वहाँ उसके व्यवहारमें न उच्छृंखलता होती, न मुखरता, न परिहास ही । बल्कि क्लबके मुखर समाजमें वह कहीं

संयत ग्रीर कहीं शिष्ट दीखनी । पर आजके व्यवहारसे लगता ऐसा था जैसे काशीनाथ उसका वर्षोंका घनिष्ठ मित्र हो, अथवा अत्यंत निकटका कोई हँसी-मजाक करने लायक सगा रिश्तेदार ।”

“अच्छा भई मालती !”—रसोंत खाते-खाते ही राधाने पूछा—
“बताओगी तुम इसका नाम ‘पंचपूला’ क्यों पड़ा ? पुल तो एक ही देख रही हूँ यहाँ ?”

“हाँ भई,”—रसोंतके दो-चार दाने मुँहमें डालकर मालती बोली—“दुनिया जो भी समझे अपनेको, लेकिन मेरे विचारमें तो सभी सनातनी हैं । तुम पूछोगी, कैसे ? मैं कहूँगी इसमें उदाहरण यह ‘पंचपूला’ नाम है । और भी बहुत-सी ऐसी ही बातें । किसी जमानेमें यहाँ पाँच पुल थे । उन्हींपर इसका नाम पड़ा पंचपूला । काल-क्रमसे चार नहीं रहे । आज एक पुलके रहते भी नाम वही पंचपूला है । इसी प्रकार सतधारेकी बात । किसी जमानेमें वहाँ सात धाराएँ रही होंगी, पर मैं जबसे देख रही हूँ तीन छोड़ चौथी धारा कभी दिखाई नहीं दी । लेकिन नाम उसका आज भी वही सतधारा है, रहेगा भी वही । फिर आप ही बतायें खन्नासाहेब, कि सनातन-धर्मपर आश्रय करनेवाले सुधार-पंथी किनने पागल और कितने बेवकूफ हुआ करते हैं ?”

राधा और काशीनाथ दोनों ही जोरसे हँस पड़े । काशीनाथ भी इस बार शिष्टाचारकी दूरी दूर करते हुए हँसकर बोला—“शाबाश मालती ! अब-तक तो मैं केवल तुम्हें कवि ही समझ रहा था, लेकिन अब मानना ही पड़ेगा कि तुम एक जबर्दस्त दार्शनिक भी हो ।”

और मालतीने पुनः दोनों हाथ जोड़ दिये—“माफ करें खन्ना-साहेब ! दंडके लिये कविकी दुनिया ही काफी है, दार्शनिकोंकी दुनिया-में भी रखकर अन्याय न करें मुझपर !”

उसके अभिनय पर पुनः दोनोंको हँसी आ गई । अब काशीनाथ-की भी रसोंतमें रस आने लगा ।

मालती बोलती गई—“शाबाशीकी जरूरत क्या है खन्नासाहेब ?

यह तो सच्ची बात है, जो दिन-रात देखा करती हैं। रूढ़ि को ही सनातन-धर्म कहते हैं न ? सो देखती हैं हर जगह रूढ़ि है, जड़ और जंगममें भी। जड़की बात हो गई, अब जंगम की भी सुनिये। कहते हैं 'ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः। ब्राह्मण ब्रह्मज्ञानीको कहते हैं। हमारा रसोइया पण्डित गंगाराम, पता नहीं उस ब्रह्म को जानता है या नहीं, किन्तु इतना अवश्य कहेंगी कि वह अन्न-ब्रह्मको खूब पहचानता है, और भोजन-ब्रह्म को भी। हमारे जूठे बर्तन भी साफ कर लेता है, और जूते भी। इस नाते वह कहार भी है, चमार भी। लेकिन अपनी इन नई जातियोंको न वह स्वीकारता है, न हम स्वीकारते हैं। किसी जमानेमें उसके दादे-लकड़दादेको ब्रह्म-ज्ञानकी बदौलत जो ब्राह्मण और पण्डितकी उपाधि मिली, वही आज इस कहार और चमारसे भी जुड़ी है, और जुड़ी भी रहेगी। जब हम उसे पण्डितजी कहकर पुकारते हैं, मारे गर्वके उसकी छाती फूट उठती है जनाव !”

“शाबाश ! बहुत ठीक ! बहुत खूब ! कुछ और सुना जाइये ! बड़ा मजा आ रहा है !”

“और भी लीजिये !”—कहकर मालतीने उस टहनीके बचे-खुचे रसोंत खत्मवर दूसरी टहनी उठा ली। चहल कदमी करती किसी पेशेवर भाषण-कर्ताकी भंगीसे वह बोली—“अभी चन्द मिनट पहलेकी बात है। एक सरदारजी अपनी पत्नीके साथ हमारे पाससे ही गुजरे हैं। किसी जमानेमें जरूरतक मुताबिक गुरु गोविन्दसिंहजीने अमृत छका-छकाकर शृगालोंको सिंह बना डाला था, और महाराजा रणजीत सिंहके शासन-कालमें ये सभी सिंह सरदार भी बन गये। उस सिंहपन और सरदारपनका जमाना तो कबका लद चुका, लेकिन आज भी जरा-से अमृत छरकर सभी शृगाल सिंह और सरदार अवश्य बन जाते हैं। अंग्रेजोंकी गुलामी और बफादारीसे चिपके रहकर भी सिंह और सरदारकी उपाधिपर इन्हें बड़ा ही गर्व है। फिर कहिये खन्नासाहेब कि अपने रसोइया गंगारामको ही मैं क्यों कोसूँ, जबकि वह तन और मन

हर तरहसे सनातनी है ?”

फिर एक बार हँ-ीके कहकहे से वहाँका आवृत आकाश गुँज उठा। काशीनाथने फिर टिटकारी भरी—“वाह ! बहुत खूब ! बहुत अच्छा ! कुछ और कहिये ! कुछ और सुनाइये !”

“और लीजिये !”—मालती बेखटके बोली—“आपने श्रीमती सरदारनी साहेबाके चेहरेपर गौर तो किया ही होगा। फैशनके नशेमें उन्हें इतना भी ख्याल न रहा कि चेहरेपर पाउडर कितना और किस तरह मलना चाहिये। और आपने देखा होगा कलवमें उन सरदारबहादुर-साहेबको, जो मेरे पिताजीके गहरे दोस्त भी हैं। सरदारबहादुरकी बड़ी लड़की हरवश मेरी सहेली है। एक रोज बता रही थी—‘क्या बताऊँ मालो, पिताजी दाढ़ी-मूँछोंके पीछे बड़े ही परेशान रहते हैं। रोज अकेले-में कैंचीसे फालतू बालोंको छांटनेमें उन्हें घण्टाभर लगा करता है। एक दिन बचपनमें मैं उनसे बोली—पापाजी, यह दाढ़ी-मूँछें साफ क्यों नहीं करालेते ? तब बड़ा अच्छा दीखेगा चेहरा आपका ! पिताजीने फिर ऐसी अपत जमाई मुझे कि हिम्मत नहीं पड़ी फिर ऐसी बात कहनेकी उनसे।”

फिर हँ-ीके गुँजारसे वातावरण प्रसन्न हो उठा।

मालती बोलती गई—“सोचती हूँ इन बहादुरोंकी बहादुरीके बारे-में, यानी इन सरदारबहादुरों, रायबहादुरों और खानबहादुरोंके संबंध-में। पता नहीं मंदाने-जंगमें कौन कितनी बहादुरी दिखा सकेगा, लेकिन यह तो दिन-रात देखा करती हूँ कि सरकार-बहादुरकी चापलूमी, खैर-ख्वाही और सरकारके बलपर गरीबोंको चूसनेकी कलामें ये लोग बड़े बेजोड़ बहादुर हुमा करते हैं। और.....”

मालतीका कहना रुक गया। काशीनाथका कुत्ता कुछ देखकर बड़े जोरसे भौंकने लगा था। अब सबका ध्यान उधर आकृष्ट हो गया।

दो गोरे फौजी, शराबके नशेमें मस्त उस ओर ही बड़े आ रहे थे। पहले किसीने खास ध्यान नहीं दिया। काशीनाथ कुत्तेको पकड़कर उसकी पीठ थपथपाता उसे चुप रहनेका आदेश देने लगा। लेकिन

गोरे आगे बढ़ते ही आये। बेखटके वे टीनकी छातमें आ घुसे। और किसीको सम्हलनेका मौकातक न देकर एकने कसकर मालतीको पकड़ लिया, और दूसरेने राधाको। राधा उस गोरेकी क्रूर पकड़में पड़कर चीखने लगी और मालती उससे मुक्त होनेकी भरपूर चेष्टा करने लगी। नखों और दाँतोंतकका प्रयोग वह करने लगी। लेकिन परिणाम कुछ निकल नहीं रहा था। कुत्ता केवल भौंक ही रहा था, और इस अतर्कित दुर्घटनासे उन सभीको मारे भयके भौँचकका बना दिया था !

इधर काशीनाथने पहले उन्हें अग्रेजीमें समझानेकी, नैतिक उपदेश देनेकी कोशिश की। पर कोई नतीजा निकलता न देख उसने डाँटना-डपटना और गालीतक देना आरम्भ किया। किन्तु वे डरने या विरत होनेके बजाय और भी उग्र हो उठे। एकने भट राधाको छोड़, लपककर काशीनाथको पकड़ लिया। उसे बड़े जोरका एक घूँसा दे मारा। काशीनाथ पत्थरपर जा गिरा। सम्हलनेसे पहले ही उस गोरेने उसे कसकर पुनः बूटका एक ठोकर दे मारा। काशीनाथ मूर्छित हो पड़ा !

राधा और भी भयभीत हो उठी ! उसने भागनेकी कोशिश की। लेकिन पुनः उस गोरेकी निष्ठुर पकड़में आ गई। अब रक्षाका कोई उपाय न देख वह बड़े जोरसे आर्तनाद कर उठी—“अरे ! कोई बचाओ हमें ! बचाओ हमें !”

वह आँखें मूँदकर जोर-जोरसे रो पड़ी। लेकिन दूसरे ही क्षण उसने अनुभव किया कि गोरेकी पकड़ ढीली पड़ गई है। उसने गोली दागनेकी आवाज सुनकर डरकर आँखें खोलीं। और बड़े आश्चर्य से देखा कि वह गोरा नीचे ढेर हुआ पड़ा है। उसकी पसलीसे खूनकी धारा वह रही है। उसका लिवाम खूनसे तर होता जा रहा है।

अपने साथीकी दशा देख दूसरे गोरेने मालतीको छोड़ दिया और उस गोली दागनेवालेकी ओर दौड़ पड़ा। लेकिन बीचमें ही गोरी खाकर वहाँ ढेर हो गया।

एक अद्भुत कामानकी तरह क्षणभरमें सारी घटना घट गई !

मालती एक हाथमें पत्थर उठाए हांक रही थी, और उस गोली चलानेवाले की ओर हक्की-बक्की-सी ताक रही थी। राधाने भी देखा। वह तो रोकर जोरसे चिल्ला पड़ी—“मास्टरजी ?”

“चुप रहो !”

मास्टरजीने आदेश दिया। राधा चुप होगई। और मास्टरजी भटपट उन लाशों की उठा-उठाके पास की एक झाड़ीमें छिपा आये।

“तुम्हे कोई चोट तो नहीं आई राधा ?”—राजनने पूछा।

और जवाबमें राधा वही बैठकर रो पड़ी।

राजनने फिर डाँटा—“खबरदार ! रोकर काम खराब न करो !”

राधा चुप हो गई। काशीनाथ भी अबतक होशमें आ चुका था। क्षणभर इन नवाग-तुफ़ानों ताकते रहकर बोला—“राजन ?”

“हाँ !”—राजनने धीरेसे गम्भीर स्वरमें कहा—“उठो ! चलो यहाँसे तुम-लोग ! देर करोगे, फँसोगे !”

काशीनाथने सब-कुछ समझ लिया था। राजन आगे चल पड़ा। भय-विह्वल हृदयसे सबने उसका अनुसरण किया। किसीने चूँ-तक नहीं किया। इसी रूपमें वे सप्त-धारातक आये। भय और आतंकसे सबका गला सूख रहा था।

“अब तुम-लोग जी-भरकर पानी पिओ ! फिर खूब हँसते-बोलते खेलते बनो ! और मुझे अब इजाजत दो !”

कहकर राजन मुड़ना ही चाहता था कि राधाने भट उसका हाथ पकड़ लिया। डरे स्वरमें बोली—“आप कहाँ जा रहे हैं मास्टरजी ?”

“आती राह।”—राजनने सूखे स्वरमें जवाब दिया—“तुम-लोग जाओ ! देर न करो !”

राधा बच्चों की तरह रो पड़ी—“मैं नहीं जाने दूँगी ! मैं मर जाऊँगी मास्टरजी ! आप चले हमारे साथ !”

“चुप रहो ! चलता हूँ।”

राधा आश्वस्त हो गई। उसके साथ काशीनाथ और मालती भी।

[२५]

“आज जीवनमें पहली बार एक पुरुषको देखा है राधा !”

यह उद्गार मालतीका था। जब वह बड़े डाकखानेपर राधासे विदा ले रही थी, उसने उसके कानमें कहा था। फिर उसने बड़े विनयसे राजनको नमस्कार किया था। यद्यपि उत्कण्ठा बहुत थी उसके बारेमें जाननेकी, लेकिन ऐसा कर न सकी। पूछने कुछ संकोच भी हो रहा था, और उधर माता-पिता इन्तजारमें खड़े थे। वह चली गई, दिलमें-हीनूहल-के भाव भरे, श्रद्धामें पगी हुई, भावनाओंमें डूबी हुई। कई बार पीछे मुड़कर देखा भी। कुछ देर बाद ओझल भी हो चली।

इधर राजन आज काशीनाथका परम-मान्य मेहमान था। उसके मनमें राजनके प्रति वही पहलेका सौहार्द जाग पड़ा था। राधा आज दासीकी तरह खड़ी अपने मास्टरजीका मुँह जोह रही थी।

जब तीनों-जने भोजनसे निवृत्त हुए, कुछ देर फिर एक-साथ बैठ गये। जहाँ-तहाँकी आलोचना छिड़ गई। आज शामकी घटनाकी आलोचना भी। राधा जरा भरे दिलसे बड़ी कृतज्ञतासे बोली—“कहा करते हैं भगवान कृष्णके द्रौपदीकी लाज रखनेकी बात। सो अब अच्छी तरह समझ गई। आपने आज दो अबलाओंकी लाज रख ली मास्टरजी ! नहीं जानती थी कि ये लोग ऐसे पिशाच होते हैं।”—कहकर उसने आँखें पोछी।

“तुम ठीक मौकेपर कहाँसे आ-पहुँचे राजन ?”—काशीनाथने सकुचाकर पूछा।

और राजनने मुस्कुराकर जवाब दिया—“आकाशसे काशी ! जैसे भगवान अपने भक्तोंकी रक्षाको दौड़ा करते हैं।”

“खैर !”—काशीनाथ जरा सकुचाए स्वरमें बोला—“बात जो

भी हो, लेकिन तुम आज हमारे लिए भगवान ही साबित हुए।”

“बताइये न मास्टरजी !”—राधा जरा मचलकर बोली—“कैसे आप आगये वहाँ ?”

राजनने उसी प्रकार मुस्कुगते हुए जवाब दिया—“न मैं भगवान हूँ, न आकाशने दीड़ा करता हूँ। वहीं मौजूद था। ऊपरकी भाड़ीमें बैठा कुछ लिख रहा था। चीखने-विल्लानेकी आवाज कानोंमें आई। खड़े होकर इधर-उधर देखा। नीचे उतर ही रहा था कि राधाकी पुकार सुनी। उसके बाद वहाँ भट पड़कर जो करना था, सो कर बैठा।”

“तो हुए न आप मेरे भगवान ?”—राधाके मुँहसे अनजाने ही निकल पड़ा।

“नहीं राधा ! मैं भगवान नहीं, मनुष्य हूँ !”

“राजन !”—काशीनाथने जरा डरे स्वरमें पूछा—“उन लागोंका क्या होगा ? अगर पता लगा, फिर जांच-पड़ताल शुरू होगी ? फिर क्या होगा ?”

राजन एक भवजाकी हँसी हँसकर बोला—“तुम बैरिस्टर हो, अच्छे-खासे बैरिस्टर, फिर भी इस प्रकार आतंकका भाव जताते तुम्हें संकोच नहीं होता ?”

“नहीं, आतंककी बात नहीं है। लेकिन……”

“लेकिन क्या ?” …राजन अचानक चिढ़कर बोला—“लगत है तुम कानूनी पण्डितोंमें सिवा कानूनकी खूबियाँ और सामियाँ बधारनेके और कुछ नहीं होता ! इस प्रकारका भय तुम्हें शोभा नहीं देता काशी ? आशा न थी इतने परिवर्तनकी तुममें ? ऐसी छोटी बातोंसे डरकर तुम क्या कर सकोगे जीवनमें ? अबतक जाने कितने ऐसे कुत्ते राजनकी गोलियोंके शिकार बन चुके हैं और बनते रहेंगे। राजन पशुओंको भले ही क्षमा कर दे, परन्तु मानव-पशुको क्षमा नहीं करता ! जाओ, सो जाओ ! डरो मत ! और जबतक यहाँ रहो अपनी बोल-चाल या व्यवहारसे किसीके भी मनमें सन्देह पैदा न होने दो। मैं भी सोऊँगा।”

बीद आ रही है।" कहकर एक लम्बी जम्हाई लेकर वह उठ खड़ा हुआ।

राजनकी इस भर्त्सनासे काशीनाथ मन-ही-मन अप्रसन्न हुआ। किसी भी भारीके समक्ष कोई भी पुरुष उपहास बर्दाश्त नहीं करता। किसी युवनीके समक्ष तो और भी नहीं। और यदि उस युवतीसे प्रणयका सम्बन्ध हो, तब तो बर्दाश्त करना और भी कठिन ! किन्तु इस समय मित्रा बर्दाश्त करनेके काशीनाथके लिए और चारा ही क्या था ? अपनी अप्रमन्नता छिपाये चुपचाप उठकर अपने शयन-कक्षमें वह चला गया। इस बानने उसके हृदयमें और भी कँपकँपी पैदा कर दी कि राजनके हाथों ऐने अनेक कांड हो चुके हैं और होने रहें। उधर राधा बड़े आदरसे मास्टरजीका मार्ग-निर्देश करती उन्हें शयन-कक्षमें छोड़ आई। स्वयं अपने कमरेमें जाकर पलंगपर लेट गई।

लेकिन राधाको आज नींद नहीं आ रही थी। आजकी घटना जितनी ही विस्मय-जनक थी, उतनी ही असंभावित भी। क्या राधाने स्वप्नमें भी सोचा होगा पंचपूले-जैसी परिस्थितिमें पड़नेकी ? क्या उसने सोचा था कभी उस दशामें पड़कर मास्टरजीसे उद्धृत होनेके सम्बन्धमें ? जिसे वह भूल चुकी थी। जो उसकी नजरोंमें एक साधन-संबलहीन अगण्य दीनके सिवा कुछ न था, पुनः एकाएक महान बनकर प्रगट हो गया ! मानतीने चलते समय कहा था—'आज जीवनमें पहली बार एक पुरुष देखा है राधा ?' सो, राधाका चित्त इस समय रह-रहकर विक्षिप्त हो रहा था। उसे याद आ रहा था मानतीका व्यंग्य-विकुंचित चेहरा और पीरनास-तल व्यवहार। राधा मन-ही-मन बोली—'मानती ! तुम भी सामान्य महिला नहीं ! निरन्तर वैभवके पलनेमें पलकर भी, दिन-रात आधुनिक सभ्यता और संस्कारोंसे घिरी रहकर भी उसकी बाह्य चका-चौंधमें तुमने आँखें नहीं खोईं। तुम्हारी अन्तस्की आँखें किसी और ही चीजको ढूँढ़ रही हैं बहन ? तुम कीचड़की कमलिनी हो, समाजकी शुभ्रता और मनुष्यताकी दहकती विनगारी !'

सोचते-सोचते राधाके हृदयमें अब पश्चात्तापकी आग जलने लगी।

वह व्याकुल हो उठी। अपने-आपसे बोलने लगी—“सब-कुछ गवां चुकी है ! दृष्टि गवां चुकी, हृदय गवां चुकी, और...और...और वह भी गवां चुकी जो नारीत्वका संबल है, स्त्रीत्वका स्वाभिमान ! हे भगवान् ! क्या कर बैठे मैं ! जिस पुरुष-पुंगवको मानतीकी आँखें अविलम्ब पहचान गईं उमे में पासमें पाकर भी सही मानेमें पहचान न पाई ! कोशिश तो की थी पहचानने की, रास्ता तो तै किया था कुछ, लेकिन बीचमें ही दृष्टि विकृत हो गई ! सब-कुछ नष्ट हो गया ! सर्वनाश हो गया !”

राधा रो-रोकर अपने-आपसे प्रश्न करने लगी—“अब तू उस पुरुष-रत्नके योग्य क्या रही राधा ? अब क्या चाहकर भी प्राप्त कर सकेगी उसे ? सब-कुछ खोकर, सब-कुछ गँवाकर किस संबलके बलपर उसकी सहचरी बनेगी तू ?”

एक दारुण निराशासे हृदय उसका भर उठा। अपने प्रति अश्वि एवं घृणाकी घृणासे वह पागल हो उठी। सोफेर उठ बैठी। घृणा और निराशाके आवेशमें बार-बार अपने-आपसे वह बोलने लगी—“कर दे इस घृणित जीवनका अन्त ! क्या करेगी जीतर तू ? समाजपर एक गंदा भार है तू ! सिवा उसे गन्दा करनेके और करेगी क्या तू ?”

संकल्पकी भीषणताने उमे सहसा भीषण बना डाला ! अपने बेड-स्विच् दबाया। सारा कमरा आलोकित हो उठा। सामनेके शीशेमें उसने अपना रूप देखा। देखकर डर गई ! मानो चेहरेपर मृत्यु मूर्तिमान हो उठी थी। मानो इंगितोंसे उसे अपने पास बुना रही थी। राधा ने आँखें मूँद लीं। बत्ती बुझा दी। फिर धीरेसे आँखें खोलीं। पर लगा कि अन्धेरेमें वह मूर्ति और भी भयानक हो उठी है ! अन्धकारमें परिणत होकर उसकी काली छाया मानो खिड़कियोंसे, अन्य अनेक अंध-काशोंसे उमे भाँक रही है ! खिड़कियोंसे प्रविष्ट होती हवा उसे मौतकी उष्ण उसाँसे लग रही थीं। मानो मौत अपनी उष्ण उसाँसे छोड़ती क्रमशः उसीकी ओर बढ़ी आ रही थी। राधाका अंग-अंग पसीनेसे तड़

हो गया ! डलहोजीकी शीतल रातमें मानो ग्रीष्मकी सारी गर्मी भर आई !

उसने पुनः स्विच दबाया । पुनः सारा प्रकोष्ठ आलोकित हो उठा । पुनः उसने शीशेमें अपना रूप देखा । इस बार वह और भी डर गई । डरकर आँखें मूँद लीं । सिकुड़कर पलंगपर वह लेट गई । मन-ही-मन भय-कम्पित स्वरमें बोली—“नहीं नहीं, मैं नहीं चाहती मौत ! मैं जीना चाहती हूँ ! जीना चाहती हूँ !”—कहते-कहते वह बेहोश-सी होकर पलंगपर लुढ़क पड़ी ।

कुछ देर बाद होशमें आई । इस बार उसके मानस-पटपर राजन प्रगट हुआ । राधा उसे जी-भरकर देखने लगी, और उसके दिलसे कुछ क्षण पहले की सारी भयकी भावना मिटती गई । इस समय राजन मानो विश्वका समस्त सौन्दर्य नित्य उसे देख रहा था । उसकी आँखोंसे स्नेहकी अजस्र धारा बह रही थी । पौरुषका प्रतीक, चरित्रका आकर, ज्ञानका गौरव और स्वाभिमानका स्वरूप-सा बना हुआ !

“मेरे देवता !”—राधा पश्चात्तापभरे स्वरमें मन-ही-मन बोली—“मुझे क्षमा कर दो ! मुझे जीनेके योग्य बना दो ! मैं तुम्हारा हाथ नहीं चाहती ! तुम्हारी संगिनी बननेकी योग्यता मैं खो चुकी हूँ । किन्तु अपने चरण-चिन्होंपर चलनेकी क्षमता तो दो, आदेश और उपदेश तो दो ! मुझे क्षमा कर दो मेरे मास्टरजी !”

कहते-कहते राधा उच्छ्वसित हो पड़ी । आँखोंमें आँसू भर आये । वह रोने लगी । काफी देर तक चुपके-चुपके रोती रही । रो लेनेके बाद हृदय कुछ हल्का हुआ । मन-ही-मन मास्टरजीसे आँख-मिचौनी खेलती रही । बहुत कुछ सोचती रही । फिर अनजाने एक समय सो भी गई ।

दूसरे दिन सवेरे जब चाय-पानीके लिये राधा मेजपर आई, उसके चेहरेकी रंगत स्वाभाविक न थी। चेहरा फीका, पीला पड़ा हुआ ! आँखें काफी भीतरको घसी हुई ! राजनने केवल एक बार उसकी ओर देखा। फिर हाथमें पहलेसे ली पुस्तकके पन्ने पलटनेमें लग पड़ा।

“तुम्हागी तबोयत तो ठीक है राधा ?”—काशीनाथने पूछा।

“ठीक है।”—राधाने बिना थिर उठाये ही फीके स्वरमें जवाब दिया।

काशीनाथने सोचा कि शायद कलकी घटनाका आतंक राधाके मन-पर आज भी मौजूद है। वह स्वयं भी तो कम भयभीत न था। एक अच्छा-खासा बैरिस्टर होकर भी इस मामलेमें फंसनेकी आशंकासे वह स्वयं भी आतंकित हो उठा था। उसके भी चेहरेकी रंगत फीकी दीख रही थी। ऐसी स्थितिमें चाय-पानीका रंग भला जमता ही कैसे ?

“अभी तो मैं जा रहा हूँ काशी !”—चाय-पानीसे फुर्सत पाकर राजनने कहा—“यदि हो सका, संध्याको फिर आऊँगा !”

“कहाँ जा रहे हो अभी ?”—काशीनाथने पूछा।

“उसे न बतानेकी जरूरत, न पूछनेकी।”—राजनने सूखे स्वरमें जवाब दिया—“लेकिन तुमसे मेरी सलाह है कि इस प्रकार चेहरेकी रंगत फीकी न करो। कलकी दुर्घटनाको दिलसे भुला दो। समझ लो कि वह एक बुरा सपना था। अपने मनोरंजन और राग-रंगमें जरा भी कभी न आने दो। और न किसीसे चूँ-तक करो उस सम्बन्धमें।”

“तुम कबतक रहोगे यहाँ ?”

“आज भी जा सकता हूँ, दस दिन बाद भी।... अच्छा मैं अब चला।

फिर कोशिश करूँगा मिलनेकी।”—कहकर वह उठ खड़ा हुआ।

राधा भी उठ खड़ी हुई। जरा सहमे स्वरमें राजनसे बोली—
“मुझे कुछ कहना है आपसे। चल सकती हैं आपके साथ?”

“चाहो तो चल सकती हो, लेकिन मुझे जाना है दूर। पाँच-छे मील दूर। लौटूँगा भी देरसे।”

“कोई हर्ज नहीं।”—राधाने कहा और काशीनाथसे विना पूछे ही वह राजनके पीछे-पीछे चल पड़ी।

काशीनाथको क्रोध हुआ। आश्चर्य और आशंका भी। लेकिन चुप रहा। राजनके पीछे जाती राधाको ईर्ष्या और क्रोध-मिश्रित आँखों-से देखता वह चुपचाप बैठा रहा। रोकने या टोकनेकी उसने जरा भी चेष्टा न की।

राजन और राधा ‘चेरिंग-क्रासको’ पारकर ठण्डी सड़कसे चुपचाप बढ़े जा रहे थे। राधाकी आँखें बाईं ओर बर्फसे ढकी दूरवर्ती पर्वत-चोटियोंपर थीं, जिनपर सूर्यकी किरणोंके निरन्तर प्रतिफलन-से चाँदी-जैसी चमक पैदा हो रही थी। और राजन नीचेके कटि-बन्धोंपर बसे गाँवों, मकई और धानके क्यारी-नुमा खेतोंको देखता जा रहा था।

“मास्टरजी!”—राधा कुछ दूर आगे कुछ देखकर चौंक पड़ी—
“देखिये तो उसे क्या हो गया?”

राजनने भी चौंककर पीछे मुड़कर देखा। लकड़ीकी एक ताजी शहतीर किनारेकी पहाड़ीसे सटाकर तिरछी-सी रखी थी और उसके नीचे सड़कपर एक अघेड़ उम्रका कश्मीरी हातू उत्तान लेटा हुआ था। सगता था जैसे मरा हो या बेहोश।

राधाकी आवाजसे वह हातू उठ खड़ा हुआ। अपने तार-तार-निकले ऊनी कोट और पाजामाको झाड़ता, मुँहके बत्तीसों दाँत दिखाता बोला—“जरा दम्मा ले रहा है बीबीजी! बड़ा भारी बोजा है, ढाई-तीन मन है। बमोत थक गया!”

और राधा आश्चर्यके स्वरमें बोली—“तो दम्मा लेनेकी कोई और जगह नहीं ? बीच सड़कपर मुर्दोंकी तरह.....”

“कहाँ जगह है बीबीजी ? डेरा बग़ोत दूर है। शामको वहाँ जायगा, खाना बनायगा, फिर खाके सो जायगा । अभी बड़ा थका है । छँ भीलसे, लकड़मन्डीके परले पारसे आ रहा है ।”

राधाने और कुछ न पूछा । चुपचाप वह राजनके पीछे चल पड़ी । बग़रोटे ही ऊँची चढ़ाई वह चढ़ने लगी थी । पग-पगपर दम फुलाती चल रही थी । ऊपरसे दर्जनों वृद्ध-युवा कश्मीरियोंका, कांगड़ियोंका कारवाँ नीचे आ रहा था । वे पीठपर दो-दो तीन-तीन मन लकड़ीकी शहतीरें लादे, कमर झुकाये, लाठी टेकते नीचे उतर रहे थे । उनके पीछे कुछ दूर एक परम सुन्दरी पहाड़ी तरुणी आ रही थी, पीठपर दो मनकी शहतीर लादे, अपने नवजान शिशुको भोलीमें पेटसे बाँधे, लाठी टेकते, और उसके पीछे एक सत्तरसाला बुढ़िया झुर्रियोंसे भरे चेहरेसे बारम्बार पसीना पोंछती, शहतीरके बोझसे दबी-सी, रेंगती-सी आ रही थी ।

“आँखोंपर विश्वास नहीं हो रहा !”—राधा भरे दिलसे बोली—“हे भगवान्, यह क्या दिखा रहे हो तुम ?”—कहते-कहते उसकी आँखें भर आईं ।

राजनने मुड़कर देखा । भीतरसे आद्र होकर भी ऊपरसे उदासीन स्वरमें वह बोला—“रोनेसे क्या बनता है राधा ! तुम रो पड़ीं, लेकिन तुम्हारे कण्ठामय समदर्शी भगवान् इन दीनोंकी दशापर कमी नहीं रोते ।”

राधा कुछ न बोली । चुपचाप आँसू पोंछती चलती रही । वह ऐसे दृश्य तो कई बार देख चुकी थी, किंतु वह देखकर भी नहीं देख पा रही थी । उसके दिल और दिमागको पहले यह सब-कुछ स्वाभाविक लगा करता । किंतु आज उसकी मनोदशा कुछ और ही हो रही थी । इस समय ऐसे दृश्य उसके हृदयके मानवीय तारोंपर आघात कर रहे थे । क्योंकि इस समय राजनके व्यक्तित्वसे हृदय उसका पूर्णतः

प्रभावित हो चुका था ।

“राधा !—राजनने फिर कहा—“उस तरुणी और वृद्धाकी वक्षोपर तुम्हें सलाई आ गई, लेकिन इतना याद रखो कि फिर भी ये समाजपर भार नहीं हैं । हाँ, इनका अपना जीवन अवश्य भार बना हुआ है । तुम्हारे समाजकी उन स्त्रियोंसे ये लाख दर्जें सम्मान्य हैं जो अपने पति, परिवार और समाजपर वृथा भार हैं । जो पुरुषोंकी उपयोग्य वस्तुके सिवा और कुछ नहीं हैं ।”

राधा जरा अप्रतिभ हो गई । संकुचित स्वरमें बोली—“मानती हूँ प्राणकी बात । लेकिन आपकी नजरोंमें सम्मान्य होनेके नते ही क्या यह दशा हमेशा कायम रहनी चाहिये ? जिसने मनुष्यका हृदय पाया है वह तो इससे कभी सहमत न होगा मास्टरजी !”

राधा कह तो गई, पर ठिठक गई ।

“हाँ राधा ?”—राजनने हँसकर जवाब दिया—“तुम्हारा मास्टरजी अभी मनुष्यका हृदय नहीं पा सका है ।”

“नही मास्टरजी !”—राधाने व्याकुल होकर घबड़ाहटभरे ढंगसे झुककर उसके पैर पकड़ लिये—“मेरा मतलब यह नहीं । मैं तो, मैं तो.....”

वह आगे बोल न सकी । राजन उसकी दशा देख घिघल गया । बड़े धीमेसे राधाका हाथ पकड़कर उसे पार्सके टीनी छातमें ले गया । बीचपर उसे बगलमें बैठकर उसकी पीठपर हाथ सहलाते हुए बोला—“भगली, आज तुम्हें हो क्या गया है राधा ? राह-चलते पैर पकड़ लेना ? यह तुम-जैसी स्थितिकी स्त्रियोंके लिये शोभाजनक नहीं !”

आने मास्टरजीके बगलमें इतने निकट बैठकर, आ नी पीठपर उसके हाथका स्नेहिल स्पर्शका वह अनुभव करने लगी । उसके मरे-मुरझाये शरीरपर मानो अमृतके छीटे पड़ने लगे । उसका दिल कर रहा था इसी स्थितिमें रहनेको, किन्तु कुछ सोचकर अट जरा सरककर वह सीधी होकर बैठ गई ।

राधा गद्गद स्वरमें बोली—“अपन गुरुके पंर छूना क्या अनुचित है मास्टरजी ?”

राजन हँस पड़ा—“ऐसा करके तो अपने साथ गुरु-महाराजको भी उपहास्य बना दोगी राधा !”—फिर उठकर खड़ा होता हुआ—“अच्छा, चलो ! देर होगी ।”

“मेने तो मखौल किया था राधा !”—चलते-चलते राजनने फिर कहा—“तुमने क्या बुरा कहा, कि जिसने मनुष्यका हृदय पाया हो, वह कैसे किसी मनुष्यको उस दशामें देखना पसन्द करेगा ? लेकिन सिवा इसके अभी और कोई चारा भी तो नहीं ! रोटी तो खानी ही हुई ? भूखकी आग तो नहीं न सही जाती ? बस, समझ लो कि ये लोग किसी तरह जीवनकी गाड़ीको धकेले जा रहे हैं !”

राधा कुछ निराश होकर बोली—“तो यह वशा हमकी सदा जारी रहेगी ?”

“नही राधा !”—राजनने दृढ़ स्वरमें जवाब दिया—“जिन लोगोंने मनुष्यका हृदय पाया है, वे जान हथेलीपर लिये दिन-रात इस प्रयत्नमें लगे हैं कि इन्हें और इन-जैसे अन्य करोड़ोंको मनुष्यकी दशामें लानेकी स्थिति लाई जाय । इन्हें मनुष्यकी तरह रहनेकी सुविधा और साधन प्राप्त हों । यह अन्धेरगदी सदा चालू नहीं रहेगी राधा !”

राधाका हृदय आश्वस्त हुआ ।

राजनने फिर कहा—“बगरोटेकी इन चोटियोंपर देवदारुके हरे निकुंजोंमें विरे बंगलोंमें समाजका वह तबका रहा करता है जो समाजपर यूँथा भार है । उसकी कोई उपयोगिता नहीं है, यद्यपि अपनी उपयोगिताका ढोल वह खूब पीटा करता है । लेकिन जिन लोगोंके बिना समाजका बहुत-कुछ बिगड़ सकता है, जो समाजके संजीवन स्रोत हैं, उन्हें न खानेकी पेटभर अन्न, न पहननेकी तनभर काड़ा, न रहनेकी पूरी जगह ! यही है तुम्हारे समाजका न्याय और समाजका आदर्श ! और यही है तुम्हारे करुणामय जगन्नियंता भगवानकी इच्छा !”

राधाने एक बार तिरछी आँखोंसे राजनको देखा । फिर अपेक्षाकृत दृढ़ स्वरमें बोली—“अब समझ गई मास्टरजी, कि स्वर्ग और नरक किसी सातवें आसमानपर नहीं, इसी पृथ्वीपर हैं । साथ-साथ हैं । बगरोटे की इन सड़कोंपर कुछ-लोग अपने भरे पेटमें भूखकी आग जगानेकी खातिर ही चक्कर लगाते हैं, और कुछ-लोग भूखकी आगसे मजबूर होकर पशुओंसे भी बुरा जीवन बितानेपर लाचार होते हैं !”

राजन कुछ न बोला । चुपचाप चलता रहा । आगे चलकर फिर बढ़ाई शुरू हुई । सड़क सँकरी और कच्ची थी । राजनने राधाकी ओर देखकर कहा—“तुम तो थक गई होगी राधा ?”

“नहीं मास्टरजी !”—राधा प्रसन्न स्वरमें बोली—“आज थकावट बिल्कुल महसूस नहीं होती !”

कुछ दूर आगे दो धावड़ी कन्याएँ जा रही थीं । मँली सूथन और जामेपर कसकर कपड़ेका पेटा बँधा था । और पीठसे कोयलेकी खाली किरिड़ (ठोकरी) बँधी थी । बड़े चावसे छोलेकी चाटका स्वाद लेती दोनों धीरे-धीरे ऊपर बढ़ रही थीं । एकने पीछे फिरकर देखा और बादमें दूसरीने भी । दोनों ही शरमा गईं । चाटके पत्तेको भट्ट पाकेटमें छिपाकर जामेकी आस्तीनमें मुँह पोंछने लगीं ।

राधा और राजन निकट आये । दोनों हाथ जोड़कर बोल पड़ीं—
“राम-राम, बाबूजी !”

“राम-रामजी !”—राजनने भी मस्कुराती आँखोंसे ताककर जवाब दिया—“परसो ? चंचोलो ? बेच आई कोयला ? कितने पैसे मिले आज ?”

“दो-दो आने बाबूजी !”—दोनोंने निर्धोक जवाब दिया ।

राधाने मुड़कर एक बार बड़े गौरसे उन्हें देखा । फिर आगे बढ़ चली । चलते-चलते ही बोली—“कहाँ गई थीं कोयला बेचने दोनों ?”

“डलहौजी ।”

“डलहौजी ?”—राधा आश्चर्यसे आँखें फैलाकर बोली—“इतनी

दूर ? सिर्फ दो आनेकेलिए ?”

“अभी दूरी तुमने देखी कहीं राधा ? उसहीजी सदरसे लकड़-मंडी छः भील, और खजिआर बारह भील । कोयलेके व्यापारपर जीनेवाले बावड़ियों को प्रायः रोज इतनी दूर रेंगना पड़ता है । पर मिलता इतना भी नहीं कि भरपेट खाकर मनुष्यकी तरह रह सकें !”

“मास्टरजी !”—राधा बोली—“इतनी सुन्दर लड़कियोंको इस इशामें देव कलेजा फटता है !”—कहते-कहते उसका गला भर आया ।

राजनने राधाकी ओर देखा । फिर बोला —“जरा छातीपर हाथ रखकर बताओ तो राधा, कि दिन-रात सुन्दरताके कृत्रिम साधनोंसे अपनेको सजानी रहकर भी, सुन्दर खाकर और सुन्दर पहनकर भी, तुम्हारे समाजकी फैशन-परस्त परियां इनसे अधिक सुन्दर होती हैं ?”

“नहीं मास्टरजी !”—राधा कुछ धृष्टाके स्वरमें बोली—“उनका नाम न लीजिये ! वहाँ सिवा दिखावाके कुछ नहीं होता । आवारमें दिखावा, व्यवहारमें दिखावा, बिवारमें दिखावा । हर चीजमें दिखावा है जी ! और इस दिखावेकी कलामें जो जितना ही पट्टा वह उतना ही सम्मान्य, उतना ही सभ्य और उतना ही समाजका शिरमोर !”

राजनने इस बार राधाको नीचेसे-ऊपर-तक देखा । वास्तवमें आज उसके बदनपर बनावका नाम न था । चेहरेपर रास्तेकी थका-वटसे निचलते पसीने और उनमेंसे रह-रहकर भाँकता हुआ नैसर्गिक सौन्दर्य । अब उनके चेहरेकी रंगत भी पलट आई थी । राजनको अपनी ओर इस प्रकार ताकते देख वह शरमा गई । सहसा लज्जाकी उभरी लालीने उसके सौन्दर्यमें चार-चाँद लगा दिये । अचानक उसकी पलकें नीचे झुक चलीं ।

अब वे लकड़मण्डी पहुँच गये । चारों ओर देवदारुके सघन वनों-से ढकी पर्वत-शिखरोंपर प्रकृति मानों नाच रही थी ! राधा बोल पड़ी—“अहा ! यह तो स्वर्ग है मास्टरजी !”

“हाँ !” राजनने सहमति जताई—“स्वर्ग तो अवश्य है !”

अब राजन लकड़ीकी ढालके बगलसे नीचे खड़ुकी ओर बढ़ा । लकड़ी और मिट्टीकी छत ढालकर बने विचित्र ढंगके दर्जनों धरोहरोंसे धुआँ निकल रहा था ।

“यह क्या है मास्टरजी ?”—राधाने आश्चर्यभरे स्वरमें पूछा—
“यह धुआँ कँसा निकल रहा है ?”

“वे घर हैं राधा ! उनमें लोग रहते हैं ।”

“ऐं ! वे घर हैं ? उनमें लोग रहते हैं ?”

राधा बड़े कौतूहलसे आगे बढ़ी । उसे ऐसा लगा मानो एकाएक वह किसी दूसरी ही दुनियामें आ पहुँची हो !

वह फिर बोली—“इनमें आदमी रहते हैं ?”

राजनने कुछ जवाब न दिया । जवाब देने की जरूरत न थी । गोरे-गोरे सुन्दर चेहरेके अनेक नंग-धडंग बच्चे इनकी ओर दौड़ पड़े । सब राजनको घेरकर खड़े हो गये । हाथ-मुँहमें कोयलेकी धूल लपेटे लालच-भरी आँखोंसे उसे देखने लगे । राजनने पाकेटसे मिठाईकी पोटली निकाली । जवा-जवा प्रसाद वितरणकर उनकी गालों और ठोडियोंपर प्यारकी हल्की चपत लगा-लगाके सबको विदा किया । इस बीच राधा उन घरोंके दरवाजोंपर जा-जाके भीतर झाँकती रही । धोर अन्ध-कूरा । धुएँसे भरा हुआ ! सिवा दरवाजेके हवाके निकलसका कोई अवकाश नहीं ! पाँचक मिनट आँखें फाड़-फाड़कर देखनेपर भीतर का कुछ अंश दिखाई देता । फटे-नीथड़े गन्दे और मैले कुछ काड़े, मिट्टी के घड़े, चून्हीं-पर चढ़े पीतल और आलमोनियमके बर्तनोंमें दान और चावन । कोई स्त्री आटा गूँद रही थी, तो कोई बरतन माँज रही थी, और कहीं सारा परिवार हाथोंपर नमक-प्याजसे रोटी खा रहा था । राधा को देख कुछ स्त्रियाँ बाहर भी निकल आईं । अपने सुन्दर मुखड़ों को गोदना गुदा-गुदाकर बिहून बनाये हुए; नाकोंमें छक और लुका लटकाये हुए । वे सब धूमिल आँखोंसे बड़े आश्चर्यसे राधा को देखने लगीं ।

अब राजन एक कमरेकी ओर बढ़ा । धुआँ उसमें नहीं था, किन्तु

नक्शा बही, हवाके निकासका एकमात्र अवकाश वही चौदह इंच चौड़ा एक दरवाजा। झुककर उसके भीतर जाकर अपना बिस्तरा फैलाकर वह बैठ गया।

“आगो राधा, यहाँ बैठ जाओ !”—उसने उसीपर राधासे बैठनेका संकेत किया।

राधाका मुखड़ा लाल हो उठा था। धुएँसे आकुल आँखोंको पोंछती उस बिछीनेर जा बैठी। नाकसे बहते पानीको रुमालसे पोंछकर बोली—“हः ! बिना देखे विश्वास करना कठिन था कि आदमी ऐसी जगहोंमें रहता है ! यह तो सुप्ररोका खोभाड़ है मास्टरजी !”

राजन कुछ न बोला। चुचाप बाहरकी ओर देखता रहा।

“ऐसी दशामें रहकर भी इनकी-चेतना विद्रोह नहीं करती मास्टरजी ?”

“चेतना हो भी तब न ? वह तो मर चुकी है, या अन्ध-विश्वास और संस्कारके मारू बोझोंके नीचे दबी हुई है, मूर्छित हो पड़ी है। उसकी मूर्च्छा टूटनेपर जब-तब हृदय छटपटाता है, कराहता है, व्याकुल होता है। लेकिन अन्तमें यह सोचकर कि अमीर और गरीब अपने भाग्यसे होते हैं, ईश्वरके घरसे ही बनकर आते हैं, वह चेतना पुनः मूर्छित हो जाती है।”

“लेकिन आप कैसे रह रहे हैं यहाँ ? आपकी चेतना तो मरी या मूर्छित नहीं है ?”

“हाँ राधा ! इसीसे तो रह रहा हूँ यहाँ ?”

राधाको यह तर्क अटपटा लगा। बोली—“यह भी कोई दलील है मास्टरजी ? भला जिसके दिमाग दुस्त होना.....”—कहते-कहते वह रुक गई।

राजन बड़े जोरसे हँस पड़ा—“ठीक कहती हो राधा ! मैं पागल जो हूँ !”

राधा पुनः अप्रतिभ होगई। अपनेको सम्हालती हुई निहोराके स्वरमें बोली—“नहीं मास्टरजी, ऐसा नहीं ! मेरा मतलब यह नहीं !

आप तो भट कुछ और ही ग्रंथ निकाल लेते हैं !”

“घबड़ाओ मत राधा !”—राजनने उसे आश्वासित किया—“तुम अपने अन्तर्गतके संस्कारोंके बलपर जैसा-कुछ समझ रही हो, सब ठीक है, सही है। लेकिन मेरे विचारमें जिस प्रकार इन गरीबोंकी चेतना मूर्छित हो पड़ी है, उसी प्रकार अमीरोंकी भी। उनके हृदयपर स्वायं और सस्कारकी विषली काई जमी हुई है। उनकी चेतना भी नष्ट हो चुकी है। और इन-सबकी मूर्छित चेतनाको जगा कर फिरसे इनके हृदयोंमें प्राण भरना ही राजनके जीवनका लक्ष्य है राधा !”

“और इसीलिये आप इनमें रहा करते हैं ?”

“हाँ राधा ! दूर-दूरसे भाषणोंके तीर बरसा कर, लेखोंके अम्बार लगाकर इनकी मूर्छाको नहीं तोड़ा जा सकता। गरीबोंके नामपर भाषण देकर, कलम चलाकर उनके नेता और हित-विन्तक बन बैठता आज्ञा पेशा बन गया है। लेकिन सोचना तो यह है कि उन भाषणों और लेखोंको अशिक्षाके गर्तमें पड़े हुए कितने गरीब सुन या पढ़ पाते हैं ? इनसे दूर रहकर, इनके जीवनमें घुले-मिले बिना इनकी सदियोंकी मूर्छाको नहीं तोड़ा जा सकेगा राधा ! और जब-तक यह नहीं होता, इनके उद्धारकी बात, इन्हें मनुष्यकी दशामें लानेकी बात हवाई उड़ान है, दुराशामात्र है !”

इतनेमें एक पचास-साला घावड़ी बुढ़िया पीठपर कोयलेका बोझ लादे, पसीनेसे तर-बतर दरवाजे पर आ पहुँची। कोयलेकी बोरी एक तरफ पटककर पसीना पोंछती अन्दर कमरेमें पहुँची।

“राम-राम माईजी !”—राजनने अभिवादन किया।

बुढ़ियाको पता न था कि कमरेमें कोई बैठा भी है। उसने भी चौंककर उधर देखा। बोली—“कल रात कहाँ रहे बाबूजी ? बड़ी देरतक रास्ता देखती रही।”

फिर बुढ़ियाको एक दूसरी सफेद छाया दीखी। उसे जरा गौरसे घूँट देखने लगी।

“अपने ही आदमी हैं माई !”—कहकर राजनने उसका कौतूहल निवृत्त किया ।

अब बुढ़िया चट चूल्हेके पास आ गई । भाग सुनगाती हुई बोली—
“रोटी खाओगे न बाबू ?”

“हां माई ! खाऊंगा !”

अब राजनने राधाको प्रश्नभरे नेत्रोंसे देखा । राधा समझ गई । वह भी बोली—“मैं भी खाऊंगी माई !”

“अच्छा !”—कहकर बुढ़िया आंच पजालने लगी ।

“अच्छा माई !”—राजनने बुढ़ियासे कहा—“तुम खाना बनाओ । हम घटाभर बाद आके खा लेंगे ।”—कहकर वह उठ खड़ा हुआ ।

“हां बाबू !”—बुढ़िया बोली—“जाओ, डायन-कुण्डकी सीर कर आओ ! यहाँ धुएँमें बैठकर क्या करोगे ?”

राजन और राधा कमरेसे निकल पड़े ।



[२७]

आज काशीनाथ दिनभर नाराज रहा । राधासे भी, राजनसे भी । पंचपूलेकी दुर्घटनाके बाद कुछ घंटोंके लिये राजनके प्रति वह अवश्य कृतज्ञ रहा, लेकिन बादमें वह भाव उसका कायम न रह सका । आज राधा जब बिना उससे पूछे राजनके पीछे चल पड़ी, उसकी मनोदशा कुछ और ही हो चली थी । वह राजनको जैमे प्रतिद्वन्द्वीके रूपमें देखने लगा था । काशीनाथ इस समय मानव-प्रकृतिमें घोर परिवर्तनका प्रतीक बना हुआ था । कहीं वह पहलेका सौहार्द और सरलता, और कहीं यह घोर अघःपात और स्वार्थपरता ? जब प्रथम-प्रथम राजन और राधाका परिचय हुआ था, गुरु-शिष्याके रूपमें, राधाके हृदयमें राजनके प्रति अनुराग-भाव जगानेमें काशीनाथका भी हाथ था । वास्तवमें वह सोचा करता कि राधा राजनको बरे । वास्तवमें वह राजनको दिलसे प्यार करता था । लेकिन जब कमला उसे दगा दे गई, काशीनाथ निराश हो चला । जो प्रेम-सूत्र एकके साथ निश्चित रूपसे बंधा रहकर उसकी कुप्रवृत्तियों का नियमन कर रहा था, वही जब विच्छिन्न हो चला, उसकी कुप्रवृत्तियोंके नियामक तत्त्वोंमें शीथिल्य आने लगा । और अन्तमें वह इस स्थितिमें भी पहुँच गया कि अब राधाको लेकर वह राजनसकको अपना प्रणय-प्रतिद्वन्द्वी समझने लगा था । प्रणय-संसारमें ठोकर खाकर उसके हृदयके उसम तत्त्वतक विनष्ट हो चले थे ।

आज संध्याको राजन जब राधाके साथ उसकी कोठीपर पहुँचा, काशीनाथके हृदयमें विरक्तिकी बाढ़ उमड़ पड़ी, लेकिन बड़ी कठिनाईसे अपने भावको वह दबा पाया ।

“आज तो बड़ी गहरी सैर की तुम-दोनोंने ।”—वह राजनसे व्यंग्यभरे स्वरमें बोला—“कहीं-कहींकी खाक छान ढाली आज ?”

“उस दुनियाकी काशी,”—राजनने भी उसी स्वरमें जवाब दिया—
“जहाँ तुम-लोगोंकी आँखें कभी पहुँच नहीं पातीं।”

“वह कौन-सी दुनिया है भाई ?”

“क्या करोगे तुम उस दुनियाकी बातें पूछकर ?”

“दिलमें उफान आनेपर कभी मैं भी उस दुनियाकी खाक छान आया करूँगा।”—कहकर उसने व्यंग्यभरी मुस्कुराहटसे एक बार राधाको देखा।

“वास्तवमें तुम्हारे लिये वह पुण्य-पर्व होगा काशी,”—राजनने जवाब दिया—“जिस दिन उस दुनियाकी तुम-जोग खाक छाना करोगे। समाजके लिये सचमुच वह बड़े सौभाग्यका दिन होगा जिस दिन गरीबोंकी दुनियाकी खाक छानकर, उनमें अपनेको मिलाकर, अमीर अपने पापोंका प्रायश्चित्त करने लगेंगे।”

काशीनाथ चिढ़ गया। उसके चेहरेपर विरक्तिकी रेखा उभर आई।

“हाँ भई !”—मुस्कुराते हुए व्यंग्यभरे स्वरमें वह बोला—“आज-कल अमीरोंको कोसनेकी हवा चल पड़ी है। खूब कोसा करो। लेकिन मुझे तो इसमें सिवा ईर्ष्याके, सिवा फस्ट्रेशन (निराशा) के और कुछ नजर नहीं आता। मैं भी जब आइ० सी० एस० में फेल हो गया था, उस आँहदे और ओहदेवालोंको कोसने लगा था।”

इस बार राजनक बजाय राधाने मोर्चा सँभाला। उससे अब तटस्थ रहा न गया। वह भीतरसे चिढ़ चली थी। बोली—“एक वह व्यक्ति है, जो अपनेमें हर प्रकारकी क्षमता रखते हुए भी अपनी सारी महत्वाकांक्षाओंको, अपनी सारी सुनहली संभावनाओंको देश और समाजपर उत्सर्ग कर देता है; और एक वह, जो देश और समाजसे कन्नी काटकर अपनी व्यक्तिगत रंगीनियोंमें ही उलझा रहता है, उन्हींके पीछे फिरा करता है; दोनोंमें महान कौन है भाई-साहब ?”

राधाकी इस व्यंग्योक्तिसे काशीनाथ मन-ही-मन तिलमिला उठा।

चेहरेपर सहसा उभरी हुई गुस्सेकी लालीको दबाकर बोला—“देश और समाजपर अपनेको उत्सर्ग करनेकी भावनामें भी महत्वाकांक्षा छिपी होती ही है। उसमें भी नेता बनकर नाम कमानेकी, जनतामें पुजानेकी महत्वाकांक्षा होती ही है। जब कोई इस महत्वाकांक्षामें भी असफल हो जाता है, अन्तमें चारों ओरसे निराश होकर नेताओंको, बड़े-बड़े लोगोंको, अमीर-उमरावोंको कोस-कोसकर अपनी निराशाकी आग बुझानेकी कोशिश करता है।”

“मानता हूँ भाई !”—अब राजनने मुस्कुराकर जवाब दिया—“तुम्हारी इस दलीलके जोरको सिवा स्वीकार करनेके और कोई चारा भी तो नहीं। लेकिन एक बात पूछता हूँ तुमसे, कि जब तुमने अभी जीवनमें कदम ही रखा था, पूरे नवयुवक थे, उन दिनों किस निराशासे आहत होकर तुम दिन-रात अमीरोंको कोसा करते, गरीबोंके लिये काम करनेका सकल्प करते ?”

काशीनाथ क्षणभरके लिये अप्रतिभ हो गया। लेकिन भट सम्हल गया। बोला—“वह तो बचपन था राजन ! दुनिया देखी न थी, कोई अनुभव न था। लेकिन अब, जब बुद्धिका बल देकर सोचता हूँ तो साफ दिखाई देता है कि वह-सब बचपनकी बकवास और बहकके सिवा और कुछ न था। हमेशासे दुनिया ऐसी ही रही है और ऐसी ही रहेगी भी। अमीर भी रहेंगे, गरीब भी रहेंगे। इसे बदलनेकी बात करने-वालोंको अब मैं सिवा खफतीके और-कुछ नहीं समझता राजन !”

“शाबाश काशी,”—राजन एक भ्रवज्ञाकी हँसी हँसकर बोला—“शाबाश ! दिन-रात दलीलोंकी दुनियामें सँर करनेवाले एक बैरिस्टरकी दलीलको दाद तो देना ही पड़ेगा !” अब वह एकाएक जरा आवेशमें आकर बोला—“लेकिन पूछता हूँ तुमसे, कि सिवा इन दलीलोंके तुम-लोगोंने दुनियाको कुछ दिया भी है, दे भी सकोगे ? काश, तुम्हारी इन दलीलोंमें दुनियाको ऊपर उठानेकी क्षमता होती ! सत्यके रहस्यको स्पष्ट करनेकी शक्ति होती ! बड़े दुखके साथ कहूँगा कि दलीलकी रोटी

खानेवाले तुम दलीलबाजोंने सदासे संसार और समाजको गिराया ही है, गिराते ही जाओगे ! तुम-लोग समाजके लिये छूतकी एक घातक बीमारी हो ! तुम-लोगोंके जीवनकी गंदगीसे निरन्तर छूतके वे जहरीले कीटाणु पैदा हो रहे हैं, जो समाजकी सारी स्वच्छता और शुभ्रताको विनष्ट किये जा रहे हैं !”

राजनके चेहरेपर अब भी आवेश और विक्षोभकी फड़कती रंगीनी मौजूद थी । इस समय उसकी भावनाको उभाड़नेमें काशीनाथका हाथ था । और उत्तर-प्रत्युत्तरमें उत्तरोत्तर उसकी भावना उभड़ती ही गई । सभ्यताकी दृष्टिसे इस उभड़ी हुई भावनापर हल्केपनका आक्षेप किया जा सकता है, पर इस हल्केपनके भीतरसे भट्टहास करती हुई सचाईसे तो इन्कार नहीं किया जा सकता ? सभ्यता आखिर है क्या चीज ? कृत्रिमताके घने पर्देमें सत्यको छिपा देनेका एक मोहक आवरण ही तो ? सो, इस समय ये दोनों ही बाल-सखा कृत्रिमताके पर्देसे बाहर आकर अपने मनका मलाल निकालने लगे । किन्तु, इसके अतिरिक्त इस ‘तू-तू में-में’ में कुछ वैयक्तिक राग-द्वेष भी काम कर रहा था । राजन उस अपमानको आज भी नहीं भूल सका था जो जेलसे रिहा होनेके बाद लाहौरमें बैरिस्टर काशीनाथसे उसकी कोठीपर मिलते समय उसने अनुभव किया था । और इधर, इस समय काशीनाथके दिलमें राजनके प्रति ईर्ष्याकी आग इसलिये धधक उठी थी कि राधा, उससे विरक्त हो एकाएक बड़े वेगसे अपने मास्टरजीके प्रति अनुरक्त हो चली थी ।

मारे क्रोधके काशीनाथका चेहरा जाल हो उठा । कांपते स्वरमें उसने पूछा—“इसका मतलब ?”

और राजनने उसके क्रोधकी रंचमात्र भी परवाह न कर जवाब दिया—“इसका मतलब तो बिल्कुल साफ और सीधा है काशी ! तुम वकील हो । पैसेपर अपनी बुद्धि और विवेकको बेचा करते हो । जिस प्रकार वेश्याएँ शरीर बेचकर समाजको गन्दा बनाती हैं, वसी प्रकार

तुम-सोग बुद्धि और विवेकको बेचकर नैतिक गंदगीका प्रचार करते हो । फिर भी कहना ही पड़ेगा कि पेशेवर वेश्याएँ पेशेवर वकीलोंसे लाख दर्जे अच्छी हैं । वे समाजको उतना भ्रष्ट नहीं बनातीं जितना कि पेशेवर वकील ।”

काशीनाथ थर-थर कांपने लगा । “कमीनेपनकी भी हद होती है !”—वह कांपते स्वरमें बोला—“छी ! यह तुम्हारी जबान है ! तुम मेरे मित्र हो ! नहीं तो.....”

“नहीं तो क्या कर लेते तुम ? गोली दाग देते ? जबान खींच लेते ?”—और कहकर राजन बड़े जोरसे ठठाकर हँस पड़ा ।

काशीनाथ क्रोधमें पागल बनकर भी भट्ट सम्हल गया । गोली दागनेका नाम सुनते ही उसे कलकी दुर्घटना याद आ गई । उसे राजनके वे शब्द याद आ गये कि अब-तक कितने ऐसे कुत्ते राजनकी गोलियोंके शिकार बन चुके हैं और बमते रहेंगे । राजनका चेहरा अचानक उसकी आँखोंमें भयानक बन उठा । उसे लगा कि राजन उसे भी गोली मार देगा ! भय-विचलित आँखोंसे जरा बगलें भाँककर वह चुपचाप राजनको देखने लगा ।

उसके चेहरेपर आकस्मिक परिवर्तनसे राजनको बड़ा आश्चर्य हुआ । राधाको भी । किन्तु बिना उसपर ध्यान दिये वह फिर बोला—“अप्रिय सत्यको सुनकर क्रोध होना स्वाभाविक है काशी ! वकालत पेशा समाजमें सम्मान्य माना जा रहा है । फिर एक वकीलके सामने उस पेशेपर आक्षेप करनेपर उस वकीलका गुस्सा न होना ही अस्वाभाविक होगा । लेकिन जरा छातीपर हाथ रखके सोचो तो दोस्त, कि तुम्हारा पेशा समाजके प्रति कैसा घोर अपराध कर रहा है ?”

“क्या अपराध ?”—काशीनाथने सहमे स्वरमें पूछा ।

“अपराधोंकी तालिका पेशकर मैं समय नष्ट नहीं करना चाहता, लेकिन पैसेके लिये समाजकी नैतिकता भ्रष्ट करनेकी हरकतोंमें दिन-रात लगे रहना क्या सामान्य अपराध है ?”

“कैसे ?”

“ऐसे कि, वकीलोंका काम है पैसे लेकर न्यायकी नज़रोंमें किसी भी पक्षको जितानेकी कोशिश करना। वह इस बातकी कतई परवाह नहीं करता कि जिस पक्षकी वह वकालत कर रहा है वह अपराधी है या निरपराधी। उसका एकमात्र धर्म पैसा है, अपनी फीस। न्यायालयके सामने अपने मतलबकी तरह-तरहकी झूठ बोलनेकी शिक्षा अपने मुवक्किलोंको वह देता है। और इस प्रकार अपनी नैतिकता और विवेकपर लात मारकर सारे समाजमें अनैतिकता और अविवेकका प्रचार करता है। और तुम-वकीलोंके प्रतापसे यह झूठकी बीमारी फैलते-फैलते समाजके हर अंगको आज गन्दा बना चुकी है। क्या गाँव, क्या शहर सर्वत्र आज झूठ, फरेब और दगाका बाज़ार गर्म हो उठा है।”

राजनके इस तर्कको सुनकर बैरिस्टर काशीनाथकी अकल भी गुम हो गई। राधाको मानो आज नई आँखें मिलीं। इस क्षण काशीनाथके समक्ष भी सत्य मानो नंगा नाच रहा था। वह चुप रहा।

राजनने फिर कहा—“तुम्हारे इस वकालत पेशेकी सबसे बड़ी देन है सत्यकी हत्या। सच्चा समाज और सच्चा समाजशास्त्री कभी इस अपराधको क्षमा न कर सकेगा। वेश्याएँ तो भला शरीरका ही व्यापार करती हैं, वे सत्यकी हत्या नहीं करतीं, लेकिन तुम-लोग तो बुद्धि और विवेकका व्यापार करके नैतिक पतनको पराकाष्ठा-तक पहुँचा चुके हो दोस्त !”

इतने कटु आक्षेपपर भी काशीनाथ क्रुद्ध होनेका साहस न कर सका। वह चुपचाप अपमानकी इन कड़वी धूँटोंको पीता रहा। लेकिन अब उसके माथेमें एक सूझ उभरी। वह बल देकर बोला—“तुम बुद्धिके व्यापारको निन्दित बता रहे हो, लेकिन यह क्यों नहीं सोचते कि संसारके बड़े-बड़े वैज्ञानिक इस बुद्धिका ही व्यापार तो करते हैं ?”

“साबास !”—राजनने व्यंग्यभरे स्वरमें जवाब दिया—“वकीलों-को वैज्ञानिकोंकी ओरणीमें ले जाकर तुमने तो भीर भी कमाल कर दिया दोस्त ! लेकिन यह नहीं सोचा कि वैज्ञानिकों और वकीलोंके बौद्धिक व्यापारमें आकाश-पातालका अन्तर है । वहाँ सत्यकी हत्या नहीं होती, बल्कि सत्यकी खोजमें ही वे दिन-रात लगे रहते हैं । उनकी बौद्धिकतामें यदि देवका अधिवास है तो तुम्हारी बौद्धिकतामें शैतानका । एक जगह प्रकाश है तो एक जगह घोर अंधकार !

वकीलोंकी बौद्धिकताको शैतान और अंधकारसे उपमा देते सुनकर काशीनाथका दिल जल उठा । पुनः उनका चेहरा लाल हो उठा । इस बार वह अपनेको सम्हाल न सका ।

“तुम्हारी मति तो नहीं मारी गई राजन ?”—वह खिसियाकर बोला—“यदि वकीलोंकी बौद्धिकतामें शैतानका निवास होता, तो ये ही वकील आज देशको जगा कैसे रहे हैं ? क्या तुम नहीं जानते कि आज देशके सभी बड़े नेता वकील हैं ? इस नव-जागरणके सबसे बड़े नेता गांधीजी भी किसी समय वकील ही थे ? आज वे सत्य और अहिंसाके माने हुए अवतार हैं ? फिर भी यदि तुम वकीलोंके चरित्र और पेशेपर यह गन्दा आक्षेप किये जा रहे हो, तो मैं समझता हूँ कि यह गन्दा दिल और गन्दा दिमागके सबूत पेश करनेके सिवा और कुछ नहीं है ?”

“गांधीजी किसी समय वकील थे ।”—राजनने मुस्कराकर जवाब दिया—“सो भी एक असफल वकील । उचित तो यह था कि उस बूढ़े-को इस मामलेमें न घसीटते तुम । यह तो मैं भी मानता हूँ कि देशके इस नव-जागरणका श्रेय गांधीजीको है । हाँ, यह और बात है कि यदि गान्धीजी न होते इसका श्रेय किसी औरको प्राप्त होता । नव-जागरण तो हर हालतमें होना ही था । यह तो युगकी पुकार है । आज सारे संसारमें जागरणकी जो नई लहर चल पड़ी है, उससे हिन्दुस्तान ही कैसे अछूता रहता ? और रह गई सत्य और अहिंसाके

अवतार होनेकी बात । सो उनके सत्य और अहिंसाके उन्हींके द्वारा अवतक इतने अर्थ किये जा चुके हैं कि उनके सही रूपको समझना बड़ा कठिन बन गया है । यहाँ-तक कि गांधीजीके सच्चे शिष्योंतरुमें उसके सही रूप और सही अर्थके सम्बन्धमें मतभेद देखा जाता है । और हम-जैसे शिर-फिरोकी नजरोंमें तो राजनीतिमें सत्य और अहिंसाके नारेमें सिवा कूटनीतिकी कुटिलताके और कुछ होता ही नहीं मित्रो !”

“छी राजन !”—काशीनाथ धिक्कारभरे स्वरमें बोला—
“अपने मान्य नेताओंकी नीतिपर यह आक्षेप ? अब मुझे जरा भी सन्देह न रहा कि तुम्हारा दिल और दिमाग गन्दा बन चुका है । जब तुम्हें महात्माजी-जैसे महापुरुषकी नीतिमें भी कुटिलता नजर आती है, तो तुम क्यों नहीं औरोंपर गंदे आक्षेप करोगे ?”

राजन हँस पड़ा—“तुम्हारी इस नई श्रद्धा-भक्तिको जरूर दाद दूँगा दोन्त ! लेकिन उस कूट-नीतिके शिकार सुभास-वसुसे जाकर कोई अकेलेमें पूछे तो बड़ी आसानीसे पता चल जाय उसका सही अर्थ । आखिर किस अपराधपर एक इशारेपर उस बेचारेको दूधकी मक्खीकी तरह कांग्रेससे निकाल फेंका गया ? सुभास वसुकी न देश-भक्तिपर किसीको सन्देह था, न चरित्रपर ? उसका अपराध केवल यही तो था कि वह गांधीजीका एकान्त अंधभक्त न था ?”

काशीनाथ चुप हो गया । सत्यकी चमकती चिनगारी मानो उसकी आँखोंमें नाच गई ।

“काशी !”—राजनने पुनः मुस्कराते हुए कहा—“तुम-जैसे लोग तो अपने घरोंमें, बलबों और सोसाइटियोंमें इन मान्य नेताओंकी नीति, नीयत, अकल और अभिजाताकी मखौल ही उड़ाया करते हैं, फिर बड़ा आश्चर्य लग रहा है तुम्हारी इस आकस्मिक श्रद्धा और भक्तिको देखकर ? आखिर बात क्या है ?”

“बिल्कुल झूठ !”—काशीनाथने दृढ़ स्वरमें प्रतिवाद किया—“हम-

लोग कभी इन नेताओंकी नीयतपर सन्देह नहीं करते । हम-लोग कभी ऐसी बातें नहीं करते । यह-सब तुम-लोगोंका झूठा प्रचार है !”

अब राधासे रहा नहीं गया । अब-तक बहुत-कुछ बर्दाश्त करती आई थी, पर अब वह बोल ही पड़ी—“यह झूठ नहीं, बिल्कुल सच है । कल रायबहादुर दूनीचंदके घर क्या बातें कर रहे थे आप-लोग ? क्या कांग्रेसके जेनरल सेक्रेटरीको रायबहादुरने पीठ-पीछे बुद्धू नहीं कहा था ? शैतान नहीं कहा था ? कांग्रेसी नेताओंपर गन्दे कीचड़ नहीं उछाले थे ?”

काशीनाथके मुखपर मानो कालिख पुत गई । राधाके प्रति मारे क्रोध और क्षोभसे उसका हृदय विक्षुब्ध हो उठा । बेचारा क्या कहकर प्रतिवाद करे सहसा समझमें नहीं आया । इस अपमानके घूँटको निवा पी जानेके कोई चारा न था । क्रोधसे भड़कते चेहरेको अप्रसन्नताके बोभसे दबाकर वह चुप रह गया ।

राधाका शिर भी झुक गया । अपनी इस चपलतापर वह लज्जित हो गई । वहाँ अब वह बैठी न रह सकी । चुनचाप उठकर अपने कमरेकी ओर चली गई ।

“मुझे भी शौच वगैरह जाना है जी !”—राजन ने कहा—“लेकिन आते ही शास्त्रार्थ छिड़ गया । लेकिन जब छिड़ ही गया, तो प्रस्तुत प्रश्नका उत्तर देकर ही उठूँगा । अब आशा नहीं कि फिर तुमसे इस तरह बातें करनेका मौका कभी मिल सकेगा ।”

काशीनाथ अब-तक सम्हल चुका था । बोला—“क्यों ? मौका क्यों नहीं मिलेगा ? जब चाहे आकर जितनी बातें कर लो ! यहाँ करो, लाहौरमें मेरी कोठीपर आकर करो ! बातें करनेसे मैं डरता थोड़े ही हूँ ?”

“नहीं, तुम डरोगे क्यों ? चिर-सखा जो ठहरे मेरे ? लेकिन, शायद तुम्हें पता नहीं कि अंग्रेज-सरकारकी नज़रोंमें मैं कितना भयानक विद्रोही हूँ । इस विद्रोहीके पीछे यहाँ भी जासूसोंका जाल बिछा हुआ

है। ऐसी दशामें कैसे आशा की जाय कि फिर बातें करनेका मौका हमें मिल सकेगा ?”

सुनते ही काशीनाथका दिल दहल उठा ! उसके चेहरेपर पुनः भयकी रेखा उभर आई !

राजन भाँप गया। मुस्कुराकर बोला—“डरो मत काशी ! विश्वास रखो कि मेरे चलते तुम्हें किसी भी मुसीबतमें फँसना न पड़ेगा। तुम्हारा वाल भी बाँका न हो सकेगा।”

काशीनाथ आश्वस्त हुआ। ओठोंपर बलात् मुस्कान लाकर वह बोला—“नहीं जी, डरूँगा क्यों ?”

“हाँ, सो ही !”—राजनने पुनः आश्वासित किया—“डरना चाहिये भी नहीं !.....” अच्छा तो लो अपने शेष प्रश्नका उत्तर :—

“तुमने कहा है कि आज देशके सभी बड़े नेता वकील हैं। देश-भक्ति और जन-जागरणके आन्दोलनमें उनका बड़ा हाथ है। ठीक है। मैं भी बहुत-कुछ मानता हूँ। मैं उन लोगोंमेंसे नहीं हूँ जो किसीके पुराने पाप यादकर उसपर गन्दे कीचड़ उछाला करते हैं। मैं तो उस बेइश्याके भी चरण चूम लूँ जो शरीरका व्यापार त्यागकर सच्चे दिल-से समाजपर उत्सर्ग हो चुकी हो। इसी प्रकार जिन वकीलोंने वास्तव में देश और समाजपर अपनेको उत्सर्ग किया है उन्हें अब भी पूजता हूँ, और आगे भी पूजता रहूँगा। लेकिन ऐसीकी संख्या है कितनी ? मुश्किलसे दो-चार भी नहीं। लेकिन एक तथ्यकी ओर लोग ध्यान नहीं देते। मनुष्यके लिये, प्राणिमात्रके लिये, सबसे मूल्यवान् वस्तु है प्राण। इस प्राणका उत्सर्ग सबसे बड़ा उत्सर्ग होता है। गाँधीजीके आन्दोलनने इस खतरेको मिटा दिया। अब समाजका वह तबका भी उसमें आ मिला जो अब-तक केवल बाणीके उत्सर्गके बलपर ही नेता बनना चाहता था। यही देखकर तुम्हारे वकीलोंने भी उनका साथ दिया। इन वकीलोंने भी पाँच सवारोंमें अपना नाम लिखा ही डाला। अब उत्सर्गकी सीमा सिर्फ जेलोंमें जाकर ए० और बी० क्लासके बन्दीभर

बन जाना रह गया। लेकिन मुझे बहुत सन्देह है कि आत्मोत्सर्गियोंका यह सबका समाजका कभी भला भी कर सकेगा। जन-जीवनसे भ्रष्टाचार और अनाचारको दूर कर सकेगा। इस समय कई प्रान्तोंमें कांग्रेस-मन्त्रि-मंडल कार्य भी कर रहा है ❀। उनके कार्यों और प्रवृत्तियोंको देख ऐसा तो नहीं लगता कि ये अमीरोंको छोड़ कभी गरीबोंके भी हो सकेंगे। इनकी सत्तामें गरीबोंका वह सदियोंका शोषण कभी दूर भी हो सकेगा।”

कहकर राजन उठ खड़ा हुआ। फिर बोला—“अब जरा शीचसे निवट लूँ। दो-चार फुलके खाकर फिर सो जाऊँगा।”

[२८]

राधा सधेरे सोकर उठी। हाथ-मुँह धोकर राजनके कमरेमें खिड़कीसे झाँक आई। पर बिछीना खाली था। उसने सोचा, मास्टरजी शायद जंगल गये हों। आधा घण्टे बाद उसने फिर झाँका, पर राजन कमरेमें न था। कल संध्याकी अपनी चपलतापर वह लज्जित थी। काशीनाथसे कुछ पूछनेका साहस उसे नहीं हो रहा था। जाकर रसोइयेसे पूछा। वहाँ भी कुछ पता न चला। अब उसकी व्याकुलता बढ़ चली। अन्तमें वह काशीनाथके कमरेमें जा ही पहुँची। काशीनाथ आराम-कुर्सीकी पट्टियोंपर पैर फैलाये किसी पुस्तकके पढ़नेमें लीन था। किसीके पैरकी आहट पाकर पुस्तकके पन्नेसे आँख उठाकर देखा, राधा खड़ी थी।

“क्या है राधा ?”—उसने कोमल स्वरमें पूछा।

“मास्टरजी कहाँ गये ?”—वह सकुचाये स्वरमें बोली।

काशीनाथ अब पुस्तकके पन्ने मूँदकर सीधा होकर बैठ गया। बोला—“जरा बैठो, एक बात बताऊँ तुमसे।”

राधा दूसरी कुर्सीपर बैठ गई। काशीनाथके चेहरेको उत्सुक आँखोंसे देखने लगी।

“जरा सावधानीसे सुनो !”—काशीनाथने कहा—“राजन आज मुँह-अन्धेरे ही उठकर विदा हो गया। मुझे जगाया उसने जरूर, लेकिन तुम्हें जगानेकी मनाही कर दी।”

काशीनाथ चुप होकर कुछ सोचने लगा और राधाकी उत्सुकता और भी बढ़ चली। लेकिन वह चुप रही।

काशीनाथने फिर कहा—“एक बात बताऊँगा राधा ! बात खतरेकी है। हमें सावधान रहना चाहिये।.....राजनके पीछे आजकल

सरकारी जासूस बड़ी बुरी-तरह पड़े हुए हैं। वह स्वयं मुझसे बता गया है। और कल दिनमें जब तुम-दोनों बाहर थे, अपना एक दोस्त पुलिस अफसर भी मुझसे इशारा कर गया। वही मि० भल्ला जो तुम्हारे साथ कई बार नाच भी चुका है। मैं तो बातको छिपा गया उससे, लेकिन सोचना यह है कि इस हालतमें हमें करना क्या चाहिये। यह सही है कि राजन अपना मित्र है, लेकिन नाहक अपने शिर मुसीबत मोल लेने-से फायदा ? उससे तो अब बचकर ही रहना चाहिये हम-लोगोंको ! क्यों ?”—कहकर वह प्रश्नभरी आँखोंसे राधाको देखने लगा।

और जो भी हो, पर राधाको काशीनाथसे इस बातकी आशा न थी। उसे आशा न थी कि काशीनाथ इस सीमातक गिर जायगा। उसकी नजरोंमें काशीनाथका रहा-सहा व्यक्तित्व भी क्षणमात्रमें धूलमें जा मिला। घृणाके आवेगसे उसका अंग-अंग काँप उठा। उसकी आँखोंसे मानो घृणाके अंगारे बरसने लगे। काशीनाथ उसको चितवन देख डर गया !

“क्या यही मित्रताका कर्तव्य है ?”—राधा धिक्कारभरे स्वरमें बोली—“इतनी जल्दी भूल गये उनके उपकारको ?”

राधा भट कुर्सीसे उठकर कमरेसे बाहर हो गई। अपने कमरेमें आ गई। भीतरसे किवाड़ बन्दकर सोफेपर लेट गई।

कुछ सोचकर राधाका हृदय उच्छ्वसित हो पड़ा। वह अपनेको सम्हाल न सकी। तकियापर मुँह रखकर रो पड़ी। रुलाईके आवेग-को दबानेका प्रयत्न करने लगी और आवेगके प्रतिघातसे उसका एड़ीसे-चोटीतकका अंग उचकने लगा।

“हाय रे मनुष्य !”—कुछ देर चुपके-चुपके रोती रहकर एक समय टूटे दिलसे मन-ही-मन वह बोली—“तू इतना नीच है ? इतना बदल सकता है ? जिसपर किसी-दिन दिन-रात मरा करता था, आज अपनी रक्षाके लिये उससे इस तरह कन्नी काट रहा है ?.....हे भगवान् ! तू म कहाँ हो ? हो भी या नहीं ? यदि हो, तो क्या यही तुम्हारा न्याय

है ? जो देश और समाजके लिये, करोड़ों भूखों-नंगोंके लिये शिरपर कफन बांधे फिर रहा है उसकी यह दशा ? कहीं दो-चार दिन भी चैन-से न गुजार सके ? मारा-मारा फिरा करे ? और जो देश और समाजपर वृथा भार है, वह बड़े-बड़े बंगलोंमें बैठकर चैनकी बंशी बजाये ?”

निराशा और करुणासे राधाका हृदय भर उठा। वह पुनः रो पड़ी।

“नहीं नहीं,”—वह कुछ देर रोती रहकर पुनः मन-ही-मन बोली—
“तुम नहीं हो भगवान् ! झूठ-मूठ तुम्हारी सत्तापर लोग विश्वास करते हैं। तुम यदि होते, संसारमें इतनी अन्धेरगदी मची न होती ! काम करनेवाले, एड़ी-चोटीका पसीना एक करनेवाले भूखों मरें, सुअरोंके खोभाड़-जैसी जगहोंमें पशुओंका जीवन व्यतीत करें, और समाजके धूर्त और बेईमान ऊँचे महलोंमें मजा मारें ? दूसरोंकी कमाईपर रंग-रेलियाँ खेलें ?...सारे जगत्के करुणामय समदर्शी पिता ! यह कौन-सा न्याय है तुम्हारा ?....नहीं-नहीं, तुम नहीं हो ! तुम्हारे अस्तित्वकी सारी कहानी झूठ है, कल्पना है ! तुम जगत्के पिता नहीं, कल्पनाके पुत्र हो !...में तुम कल्पना-पुत्रको भी पूजती, बारम्बार नमस्कार करती, यदि तुमसे संसारका भला होता !...तुम्हारे नाम-पर संसारमें अन्धेरगदी मची है भगवान् ! दिन-रात तुम्हारे नामोंकी दुहाई देकर भी, तुम्हारे आदेशोंका नारा लगाकर भी न कोई तुम्हें मानता है, न तुम्हारे आदेशोंको मानता है। तुम्हारे नामका उपयोग, तुम्हारे अस्तित्वकी कल्पनाका उपयोग निरीहोंके शोषणके लिये; जाति, दल और व्यक्तिके स्वार्थोंके लिये होता है भगवान् ! यदि तुम होते, यह-सब नहीं होता ! नहीं होता ! मेरा प्यारा मास्टरजी इसप्रकार मारा-मारा न फिरता ! तुम नहीं हो ! नहीं हो !! नहीं हो !!!”

एकाएक राधा पागलकी तरह चीख उठी। लेकिन भट वह सम्हल भी गई। उसकी चीख उधर काशीनाथके कानोंमें भी जा पहुँची। वह दौड़ा हुआ राधाके कमरेके दरवाजेपर आ गया। बार-बार हस्तक

देने लगा । राधा सम्हलकर उठी । आँखें पोंछकर दरवाजेपर आई । साँकल हटाकर किवाड़ खोल खड़ी हो गई ।

काशीनाथ उसका चेहरा देख अवाक रह गया ! घबड़ाये स्वरमें बोला—“यह क्या राधा ! तुम्हें हो क्या गया है ?”

“कुछ नहीं !”—राधाने सूखे स्वरमें जवाब दिया—“आप कहिये, क्या कहना चाहते हैं ?”—कहकर वह सोफेपर जाकर सीधी हो बैठ गई ।

उसके इस रूखे व्यवहारपर काशीनाथको और भी आश्चर्य हुआ ! वह धीरेसे आकर राधाके सामने कुर्सीपर बैठ गया ।

“मेरी राधा-रानी !”—स्वरमें प्रेमके घड़े उड़ेलकर पुचकारता हुआ वह बोला—“यह-सब तुम्हें शोभा नहीं देता ! इतनी पढ़ी-लिखी, इतने बड़े घरकी लड़की ! भला सोचो तो, लोग क्या कहेंगे ?” फिर हाथ-घड़ीकी ओर देखकर—“देखो, ग्यारह बज चुके ! नहा-धो, खा-पीकर तैयार हो लो ! आज क्लब भी तो चलना है ? आजका तुम्हारा प्रोग्राम तो खास महत्व रखता है । आज कितने बड़े-बड़े लोग सिर्फ तुम्हारे लिये ही आयेंगे वहाँ ! चलो, उठो ! यह जोगनोंका वेश छोड़ो !”

राधाकी तयोरियाँ तन गईं ।

“अब बस करें आप !—वह क्रुद्ध स्वरमें बोली—“यह-सब न कहा करें मुझसे ! मैं जाऊँगी नाचने समाजके उन गन्दे कीड़ोंके सामने और उन गन्दे कीड़ोंके साथ ? छी ! मैं वेश्या नहीं हूँ भाई साहब !”

काशीनाथका पारा गर्म हो उठा ।

“छी राधा !”—वह भी क्रोधभरे स्वरमें बोला—“उस पगलेके साथसे फिर तुम्हारे शिरपर पागलपन सवार हो गया ! तुम समाजके भद्र-पुरुषोंको ‘गन्दे कीड़े’ कह रही हो, और समाजकी भद्र-महिलाओंको वेश्या ? छी ! छी !! छी !!!”

राधाका भी पारा गर्म हो उठा ।

“खबरदार !”—वह मानो पागल होकर बोली—“अगर उन्हें पागल कहा तो ! जनाब भाई-साहब ! जिन्हें आप भद्र-पुरुष कहते हैं, वे वास्तवमें भद्र-चाण्डाल हैं ! भद्रताकी नकली नकाबमें छिपा हुआ जिनका चाण्डालत्व सहसा नजर नहीं आता ! जो समाजका शोषक है, लुटेरा है ! जिसकी आंखोंमें समाजके करोड़ों भूखों-नंगोंके लिये, भूख-से दम तोड़-तोड़कर मरते इन्सानोंके लिये आंखोंमें पानी नहीं, दिलमें दया नहीं, उसे चांडाल नहीं तो और कहेंगे क्या ? इनसे वे उजड़ु चांडाल कहीं लाख-दर्जे अच्छे, जिनके चांडालत्वपर दिखावटी भद्रता, सभ्यता और संस्कृतिकी नकाब नहीं होती ! जिनमें दगा और फरेब नहीं होता ! और अफसोस, कि समाजके ये ही गन्दे कीड़े आज समाजके शिरपर मौजूद हैं ! समाजके शिरपर बैठे हुए हैं !”

कहते-कहते राधा हाँफ उठी । काशीनाथ अवाक् होकर सुनता रहा ।

“और,”—वह फिर बोली—“उन भद्र-महिलाओंकी वेश्यासे दी उपमाको सुनकर आप चौंक क्यों उठे भाई-साहब ? जनाब ! जो अपने शरीर, साज-शृंगार और नाज-नखरोंका प्रदर्शन केवलमात्र पुरुषोंको आकृष्ट करनेके लिये, किसी मालदार या मोहदेदारको जीवन-साथीके रूपमें फँसानेके उद्देश्यसे ही करती हो उसे वेश्या नहीं तो क्या कहेंगे आप ? जरा छातीपर हाथ रखकर सोचिये तो ?”—कहते-कहते उसे एकाएक खाँसी आ गई ।

राधा इस समय मानसिक आवेशकी जिस अवस्थामें जा पहुँची थी, उस दशामें उसके मुखसे ऐसे कटु-कठोर शब्दोंका प्रयोग अस्वाभाविक न था । यह सब है कि वह सभ्यताकी पूरी शिक्षा ले चुकी थी, स्वभावसे कोमल भी थी, लेकिन साथ ही वह भावुक भी थी । जब उसके हृदयमें उस तथाकथित सभ्य-समाजके प्रति घृणा और वितुष्णाकी आग धधक रही थी, फिर कैसे आशा की जाय कि वह अपने स्वरोंमें, शब्दोंमें सभ्यताका संयम और संस्कृतिकी कोमलता ला पाती ? क्या यह

झूठ है कि, समाजके सर्वोच्च शिखरपर बैठे हुए सभ्य-सुसंस्कृत लोग भी अनेक बार आपसमें ऐसी तूतू-मैमैपर उतर आते हैं, जो कि अपढ़-गँवारोंके लिये भी शोभाकी बात नहीं होती ? फिर राधाको ही क्यों दोष दिया जाय, कि वह इतने हल्के ढंगसे सभ्य-समाजपर आक्षेप कर बैठी ? वह तो उस समाजमें घुल-मिलकर उसे निकटसे देख भी चुकी थी, किन्तु इस समय अपने-आपमें न होने के कारण वह अपनेपर संयम न रख सकी । अपने मनके अंतरतममें छिपे भावोंको छिपानेमें समर्थ न हो सकी ।

“भाई-साहब !”—गला साफकर खड़ी होकर राधा फिर बोली—
 “आपने मुझे बनाया, तो बिगाड़ा भी कम नहीं । राधा अब अपनी आँखों-में आप गिर चुकी है । अब वह किस सहारे संसारके सामने गर्वसे शिर ऊँचा कर सकेगी ?”—कहते-कहते वह रो पड़ी । रोते-रोते ही आवेग-विचलित स्वरमें बोली—“अब चली राधा अपने पापोंका प्रायश्चित्त करने !”

राधा तीरकी तरह कमरेसे निकलकर एक ओर चल पड़ी । काशीनाथको इस बातकी कतई आशा न थी । वह क्षण-भर हक्का-बक्का भौंचक्का-सा बगलें भाँकता रहा । फिर कमरेसे निकलकर बाहर आया । घबड़ाकर इधर-उधर दौड़ा भी । किन्तु राधाका कहीं पता न था ।

[२६]

“अरे ! तुम हो राधा ? आओ आओ ! अन्दर आओ !”

लकड़मंड़ीके उस धावड़ी-बुढ़ियाके घरमें राजन इस समय भोजन कर रहा था । उस सँकरे दरवाजेर राधाके खड़े होते ही एकाएक अन्दर अधेरा छा गया । राजनने चौंककर देखा । राधाको उस दशा-में खड़ी देख उसे बड़ा आश्चर्य हुआ ! उसने उसे प्रेमसे अन्दर बुलाया । राधा अन्दर चली गई । नीचेमें ही एक तरफ बैठ गई ।

“नीचेमें क्यों ?”—राजनने मना करते हुए कहा—“मेरे बिस्तरेपर बैठ जाओ !” धावड़ी-बुढ़ियाने भट लकड़ीकी एक खुरदरी पाट उसके पीछे रख दी । बोली—“लो बीवी, इसपर बैठ जाओ !”

राधा पाटपर बैठ गई । राजनने उसके चेहरेको गौरसे देखा । बोला—“खाना तो तुमने नहीं खाया ? आओ, फिर इसीमें शामिल हो जाओ ! ऐसा खाना कभी जीवनमें खाया न होगा राधा ! उड़दकी दालसे मक्केकी रोटीमें बड़ा स्वाद आ रहा है । आ जाओ ! बरतन कोई दूसरा नहीं है ।” फिर धावड़ी-बुढ़ियाके—“माई, बीवीका हाथ तो धुला दे !”

बुढ़ियाके उठनेसे पहले ही राधा स्वयं उठ खड़ी हुई । घड़ेके निकट जाकर पानीके हाथ धो राजनकी थालीके निकट आ बैठी ।

राधाको पहले कुछ संकोच हुआ । कहाँ तो वह रास्तेभर क्या-क्या सोचती आ रही थी—अपने मास्टरजीके पैरोंपर गिरकर, रो-रोकर अपने दिन-दिनके पापोंका प्रायश्चित्त करेगी, क्षमा-याचना करेगी । पुनः अपनी प्रिय शिष्याके रूपमें ग्रहण करनेकी प्रार्थना करेगी । वह उनके पथकी बाधक न बनकर साधक बननेका विश्वास दिलावेगी । उनके चरण छूकर प्रतिज्ञा करेगी आजीवन उनके पद-चिन्होंपर

चलनेकी। अब वह भी उसी पथपर चलेगी, जिसपर उसका प्यारा पूज्य मास्टरजी चल रहा है। अब वह भी समाजके करोड़ों दलितोंमें मिलकर उन्हें जगायेगी। उनके सामने नये जीवन और नये आदर्शके चित्र खीचेगी। अब वह सच्ची कलाही उपायक बनेगी। वह अब भी नाचेगी, लेकिन समाजके लंपटों और हरामखोरोंके मनोरंजनके लिये नहीं, उनकी लोलुप नजरोंकी अपनी ओर खींचनेके लिये नहीं, बल्कि दलितोंकी उपर उठानेके लिये, उनके दिलोंमें आशा और साहसका संचार करनेके लिये, स्वाभिमानके भाव भरनेके लिये, अपने मानवीय अधिकारोंके निमित्त मर मिटनेकी प्रेरणा देनेके लिये। इत्यादि इत्यादि।

सोचते-सोचते उनका हृदय भावुक हो बोल पड़ा था—“ग्रहा राधा ! वे तेरे सौभाग्यकी मुन्दर घड़ियाँ होंगी ! तब सचमुच तेरा जीवन सार्थक हो जायगा ! तेरे समस्त पापोंका प्राश्चित्त हो जायगा !”

किन्तु उसे यह देखकर निराशा ही हुई कि अपने मास्टरजीके पैरोंपर गिरकर क्षमा-याचनाका अवसर उसे न मिला ! उसे विश्वास हो गया कि मास्टरजीके मनमें अपनी राधाके प्रति राई-रत्ती भी दुर्भाव नहीं। मास्टरजी अवश्य उसे अपना लेंगे। इस समय उसके तरुण हृदयमें शैशवकी सरलता आ गई थी। एक थालीमें मास्टरजीके साथ खाने-खाते ही उसकी बड़ी-बड़ी आंखोंसे मोतियोंकी लड़ियाँ लड़कने लगी थी।

“क्यों ?”—राजनने मुस्कराकर पूछा—“अभी धुआँ तो नहीं ?”

और राधाने भी मुस्कराकर जवाब दिया—“नहीं मास्टरजी ! मनका धुआँ निकल रहा है !”

[३०]

तीसरे दिन प्रातः पाँच बजे राजन राधाको लेकर लाहौर पहुँचा । रामगलीकी एक गलीमें अपने बासेके दरवाजेपर पहुँचकर हल्के हस्ताधानोंसे धीरेसे पुकारा—“लीला !”

इस दो-मंजिले मकानके उपरी हिस्सेमें लीला रह रही थी । अभी सोकर उठी ही थी । अभी जा ही रही थी हाथ-मुँह धोने । स्वर पहचानकर भट क्वाड़ खोल बाहर निकली । राजनके हाथसे बेग लेकर बोली—“बड़ी देर कर दी तुमने ?”

“बाहर जाकर देर-सवेर तो हो ही है ।”—कहते हुए वह कमरेके अन्दर प्रविष्ट हुआ ।

राधा चुपचाप राजनके पीछे खड़ी थी । लीलाकी नजर अभी उस ओर पड़ी न थी । अभी कुछ धुँधला ही था । लीला भट लालटेन जलानेमें लग गई और राधा राजनके पीछे-पीछे कमरेमें प्रविष्ट हुई । जब लालटेनके प्रकाशसे कमरा आलोकित हो उठा, लीला इस अपरिचित तरुणीको देख चौंक उठी ! क्षणभर भौंचक्की-सी वह उसकी ओर देखती रही और राधा उसकी ओर !

“इन्हें तुम नहीं पहचानतीं लीला ?”—राजनने उसकी कुंठा दूर करते हुए मुस्कराकर कहा—“लो, अब सम्हालो इन्हें ! यही तुम्हारी राधा है !”

क्षणभर पहलेकी कुंठा क्षणमात्रमें दूर हो गई । हर्षके अतिरेकमें विह्वल होकर लीला बोल पड़ी—“अहा, राधा ?” और भट लाककर उसके गलेसे लिपट गई ।

राधाको बड़ा आश्चर्य हुआ । इस व्यापाको वह बिल्कुल समझ न सकी । अब-तक लीलाका नामतक न सुना था । यह क्या ? लीला

उसे पहलेसे जानती है ? इस तरह लिपट गई जैसे वर्षोंकी परम घनिष्ठ हो । इस आश्चर्य-जनक व्यापारसे राधाको कुंठा अवश्य हुई, किन्तु इस अपरिचित महिलाके इस स्नेहिल आलिङ्गनसे उसे वास्तवमें बड़ा आनन्द आ रहा था ।

“लीला !”—राजनने कहा—“अब जी-भरकर छातीसे विपकाये रखना । मैं तो चलता हूँ अभी । लौटूँगा देरसे, या समाजमें ही फिर मिलूँगा ।”

लीला अब राधाका गला छोड़कर उससे बोली—“क्यों ? इतनी जल्दी काहेकी ? अभी आये और चल दिये ? ... तुम्हारे भाग्यमें जरा भी आराम नहीं !”—कहते-कहते लीलाका गला जरा भर आया ।

“तुम बड़ी जल्दी अधीर हो जाती हो लीला !”—राजन उसकी पीठ थपथपाकर अब राधासे बोला—“मे जखूरी कामसे एक जगह जा रहा हूँ राधा ! नहाना-धोना भी वही होगा । कुछ घण्टे बाद फिर मिलूँगा । किसी बातकी चिन्ता न करना यहाँ !”

राधा कुछ न बोली । लीलाकी अधीरताका असर उसपर भी पड़ा था । उसकी आँखें भी भर आई थीं । राजन चला गया । वह चुपचाप देखती रही ।

“तुम जरा बंटो वहन !”—लीलाने राधासे कहा—“मैं अभी पाँच भिनटमें आई ।”—कहकर गिलास लेकर वह गनीमें निकल पड़ी ।

अब धुंधलापन दूर हो चुका था । कमरेकी सारी चीजें स्पष्ट दिखाई दे रही थीं । दोनों खिड़कियाँ खोल दी गई थीं । उदीयमान सूर्यकी हल्की किरणें कमरेमें प्रविष्ट होने लगी थीं । कमरा मझोले मापका, स्वच्छ और सुन्दर था । दरवाजेपर चौकठके पास खसका एक पाँव-पोंछा; एक कोनेमें काठकी पाटीपर एक जोड़ी सादी चप्पल; दीवारकी तिकोनी ताकपर सरसोंके तेल से भगी बड़ी शीशी; धोने और नहानेके साबुन; दूसरी ताकपर खट-खट करती टाइमपीस घड़ी; फरशपर बेतकी लंबी चटाई, जिसपर विस्तरा बिछा हुआ—

दरीपर एक स्वच्छ चादर और दो स्वच्छ तक्रिये; छोटी-सी तख्त-पोशपर कुछ पुस्तकें और लिखनेका सामान; दीवारसे टंगे हुए चार मड़े चित्र—एक दादाजीका, एक समाज-परिवारका, एक ५० रमा-शकरका और चौथे चित्रपर दृष्टि पड़ते ही राधा सहसा चौंक पड़ी ! लेकिन फिर भी खड़ी होकर बड़े ध्यानसे उसे देखने लगी । वह लीला और राजनका युगल-चित्र था ।

राधासे अब अधिक देखा न गया । वह खड़ी न रह सकी । धमसे नीचे बैठ गई । जैसे हृदय सुन्न हो पड़ा । क्षणभरके लिये आँखोंके आगे अन्धेरा छा गया ।

“ऐ !”—उसके मुँहसे निकल पड़ा—“तो मास्टरजीने शादी कर ली ? यह लीला उनकी पत्नी है ?”

उसके मनपर मानो मनो बोल पड़ गया । वह व्यथासे कराह उठी । और ज्यों ही उसकी दृष्टि उस जोड़े तक्रियेपर पड़ी, उसका हृदय और भी ईर्ष्याकुल हो उठा । वह झट बिछीनेसे उठकर नीचे आ बैठी । उसकी आँखोंसे आंसू निकल पड़े और मुँहसे ये शब्द—“हाय ! तू बड़ी अभागिन है राधा !”

राधा शिर झुकाये बैठी सोच रही थी । आँखें पोंछती जा रही थी । इतनेमें लीला भी दूधसे भरा गिलास लिये वहाँ आ पहुँची । उसने खुशीके आवेशमें राधाकी ओर देखा तब नहीं । बोलने लगी—“आज बड़ी खुशीका दिन है मेरा ! कबसे इन्तजारमें थी, कब अपनी राधा-रानीको देख पाऊँगी ! आज लालसा मेरी पूरी हो गई ! यह विजय-दशमीका दिन मेरे लिये सचमुच बड़ा शुभ रहा राधा !”

अब लीलाने राधाकी ओर देखा । देखते ही वह भौंककी रह गई ! राधा रो रही थी । किन्तु राधाके इस रोनेमें क्षणभर पहलेकी ईर्ष्याकी ज्वाला न थी । निराशाकी व्यथा न थी । ममत्वके माधुर्य-से सने हुए लीलाके उद्गार मीठे तीर बनकर उसके हृदयमें जा चुके थे । उसका हृदय उच्छ्वसित हो पड़ा था—“हाय, तू इससे ईर्ष्या करने

चली थी ? इस देवीसे ? इस स्नेह और ममताके मूर्तिमान् माधुर्यसे ?”

लीला ताकपर गिलास रखकर सहमे हृदयसे राधाके निकट आ बैठी । बोली—“तुम रो रही हो बहन ! क्यों ?”

और उत्तरमें राधा उसके गलेसे लिपट गई । भरे स्वरमें बोली—
“तुम-जैसी बहन को पाकर बहन !”

कुछ देर दोनों ही एक-दूसरेसे लिपटी रहीं । एक-दूसरेके हृदय-की बोल एक-दूसरेसे बोल रही थी । दोनोंके हृदयके तार एक समान सुरमें बँध रहे थे । राधाको इस आलिंगनमें संसारका सारा सारस्य और मानव-मनका समस्त माधुर्य अनुभव हो रहा था । इस सारस्य और मधुरतामें भेद-भावकी सारी काँई धुन चुकी थी, मिट चुकी थी । गंगा और यमना एकमें मिलकर एक बन चुकी थीं ।

“राधा !”—लीला धीरेसे बोली—“अब तुम हाथ-मुँह धोकर भट नहा लो ! उठो अब !”—कहकर वह स्वयं उठ खड़ी हुई । राधा भी उठी । लीलाने कमरेसे बाहर हाथके इशारेसे कहा—“वह छोटा-सा कमरा है । वही हमारा स्नान-घर है । उधर पाखाना है । नलका नीचे है । में पानी लिये आती हूँ ।”—कहकर वह बाल्टी लेकर पौढ़ियोंसे नीचे चली ।

राधा लपककर आगे बढ़ी । उसका हाथ पकड़कर बोली—
“तुम लाओगी मेरे लिये पानी ? मुझे बता दो, में स्वयं ले आती हूँ !”

“यह शिष्टाचार छोड़ो राधा !”—लीलाने प्यारसे झिड़ककर कहा—
“रास्तेकी थकी हो तुम ।”

अब लीला और राधा नहा-धोकर तैयार हो चुकीं । लीलाने उसे पहननेको खादीकी नई धुली साड़ी और चोली दी । अब दोनों चाय पीने बैठीं । दो-चार परावठे और आलूकी भाजी बना ली थी । आज वह जलपानके लिये ‘समाज’ में न जा सकी । आज था भी छुट्टीका दिन ।

स्कूलसे भी उसे छुट्टी थी। किन्तु समाज-पाकशालामें इस नई अतिथिकी सूचना वह दे आई थी। भोजनके समय कुछ पहले वहाँ राधाको लेके जायगी। अभी दोनों बातोंमें लगी थीं।

राधाकी सारी बाधा, सारा संकोच समाप्त हो चुका था। दीवारपर टँगें राजन और लीलाके मिथुन-चित्रकी ओर एक बार दृष्टि दीड़ाकर मुस्कुराकर वह बोली—“तुम-लोग एकमें बँधे कब लीला? बड़ी बेईमान हो तुम भी। मास्टरजी भला नाराज थे। तुम्हें तो खबर देनी चाहिये थी?”

लीलाने राधाका एक हाथ अपने हाथमें लेकर कसकर दबा दिया। फिर मुस्कुराकर बोली—“जब तुम-दोनों बँधे थे उससे बहुत पहले राधा! लेकिन तुम मुझसे अधिक भाग्यवान हो बहन!”

राधा कुछ गम्भीर होकर रहस्यभरी आँखोंसे लीलाको देखती और मुस्कुराती चुप रही।

“राधा!”—लीला इस बार गंभीर होकर बोली—“जब मैं अभी गुड़ियोंके खेनमें ही लगी थी, संसारका कुछ पता न था, उसी समय अनजाने उससे बँध चुकी थी और तबसे बराबर बँधी ही रही। दूर रहकर भी, निकट रहकर भी, मेरे हृदयका वह प्यारा कभी मुझसे दूर न हो सका। मनुष्यकी कुछ कमजोरियाँ होती हैं जिनपर कभी-कभी काबू नहीं पाया जा सकता। राधा, अपने प्रियतमके हृदयमें लीला वह स्थान न प्राप्त कर सकी जो उसका न्याय्य था। उस स्थानको पा सकी मेरी राधारानी। राधा, शायद तुम नहीं जानती कि तुम्हारा मास्टरजी तुम्हें कितना प्यार करता है!”—कहते-कहते लीलाके नेत्र सजल हो उठे।

राधा आश्चर्यभी आँखोंसे लीलाको देखती रही। हृदयमें सहसा उठे उच्छ्वासको दबाती वह चुप बैठी रही।

आँखें पोंछकर लीलाने फिर कहा—“जबसे मुझे यह मालूम हुआ, उस दिनसे राधाने भी मेरे हृदयमें वही स्थान प्राप्त कर लिया जो राजनका था। मैं अपने प्रियके प्रियको भी प्यार करने लगी राधा! लेकिन जब

राजन तुमसे निराश होकर मेरी गोदमें शिर रखके रो रहा था, उस दिन लीलाने राधाकी जगह ले ली। मैं अपने रत्नको, समाजके इस अनुपम रत्नको निराशाकी आगमें भस्म होते न देख सकी ! तबसे मैं इसी इन्तजारमें थी कि कब मेरी राधारानी आकर अपनी याती को सम्हालेगी। आज मेरी लालसा पूरी हो गई। लो, अपने धरोहरको अबसे सम्हालो ! मैं आजसे मुक्त हो रही हूँ !”

राधाको अपने कानोंपर विश्वास करना ही पड़ा। अब वह अपनेको दबा न सकी।

“नहीं बहन !”—राधा रोकर उसके पैरोंपर गिर पड़ी—“राधा अब तुम-दोनोंके हृदयमें बैठने योग्य नहीं रही लीला ! अपने चरणोंमें जगह दो बहन ! गिवा इसके राधा और कुछ नहीं चाहती बहन !”

राधा, मुँह ढककर अपने हृदयकी उठी हकको बार-बार दबाने लगी। लीलाने उसे गोदमें ले लिया। उसकी पीठपर स्नेहका हाथ सहलाने लगी।

राधा अब सम्हलकर सीधी होकर बैठ गई। बोली—“मैं अपनी सारा कहानी तुमसे सुनाऊँगी बहन ! अभी सुनाऊँगी ! जब-तक सुना न लूँगी हृदयकी आग ठण्डी न होगी ! नहीं तो मैं जलकर राख बन जाऊँगी ! मैं सुनाऊँगी, जरूर सुनाऊँगी ! तभी मेरा हृदय शान्त हो सकेगा !”



राधाने अपना हृदय खोल दिया । राई-रस्ती भी छिपा न रखी । संक्षेपमें अपने जीवनकी सभी प्रमुख घटनाओंपर प्रकाश डाल गई । खासकर उन घटनाओंपर जो उसके चारित्रिक पतनसे संबंधित थीं । उसके मुखसे सारी कहानी सुनकर लीला बोली :—

“यह तो कुछ नहीं । ब्रह्मदानेकी कोई बात नहीं । पछानानेकी जरूरत नहीं । वह तो जीवनके भ्रमका एक भोका था । आया और चला गया । मनुष्य तभीतक बुरा रहता है, जबतक बुरे विचारों और बुरे कर्मोंसे वह लिपटा रहता है । फिर सच्चे हृदयसे उन बुराइयोंसे मुक्त होते ही पवित्र बन जाता है । इस पवित्रताकी आगमें पहलेकी सारी बुराइयाँ जलकर राख बन जाती हैं । तुम तो उसी दिन पवित्र बन चुकीं राधा, जिस दिन तुम्हारी आँखोंपरकी काली पट्टी खूबकर गिर चुकी । अब ब्रह्मदानेकी कोई बात नहीं । इन-सब निरर्थक चिन्ताओंको मनमें स्थान देनेकी आवश्यकता नहीं । अच्छा, अब चलो ‘समाज’ में । कुछ देरमें भोजनकी घटी बजेगी । कुछ देर पहले पहुँचकर बहनजीकी मदद भी करेगे ।”—कहकर लीला उठ खड़ी हुई ।

राधा भी उठ खड़ी हुई । बोली—“तुम्हारे मुँहसे कई बार ‘समाज’ ‘समाज’ सुन चुकी लीला ! यह तुम्हारा ‘समाज’ क्या है ? आर्य-समाज तो नहीं ? मेरे मास्टरजी तो आर्य-समाजके कभी पास भी नहीं फटकते ?”

“अरी नहीं !”—लीलाने हँसकर जवाब दिया—“वहाँ पोंगा-पन्थीके लिये कोई गुंजायश नहीं । न वह आर्य-समाज है, न देव-समाज और न अग्नि-समाज । वह तो केवल ‘समाज’ है । मानवमात्रका समाज । जाति-धर्मकी सीमाओंसे परे भावी समाजका एक आदर्श-

मात्र । चलो, सब-कुछ देखोगी ही वहाँ ।”

“जरा बैठो !”—राधाने उसका हाथ पकड़के कहा—“कुछ पूछूँगी समाजके बारेमें ।”

लीलाने घड़ीकी ओर देखा । बोली—“घंटाभर समय और है । जो-कुछ पूछना हो पूछ लो !”—कहकर वह बैठ गई ।

राधा भी बैठ गई । बोली—“अपने ‘समाज’ के आदर्शके बारेमें संक्षेपमें बता जाओ !”

“संक्षेपमें क्यों ?”—लीलाने जवाब दिया—“एक वाक्यमें उस आदर्शका सार बता देती हूँ—‘अपने-अपने व्यक्तित्वमें बँधे रहकर भी अपने समस्त स्वार्थको समाजके हितपर उत्सर्ग कर देना, ही हमारे समाजके उद्देश्यका सार-सूत्र है ।”

“यह कैसे होगा बहन ?”—राधाने प्रश्न किया—“व्यक्तित्वमें बँधे रहकर भी स्वार्थका उत्सर्ग कैसे हो सकेगा ? व्यक्तित्वका अभिमान ही तो मनुष्यको स्वार्थकी ओर प्रवृत्त करता है ?”

लीला बोली—“व्यक्तित्वका अभिमान तो किसी भी समाजमें नष्ट न होगा, चाहे समाज आदर्शवादी हो या उससे भिन्न । किन्तु व्यक्तित्वके स्वार्थगत अभिमानको नष्ट किया जा सकता है । जैसे—मैं लीला हूँ, मैं राधा हूँ, मेरा निजी जीवन है, मुझे भोजन चाहिये, वस्त्र चाहिये, निवास चाहिये और एक सामान्य पारिवारिक जीवन भी । यहाँतक वैयक्तिक अभिमान तो हर स्थितिमें रहेगा ही । स्वार्थकी इस सीमित सीमाको तो हर समाज स्वीकार करेगा ही । किन्तु मैं लीला हूँ, मैं राधा हूँ, औरोंकी योग्यतासे मेरी योग्यता श्रेष्ठ है, इसलिये मुझे अधिक सुविधा चाहिये, हर वस्तु अधिक चाहिये इस स्वार्थगत अभिमानको नष्ट किया जा सकता है । यहीपर हमारा ‘समाज’ कहता है कि इस प्रकारके स्वार्थगत अभिमानोंको समाजके व्यापक हितपर उत्सर्ग कर देना चाहिये । क्योंकि इस स्वार्थगत अभिमानसे ही समाजमें वैषम्यका अंकुर पैदा हुआ है । और क्रमशः वह अंकुर आज विशाल

वृक्ष बनकर अपनी कुत्सित छायामें सारे समाजको कुत्सित बना रहा है।”

“तो,”—राधा बोली—“तात्पर्य यह हुआ कि इस ‘समाज’ का आदर्श समाजगत वैषम्यको मिटाना है, न कि व्यक्तिगत वैषम्यको ? यही न ?”

“हाँ राधा ! व्यक्तिगत वैषम्यको कौन मिटा सकेगा ? राधा और लीला—जैसे नामोंमें अन्तर रहेगा ही । हम-तुम—जैसे बाले और गोरे नर-नारी रहेंगे ही । सबका अपना व्यक्तित्व और बौद्धिक स्तर भी रहेगा ही । इन-सब शारीरिक और बौद्धिक विषमताओंके रहते भी समाजगत साम्यकी कल्पना न अबौद्धिक है, न अव्यावहारिक।”

“किन्तु,”—राधा फिर बोली—“यह बौद्धिकता ही तो मनुष्यमें स्वार्थगत अभिमान और स्वार्थगत प्रवृत्ति पैदा करती है ? यदि तुम अपने भावी आदर्श समाजमें व्यक्तिगत बौद्धिकताकी सत्ता स्वीकार करती हो, तो वैयक्तिक स्वार्थका अभिमान और उसकी प्रवृत्ति कैसे नष्ट हो सकेगी ?”

“लेकिन,”—लीलाने जवाब दिया—“तुम यह क्यों भूल जाती हो राधा, कि समाजगत समताकी कल्पना भी बौद्धिक ही है ? वह भी तो बुद्धिके द्वारा ही की जाती है ? बुद्धिके भी तो दो पहलू हैं—शुक्ल और कृष्ण । समाज-गत समताकी कल्पना और उसका व्यवहार बुद्धिके शुक्ल-पक्षका परिणाम है, जबकि स्वार्थगत अभिमान और असमताका व्यवहार तथा प्रचार बुद्धिके कृष्ण-पक्षका ।”

“किन्तु,”—राधाने फिर कहा—“संसारके बड़े-बड़े विद्वानोंने तो वैयक्तिक सत्ता, स्वार्थ, और स्वातन्त्र्यकी आवश्यकता और अनिवार्यता बताकर समाजगत समतावादी आदर्शोंकी खिल्ली ही उड़ाई है लीला ?”

“खिल्ली उड़ाते रोकता कौन है ? लेकिन वैयक्तिक सत्ता, स्वार्थ और स्वतन्त्रताकी आवश्यकता और अनिवार्यता तो हम भी स्वीकार

करते हैं। लेकिन हम इसे कतई स्वीकार नहीं करते कि वैयक्तिक सत्ता, स्वार्थ और स्वतंत्रताका नाम लेकर दूसरोंका शोषण किया जाय। इस प्रकारके तर्क तो साम्राज्यवादी, पूँजीवादी और प्रभुतावादी विद्वानोंकी ओरसे पेश किये जाते हैं। दुनियामें कई ऐसे देश हैं जहाँ वैयक्तिक सत्ता और स्वतन्त्रता, संस्कृति और सभ्यता आदि मोहक शब्दोंके नारोंसे संसारको, संसारके शोषितोंको धोखा देनेकी कोशिश की जा रही है। कहा जा रहा है कि मानवकी वैयक्तिक स्वतंत्रता और उसपर आधारित संस्कृति और सभ्यता ही मानवताकी मौलिक एवं मूल्यवान निधि है। लेकिन जब तुम इस तथाकथित मानवताकी संस्कृतिके अनुगामियोंके आचरणपर दृष्टिपात करोगी तो उनके मोहक नागोंका भंडाफोड़ होने जरा भी देर न लगेगी। नहीं तो क्या कारण है कि इस प्रकारके नारे लगानेवाले तथा अपने ही सभ्यता और संस्कृतिका शिरोधार समझनेवाले अमेरिकामें आज भी मनुष्य पशु बने हुए हैं? वहाँके 'डेड करोड़' नीग्रो मनुष्य होकर भी मनुष्यके सामान्य अधिकारोंतकसे वंचित हैं? सामान्य अपराधपर भी गोरों-द्वारा उन्हें लात-घुँसोंसे मार डालनेकी कानूनी छूट है? क्या यही मानवताकी वह अमूल्य निधि है? क्या यही वैयक्तिक स्वतंत्रतापर आधारित वह संस्कृति और सभ्यता है जिसकी वकालत वहाँके गोरे थैलीशाह और उनके एजेंट दिन-रात किया करते हैं?.....अतः इस प्रकारके तर्क पेश करनेवाले विद्वान या तो मूर्ख हैं या धूर्त। यह बुद्धिके काले पहलूका परिणाम है राधा, सफेद पहलूका कदापि नहीं!"—कहते-कहते लीलाका चेहरा लाल हो उठा।

राधा चुप रही। लीला कहती गई—“राधा, स्वभावसे पूर्ण मानव और स्वभावसे पूर्ण दानव कुछ थोड़े ही लोग होते हैं। शेष हैं प्रवाहमें बहनेवाले, परिस्थितियोंकी उपज, सामान्य मनुष्य। स्वार्थवादी बुद्धि एक घोर संक्रामक रोग है, जो समाजमें स्वार्थकी बीमारी फैलाती है। अपनी प्रवृत्तियोंसे, अपनी दलीलोंसे ऐसे रोग फैलाती है जो

हृदय और मनको संकुचित बनाकर उन्हें वैयक्तिक स्वार्थ और सुख-दुखमें ही सीमित कर देता है, जिसका परिणाम समाजके लिए बड़ा विपजनक, बड़ा जहरीला होता है बहन !”

“अच्छा,”—राधा बोली—“मानती हूँ तुम्हारी बातको। लेकिन एक बात। तुम्हारा ‘समाज’ आदर्शवादी है। जो यथार्थ नहीं है उसे आदर्श कहते हैं। बच्चोंमें मानवका पूर्ण प्रतिबिम्ब होता है। देखा जाना है, कि किसी वस्तुको हृदियानेकी ओर बच्चोंका झुकाव कहीं अधिक होता है। इसलिये यह मान लेनेमें क्या बुराई है कि अधिक-से-अधिक वस्तुएँ अधिकार जमानेकी भावना या प्रवृत्ति मनुष्यका स्वाभाविक धर्म है? यदि मनुष्य स्वार्थकी ओर बढ़ता है तो यह अस्वाभाविक नहीं है? और यदि यह अस्वाभाविक नहीं है तो इसके विरुद्ध शिकायतकी भी आवश्यकता नहीं ही है?”

“ठीक !”—लीला बोली—“लेकिन यह क्यों भूल जाती हो राधा, कि बच्चोंमें हर वस्तुको हृदियानेकी, आत्मसात् करनेकी जो प्रवृत्ति देखी जाती है उसमें सबको अपना देनेकी स्वाभाविक भावना ही छिपी रहती है। बच्चोंमें ऊँच-नीच सम-विषमका भाव नहीं होता। वह तो मानव-मात्रके साथ, प्राणिमात्रके साथ तात्त्विक स्थापित करनेकी भावनासे भरा होता है। यही है उसकी मानवता, और यही है उसका स्वाभाविक धर्म। बादमें पारिवारिक और सामाजिक वातावरणके अनुसार उनका निर्माण होता है। और हमारा पक्का विश्वास है कि समतावादी समाजका शिशु समताके वातावरणमें समतावादी ही बनेगा ! इस दृष्टिसे यथार्थ और आदर्शमें तभी-तक भेद रहता है, जब-तक कि आदर्श भी यथार्थका रूप नहीं ले लेता। वर्तमान समाजके यथार्थसे हमारा आदर्श अवश्य भिन्न है, किन्तु अपने भीतर निहित यथार्थसे वह भिन्न नहीं ही है !”

राधा कुछेक क्षण चुपचाप लीलाको देखती रही। लगा कि उसने सत्यका तत्त्व समझ लिया। सब संशय उसका दूर हो गया। किन्तु फिर भी एक संशयको दूर करनेके ब्यालसे उसने पूछा—“पैसावादी समाजमें

किसी भी कामके लिये चाहिये पैसा । मैं समझती हूँ कि तुम्हारे 'समाज' को भी पैसोंकी जरूरत पड़ती ही होगी । और तब देशकी अन्य सभी संस्थाओंकी तरह तुम्हारा 'समाज' भी धनी-धनियों, और सेठ-साहूकारोंके दरवाजे ही खटखटाता होगा । देशकी सबसे बड़ी संस्था राष्ट्रीय कांग्रेस भी जरूरत पड़नेपर ऐसा ही करती है । फिर धनियोंके पैसेपर ही पलकर कैसे तुम्हारा 'समाज' सत्ता हस्तगत होनेपर धनिक-तन्त्रके खिलाफ कुछ कर सकेगा ?”

“हम धनियोंमें पैसा नहीं लेते राधा !”—जीलाने जवाब दिया—
“बनिये-ब्रक्का नोंसे पैसे लेनेवाली कोई भी संस्था बनिशवाद या धनिकवादके शिरोधृ नहीं जा सकेगी । वह तो उनकी खीदी सांति बन जाती है । इसीलिये हम-लोग सेठ-साहूकारोंके कभी पास भी नहीं फटकते ।”

राधा कुछ आश्चर्यान्वित होकर बोली—“यदि बनियों और धनियोंसे पैसे नहीं आते, तो आने कहाँसे हें ?”

“आने इस तरह हें ।”—जीलाने जवाब दिया—“जैसे, लीला 'समाज' की सदस्य है । वह महिला-विद्यापीठमें पढ़ाकर हर महीने साठ रुपये ले आती है । इसी प्रकार जहाँ-तहाँमें कोई सौ मासिक ले आता है, कोई सत्तर, कोई पचास, कोई पन्द्रह और दस भी । और सब लाकर 'समाज' को दे देते हैं । वह संवित निधि सारे 'समाज' की हो जाती है और उसपर प्रत्येक सदस्यका समान अधिकार होता है । हमारा 'समाज-परिवार' अभी छोटा है । इसलिये सबका भोजन एक ही जगह बनता है । सब साथ बैठकर खाते हैं । निवास और परिधानका प्रबन्ध भी 'समाज' ही करता है । इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत रुचिकी कुछ रक्षाके लिये सबको जेब-खर्चके लिये प्रति-मास एक निश्चित रकम दी जाती है ।”

राधा भीतरसे अत्यन्त संतुष्ट हो कर बोली—“यह तो स्वर्गीय समाज है बहन !”

“जो भी कह लो !”—लीलाने कहा—“लेकिन हम-लोग सारे

समाजको कम-से-कम इसी ढाँचेपर गठित होते देखना चाहते हैं ।”

“लेकिन हमारे-तुम्हारे चाहनेसे ही क्या समाज इस समाजवादको स्वीकार कर लेगा ?”

“हम इसे सिद्धान्त-रूपमें स्वीकार नहीं करवाना चाहते, बल्कि सारे समाजमें इसे सक्रिय होते देखना चाहते हैं । हम स्वयं न देख सकें, भावी पीढ़ियाँ तो देखेंगी ही !”

“तुम्हें इतना दृढ़ विश्वास है ?”

“तो बगैर विश्वासके ही हम इतनी कठिनाइयोंके बीच भी काम किये जा रहे हैं ? हमारे विरुद्ध समाजके हरामखोरों, कई पड़े-लिखे मूर्खों, और सरकारी एजेंटोंका क्या कम प्रचार है ? हमारे ऊपर सरकारकी क्या कम कोटा-दृष्टि है ? हमारा साप्ताहिक ‘समाज’ तीन भाषाओंमें निकलता है । सरकार कई जमानतें जमा कर चुकी है । उसीके मारे हम परेशान रहते हैं । जब-तब छिपकर भी काम करना पड़ता है । पर ‘समाज’ की स्थिति दुर्बल बननेके बजाय सबन ही बनती जा रही है । हमारे विश्वासमें बल है तभी तो ?”

“सरकारका कोन इसलिये होगा कि तुम्हारा उद्देश्य राजनीतिक होगा ?”

“जब धर्मतत्त्वका प्रचार बिना राज्य और राजनीतिके सहारे नहीं फूल-फल सका, तो हमारा समाज-संगठनका यह आदर्श ही कैसे उसके बिना सफल हो सकेगा ? बिना सरकारपर अधिकार जमाये हम सारे समाजको अपने आदर्शमें ढाल ही कैसे सकेंगे ? समाज और राजनीति तो सदासे ही अन्योन्याश्रित हैं राधा ?”

“अच्छा, अब चलो !” —लीजाने घड़ीकी ओर देखकर कहा—“अब समय हो चला है ।”

“पाँच मिनट और !” —राधाने आप्रह किया—“अपनी बहिनजीके बारेमें बता दो तब चलेंगे । ये कोन हैं तुम्हारी बहिनजी ?”

“हमारे नेता दादाजी हैं । उन्हींकी सहचरी हैं हमारी बहिनजी !

राधा, जब मैं पहले-पहल समाजमें आई, लगा कि वे रूखे स्वभाव की हैं। लेकिन कुछ ही दिनोंके साहचर्यसे पता चल गया कि इस महिलाके हृदयमें कितना स्नेह छिपा है ! हमारे 'समाज' की गृह-व्यवस्था की सारी जिम्मेदारी इन्हींपर है। सबको खिलाने-पिलानेका भार इन्हींपर है। बेचारी परेशान होंगी अभी। और अपने दादाजीके बारेमें क्या बताऊँ तुम्हें ! ऐसा चरित्र आजतक इन आँखोंने नहीं देखा। न कभी मबौलमें भी मिथ्या, न स्वप्नमें भी पर-निन्दा, और इतने गम्भीर विद्वान होकर भी अहंकार रंचमात्र भी नहीं। 'समाज' के हर सदस्य की सुख-सुविधा का ध्यान। अपनी सुविधाओंका कोई ध्यान नहीं। ऐसा आज भी जहाँ-तहाँ गाँवोंमें देखा जाता है कि संयुक्त परिवारका मुखिया अपनी निजी सुख-सुविधाओंका ख्याल किये बिना ही परिवारके अन्य सभी सदस्यों की सुख-सुविधाएँ प्रस्तुत करनेमें ही सचेष्ट रहता है। हमारे दादाजी भी उसी संयुक्त-परिवारके मुखियाके एक सच्चे नमूना हैं। इतना ही कहूँगी, कि समाजवादी राष्ट्र और सरकारके नेताओं और अधिकारियोंमें ऐसे ही चरित्र और नैतिकता की आवश्यकता है। तभी समाज और राष्ट्रका कल्याण हो सकेगा। स्वयं आलीशान महलोंमें, सुविधापूर्ण स्थितिमें रहकर अपने देशवासियोंको धैर्य और सन्तोषका उपदेश देनेवाले नेताओं और अधिकारियोंका तो भगवान ही भला करे !"—कहकर लीला मुस्कुराती हुई उठ खड़ी हुई।

लीला और राधा अब कमरा बन्दकर समाज-कार्यालयके उद्देश्यसे चल पड़ीं।

अब राधा मानो 'समाज' के प्राण बन गई थी, और दादाजीका दायी हाथ । राजन अधिकतर फरारी जीवन बिता रहा था और लीला विद्यापीठकी चक्कीमें पिस रही थी । बचा-बूचा समय वह 'समाज' को देती । राधा 'समाज' के अंग्रेजी संस्करणका सम्पादन करती । 'समाज' की छपी हुई प्रतियाँ बगलमें दबाये लाहौरकी गलियों और सड़कोंपर धूम-धूमकर बेचा करती । अब उसके लिवासमें बनावका नाम न था । स्वच्छ-सफेद खादीके परिधानमें उसके चेहरेके चतुर्दिक् कृत्रिम सौन्दर्यकी छटा छिटकती रहती । इस सौन्दर्यमें अब गौरवकी गरिमा थी, आत्म-विश्वासका आभास था, और था हृदयका व्यापक विस्तार । अब उसके देखने, सोचने और समझनेके तरीके बदल गये थे । जीवनका तरीका बदल गया था । अब उसे भोग-विलासकी लालसा उत्पन्न नहीं करती । कृत्रिम जीवनकी रंगीनियाँ आकृष्ट नहीं करती । अन्तर्द्वन्द्वोंकी आगमें झपकर अन्तस् उसका सोना बन चुका था । संकल्प-विकल्पकी कड़ियाँ वह तोड़ चुकी थी । अब उसका लक्ष्य निश्चित था, पथ निश्चित था । संकल्पका संबल, विश्वासका सहारा, ज्ञानका आलोक और दलितोंके उत्थानका संदेशा लिये वह निर्भीक अपने पथपर बढ़ी जा रही थी ।

आज प्रातः नौ बजे 'समाज' की प्रतियाँ बेचते-बेचते वह गोल-बागमें पहुँची । आज लाजा लाजपतरायकी वर्षी थी । नगरके कांग्रेसी व गैर-कांग्रेसी लोग उनकी मूर्तिके सामने एकत्र हो उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर रहे थे । कांग्रेसका तिरंगा झंडा फहराया गया । 'विजयी-विश्व तिरंगा प्यारा, झंडा ऊँचा रहे हमारा' गीत गाकर झंडेकी शान ऊँची की गई । 'बन्दे मातरम्' गीत गाकर भारत-माताकी सुजला-सुफला

मूर्तिका ध्यान किया गया। मूर्तिके गलेमें मालाएँ डाल-डालकर अपने शहीद नेताके प्रति श्रद्धा-सम्मान अर्पित किया गया। भारत-माताकी जं ! खाला लाजपतरायकी जेजे ! इन्कलाब ! जिन्दाबाद ! इन नारोंसे वहाँका आकाश मुखरित हो चला। वहाँ उपस्थित सबके दिलोंमें सहसा त्याग और बलिदानकी भावना भर उठी। बेड़ियोंसे जकड़ी भारत-माताको मुक्त करनेका संकल्प सबल हो उठा।

लेकिन एक जरा-सी बातपर विवाद छिड़ गया। एक सम्मानित कांग्रेसी नेताके व्यवहारसे लोगोंको बड़ा क्षोभ हुआ। नेताजीने न तो भंडेको सलामी दी, न मूर्तिके गलेमें माला पहनाई। नेताजीका कहना था कि वृत्ति वे एक पक्के आर्य-समाजी हैं, अतः भंडेको नमस्कारकर और मूर्तिके गलेमें माला पहनाकर मूर्ति-पूजाके पासे स्वामी दयानन्दके सिद्धान्तोंको, आर्यसमाजके आदर्शको कलंकित नहीं कर सकते। नेताजी किसी डी० ए० बी० कालेजके प्रिन्सिपल भी थे। आर्य-समाजमें उनका प्रमुख स्थान था। यद्यपि रोबदार व्यक्तित्व था, फिर भी कई तरफसे उनपर प्रश्नोंकी झड़ी लगा ही दी गई।

इस गिरोहमें राधा भी शामिल हो गई। राधाके आकर्षक व्यक्तित्व एवं बोल-चालके स्वाभाविक एवं संगत तरीकेने बहुतोंको आकृष्ट कर लिया।

“प्रिन्सिपलजी !”—वह बोल रही थी—“आप यदि पक्के आर्य-समाजी हैं तो पक्के कांग्रेसी भी हैं ? कांग्रेसका तिरंगा झंडा कांग्रेसके मतसे देशकी सारी जनता और उसके मान-सम्मानका प्रतीक है ? उसके आगे शिर न झुकाना सारे देश और जनताका अपमान है ? और एक कांग्रेसीका ऐसा व्यवहार तो और भी अक्षम्य अपराध है ?”

सुनकर उपस्थित जनतामेंसे कुछने तालियाँ पीट दीं, और दो-एक अधिक उद्‌डने मुँहकी सीटी भी बजा दी। प्रिन्सिपलजीका पारा गरम हो उठा। फिर भी वे जवाबमें इस सौन्दर्यमयी तरुणीसे सम्मेलनकर खड़े—“इसमें अपराध कैसा जी ? यहाँ तो सिद्धान्तका सवाल है।

जिस इन्सानमें अपने सिद्धान्तपर डटे रहनेका मादा नहीं वह इन्सान नहीं !”—कहकर गर्वभरी आँखोंसे वे एक बार चारों ओर निहार गये ।

“ठीक है !”—राधा फिर बोली—“मैं सहमत हूँ आपसे, कि सिद्धान्त-हीन इन्सान इन्सान नहीं । लेकिन जिस सिद्धान्तके आचरणमें ज्ञान और समझका सहयोग नहीं, वहाँ सिद्धान्तका प्रश्न उठाना एक विडम्बना ही है प्रिन्सिपलजी ! मैं पूछती हूँ आपसे, कि स्वतन्त्र भारतका राष्ट्रपति या प्रधान-मन्त्री यदि आर्य-समाजी हो, तो क्या वह राष्ट्र-ध्वजको नमस्कार करनेसे इसलिये इनकार कर देगा कि वह आर्य-समाजी होनेके नाते मूर्ति-पूजाका विरोधी है और झंडाका अभिवादन मूर्ति-पूजा है ? और रह गई मूर्ति-पूजाकी बात । सो, कौन आर्य-समाजी मूर्ति-पूजक नहीं है ! मैं तो जब-कभी किसी आर्य-समाज-मन्दिर में गई हूँ, वहाँ बड़े आदरसे स्वामी दयानन्दका विशाल फोटो टंगा देखा है । और मैं समझती हूँ कि उस कागजी मूर्तिके प्रति भी सभी आर्य-समाजियोंके मनमें सम्मान-भावना रहती ही है । और इस सम्मान-भावनाको ही तो ‘पूजा’ कहते हैं प्रिन्सिपलजी ?”

इस बार तो बड़े जोरसे तालियाँ पीटी जाने लगीं । प्रिन्सिपल-महोदय तो ‘अग्निश्च-वायुश्च’ बन गये । उनके पास सिवा गुस्साके इस बातका कोई जवाब न था । मोर्चेपर डटे रहना उनके लिये अब आसान न था । जान बचाकर भाग निकलनेमें ही उन्हें समझदारी दीखी । चेहरेपर क्रोध और पराजयका बोझ लिये वे वहाँसे खिसक चले ।

लेकिन राधाका सिक्का जम गया । खासकर तरुणोंने उसे चारों ओरसे घेर लिया । ‘समाज’ की प्रतियाँ हाथों-हाथ बिक चलीं । अपनी अपनी ओर इस तेजस्वी सुन्दर तरुणीका ध्यान आकृष्ट करनेमें मानो-सबमें होड़ लग गई । हरेक उससे प्रश्न करता उसके निजी जीवनके बारेमें, ‘समाज’ और ‘समाज’ के उद्देश्यके बारेमें । मत-भेद होनेपर भी किसीमें किसी प्रकारकी उद्दण्डता प्रगट करनेका साहस सहसा नहीं

हुआ। उस क्षण राधाका रोब सबपर वालिब हो चुका था। इन जिज्ञासुओंमें एक विशिष्ट व्यक्ति भी शामिल थे। आप थे एक भारतीय बौद्ध भिक्षु। नाम था भदन्त प्रज्ञाकीर्ति। अभी-अभी ताजादम संकासे बौद्ध-धर्मकी दीक्षा लेकर भारतमें पधारे थे। जन्मतः पंजाबी थे। बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखें थीं। आकर्षक गोरे चेहरेपर प्रभावकारी व्यक्तित्वकी आभा थी। अपने छात्र-जीवनमें लाला लाजपतरायजीसे बहुत-कुछ उपकृत होनेके कारण आज उनकी मूर्तिके समक्ष उन्हें श्रद्धाञ्जलि भेंट करने आये थे।

उन आर्य-समाजी नेताजीको पराजितकर राधाने सबका ध्यान अपनी ओर खींच लिया था। भिक्षु-महोदय भी खिंच गये थे। राधासे पूछ-ताछ करनेपर जब उन्हें 'समाज' के स्वरूपके सम्बन्धमें कुछ जानकारी मिली, वे बहुत उत्सुक हो उठे। वे स्वयं प्रगतिशील थे। उनका दावा था कि बौद्ध-धर्म बुद्धिवादी होनेके कारण अन्य सभी धर्मोंसे प्रगतिशील है। फिर एक प्रगतिशीलका प्रगतिशीलाकी ओर झुकाव आश्चर्यकारी न था। भदन्त प्रज्ञाकीर्ति अपने लिये एक आश्रय-की खोजमें थे। उन्होंने सोचा, जिस संस्थाका उद्देश्य इतना विशाल हो; जिसमें राधा-जैसी बुद्धिवादिनी तेजस्विनी तरुणियाँ हों; यदि वहाँ ठिकाना लग जाय, फिर कहना ही क्या !

इस उद्देश्यको आगे रखकर उन्होंने राधाके अतिनिकट पहुँचने-की कोशिश की। अपने चेहरेपर मुस्कान भरकर राधासे वे बोले—
“खुब करारी खबर ली आपने उन आर्य-समाजीमहोदयकी ! बेचारे-को भागते रास्तातक नहीं सूझ रहा था ! आज सही मानेमें समझमें आया कि केवल किसी मुनिबसिटीकी ऊँची डिग्री अथवा ऊँचा मोहदा ही समझ-बूझकी कसीटी नहीं होती।”

जवाबमें राधाने केवल जरा मुस्कुरा दिया। वहाँ पासमें खड़े तरुणोंने 'बिल्कुल ठीक' कहकर स्वामीजीके साथ सहमति जताई। स्वामीजीका उत्साह बढ़ा। वे फिर बोले—“यह आर्य-समाज भी पोंगा-

पंथियोंका गढ़ ही है। समाजको घाब भी ईश्वर, वेद और आत्मा आदि रुढ़ियोंसे चिपकाये रखना चाहता है। एक प्राचीन बौद्ध विद्वानने मूर्खताके पाँच लक्षण बताये हैं—(१) वेदको प्रमाण मानकर उससे चिपके रहना, (२) ईश्वरको सृष्टिका कर्ता मानना, (३) स्नानको धार्मिक समझना, (४) जातिपर घमण्ड करना, (५) पापके विनाशके लिये तपस्या आरम्भ करना।” —कहकर उन्होंने वह मूल श्लोक भी पढ़ सुनाया—“वेदाः प्रमाणं कस्यचित्कतुं वादः, स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेपः। सन्तापारम्भः पापहानाय चेति, ध्वस्त-प्रज्ञानां पञ्च लिङ्गानि जाड्ये।”

भदन्तजीकी बात राधा और दूसरे भी ध्यान देकर सुनने लगे। स्वामीजीका उत्साह और बढ़ा। वे फिर बोले—“आज सारा हिन्दू-समाज, क्या सनातनी क्या आर्य-समाजी सभी इन मूर्खताओंसे चिपके हुए हैं। समाजको स्वस्थ एवं संस्कृत बनानेके लिये यह आवश्यक है कि भारतवर्ष पुनः भगवान् बुद्धकी शरणमें जाकर अपने पूर्वजोंकी मूर्खताका प्रायश्चित्त कर ले।”

इस लच्छेदार उपदेश-वाक्यसे इस बार सभी उत्कर्ण हो उठे। वहाँ खड़े उन तरणोंमेंसे कुछने केवल बौद्ध-धर्म एवं भगवान् बुद्धका नामभर सुना था। कुछने अपने स्कूली पाठ्य-पुस्तकमें इस सम्बन्धकी एक सामान्य ऐतिहासिक जानकारीभर प्राप्त की थी। किन्तु राधाने संक्षेपमें सभी धर्मोंका तुलनात्मक अध्ययन किया था। समाज-कार्यालयमें जब-तब कई बौद्ध-भिक्षुओंसे उसका साक्षात्कार भी हुआ था।

राधा बोली—“आइये स्वामीजी, एक जगह बैठकर बातें करें।” कहकर वह बागमें एक तरफ चल पड़ी।

इस प्रस्तावसे स्वामीजी भी प्रसन्न हुए, दूसरे भी। सभी राधाके पीछे-पीछे चलकर एक साफ-सुथरी जगहपर आ बैठे। सड़ियोंका महीना था। वहाँ धूप भी थी और शान्त वातावरण भी। सभी राधाकी ओर कौतूहलपूर्ण नेत्रोंसे देख रहे थे।

“क्षमा करेंगे स्वामीजी !”—राधा हाथ जोड़कर बोली—“एक बार जिस पोंगा-पंथसे भारतीय समाज मुक्त हो चुका है उसे पुनः उसके सिरपर थोपनेकी वकालत न कीजिये । जाने समाजको अभी कितने ऐसे पोंगापंथोंसे निबटना है । फिर एक नई बला को लानेकी क्या जरूरत ?”

स्वामीजीको राधासे ऐसे उत्तरकी उमीद न थी । भला एक प्रगतिशील समाजवादीसे वे क्योंकर ऐसे उत्तरकी उमीद करते जबकि देशके कई समाजवादी विद्वान बौद्धधर्मकी महत्ता एवं उपयोगिताका ढोल पीट चुके थे, पीट रहे थे ? कुछ तरुणोंको आश्चर्य हुआ, और कुछके चेहरोंपर मन्द मुस्कानकी हल्की रेखा दोड़ती दीख पड़ी ।

“ऐं !”—भदन्त प्रज्ञाकीर्ति उभरी हुई अरुचिको दवाकर आश्चर्य-भरे स्वरमें बोले—“भगवान बुद्धके उपदेशोंपर भी ऐसा आरोप करती हैं आप ?”

“नहीं ।”—राधाने निर्विकार स्वरमें जबाब दिया—“भगवान बुद्धके उपदेशोंपर नहीं, उनके रंगरूटों पर ।”

सब-लोग स्तब्ध रह गये ! स्वामीजीका चेहरा चौंक उठा ! उसपर लाली उभर आई । वे आवेशभरे स्वरमें बोले—“इसका मतलब ?”

“मतलब कोई खास नहीं स्वामीजी !”—राधा उसी निर्विकार भावसे बोली—“कहनेका तात्पर्य यह है कि भगवान बुद्धके उपदेशोंपर भी धर्मकी गहरी रजिस्टर्ड मुहर चिपक चुकी है । और जिस उपदेश या आदर्शपर यह मुहर चिपकी कि उसपर पोंगापंथीपन हावी हो चला ।”

“में आपको परामर्श दूँगा कि आप बौद्ध-वाङ्मय का अध्ययन करें । फिर आपकी यह भ्रान्त धारणा दूर हो जायगी ।”

“कितने वाङ्मयोंका अध्ययन करूँ स्वामीजी ?”—राधाने उसी सहज स्वरमें जबाब दिया —“जीवनका उद्देश्य केवल अध्ययन ही तो नहीं ?”

“फिर बिना अध्ययनके ही किसी धर्मपर ऐसा आक्षेप ठीक भी तो नहीं ? मैं तो पूरे दावेके साथ कहूँगा कि बौद्ध-धर्म पोंगापंथ नहीं, अपितु घोर प्रगतिशील है !”

राधा जरा हँसी । फिर सहज स्वरमें बोली—“इस प्रकारके तर्क या दावे नये नहीं हैं स्वामीजी ! इस बीसवीं सदीके इतने वर्ष बीत जानेपर भी अपने-अपने धर्मोंके लिये सभी इस प्रकारके तर्क पेश किया करते हैं । और जबसे हमारे देशके कुछ प्रतिभावान् व्यक्ति लंका जाकर बौद्ध-धर्मकी दीक्षा ले आये, तबसे वे भी अपने धर्ममें, उसके आचार-विचारोंमें प्रगतिशीलताके तत्त्व ढूँढ़-ढूँढ़कर उसकी तथ्याकथित प्रगतिशीलताका ढोल पीटने लगे हैं । लेकिन झूठ-मूठकी गहराईमें न जाकर सीधे-सादे शब्दोंमें मैं पूछती हूँ, कि यदि बौद्ध-धर्म इतना प्रगतिशील है तो आज संसारका बौद्ध-समाज इतना पिछड़ा क्यों है ? क्यों वहाँ भी गरीबी, गन्दगी और शोषणका बाजार गर्म है ?”

“यह तो आर्थिक प्रश्न है,”—स्वामीजीने तपाकते जवाब दिया—“धार्मिक नहीं ! समाजमें आर्थिक क्रान्तिके साथ इस प्रश्नका भी समाधान हो जायगा । किन्तु जीवनमें अर्थ ही सब-कुछ नहीं है । मानसिक खुराकके लिये, मनके सहारेके लिये धर्मकी आवश्यकता है ही । इस दृष्टिसे विचार करनेपर बौद्ध-धर्म अन्य धर्मोंकी अपेक्षा अधिक प्रगतिशील एवं अधिक उदार है । प्रतः आर्थिक दृष्टिसे प्रगत समाजमें धार्मिक जीवनके लिये सबसे उपयुक्त धर्म बौद्ध-धर्म ही है !”

“हाँ !”—राधा गम्भीरतासे बोली—“बौद्ध-धर्म किसी युगमें प्रगतिशील रहा होगा, लेकिन आज नहीं है । अपने प्रादुर्भावके समय वैदिक-धर्मकी रुढ़ियोंसे ग्रस्त समाजके लिये वह अवश्य प्रगतिशील था, किन्तु बादमें स्वयं रुढ़ियोंके जालमें फँसकर वह स्वयं प्रगति-विरोधी बन गया । स्वामीजी, आरम्भमें लगभग सारे वाद और आदर्श प्रगतिशील प्रतीत होते हैं । वे समाजमें, जन-जीवनमें प्रविष्ट होकर एक हलचल, एक क्रान्ति मचा देते हैं । लेकिन बादमें जब वे ही धर्म या

सम्प्रदायका रूप धर लेते हैं, उनके सारे प्रगतिशील एवं उत्तम तत्त्व रुढ़ियोंके पर्देमें छिपकर जन-जीवन से पृथक् हो जाते हैं। फिर वे मृट्टीभर लोगोंके व्यवसायका साधन बन जाते हैं। शोषकोंके हाथ-का खिलौना बनकर शोषणको प्रोत्साहित करते हैं।"

भदन्त प्रज्ञाकीर्ति अब बगले भाँकने लगे। उन्हें इस महिलासे ऐसे मुँह-तौड़ उत्तरकी उम्मीद न थी। और दूसरे व्यक्तियोंके लिये अब-तक तो इस तरुणीका सौन्दर्य ही आकर्षक बना हुआ था, किन्तु अब तो उसकी प्रतिभा, प्रगल्भता और पांडित्य भी उन्हें आकृष्ट करने लगे। अब वे चुपचाप कुछ सहमे-से, सम्मान-भावनासे इस तरुणी-को देखने लगे।

लेकिन प्रज्ञाकीर्ति हार मानना नहीं चाह रहे थे। बोले—“मानता हूँ आपकी बातको। बहुत अंशोंमें सही है आपका कथन। किन्तु बौद्ध-धर्मके बारेमें ऐसा नहीं कहा जा सकता। उसमें प्रगतिशील और उदार तत्त्व अन्य धर्मोंकी अपेक्षा कहीं अधिक हैं।”

“उदाहरणके लिये ?”

“उदाहरण तो अनेक है।”—कहकर वे किसी युगके एक बौद्ध तिब्बती नरेशकी साम्यवादी प्रवृत्तिकी कथा सुनाने लगे।

“रहने भी दीजिये !”—राधा उन्हें रोककर बोली—“ऐसे गड़े मुर्दे उखाड़नेसे अब क्या लाभ ? इससे मिलती-जुलती कथाएँ तो कई अन्य धर्मकी पौराणिक कथाओंमें भी पाई जाती हैं। बौद्ध जातककी ऐसी अनेक मनोरंजक कथाएँ भी पढ़ चुकी हैं। मेरा तो पूछना है कि मौजूदा बौद्ध-समाजमें है कोई ऐसा उदाहरण ?”

“हाँ !”—प्रज्ञाकीर्तिजी पुनः तपाकसे बोले—“बहुतेरे उदाहरण हैं ! बौद्ध-धर्म ब्राह्मण-धर्मकी तरह जात-पातके शिकंजेमें कसकर किसीको हीन नहीं बनाता। छूतछातकी शैतानी व्यवस्थासे मनुष्यकी नजरोंमें मनुष्यको पतित नहीं बनाता।”

“तब बौद्ध-धर्म ही क्यों प्रगतिशील और उदार माना जाय

स्वामीजी ?” —राधाने मुस्कुराकर जवाबमें पूछा—“यह जात-पात और छुआछूतका टटा न ईसाइयतमें है, न इस्लाममें ? वहाँ भी प्रेम और भाईचारेके उादेश दिये गये हैं ? इस्लाम देशमें पहलेसे मौजूद भी है ? इस दृष्टिसे यदि सारा देश इस्लाम कबूल कर ले तो आज ही यहाँ-से विदेशी सत्ताकी मिट्टी पलीद हो जाय ? क्यों, क्या विचार है आपका स्वामीजी ?” —रहकर वह मुस्कुराने लगी ।

उधर कुछ तरुणोंने राधाके तकंके समर्थनमें ताली पीट दी । कुछेक चुप भी रहे । लेकिन प्रज्ञाकीर्तिजी जोर देकर बोले—“इस्लाम हमारे लिये विदेशी है, अराष्ट्रीय है ! अतः वह ग्रहण नहीं ! इसके अतिरिक्त उसने भी मानवको आत्मा और परमात्माके पचड़ेमें डाल रखा है । नवीन वैज्ञानिक दृष्टिसे भी बौद्ध-धर्म ही हमारे लिये अधिक उपयुक्त है । अतः राष्ट्रीयता और प्रगतिशीलता उभय दृष्टिसे हमें भगवान् बुद्धकी ही शरणमें जाना चाहिये !”

इस बार स्वामीजीके समर्थनमें कई तरुणोंने ताली पीटी । स्वामीजीको बल मिला । अपने पक्षके औचित्यका अभिमान उनके चेहरेपर प्रगट हो चला । उन्होंने मुस्कुराते हुए अपनी बड़ी-बड़ी आँखों-से एक-दो बार अगल-बगल निहारा भी ।

राधा लेकिन इसबार जोरसे हँस पड़ी । बोली—“यह क्या बोल गये आप स्वामीजी ? यदि आपके इस राष्ट्रीय दृष्टिकोणको सर्वत्र अपना लिया जाय, तो भारतसे बाहर बौद्ध-धर्मकी मिट्टी ही पलीद हो जाय ? जरा बोला करें तो सोच-समझकर । लगभग उन सभी देशों-में अपना स्वदेशी धर्म भी है जहाँ विदेशी बौद्ध-धर्म छाया हुआ है । यह तो ‘मियाँकी जूती मियाँके शिर’ वाली बात हो जायगी श्रीमानजी ! और रह गई ईश्वर और आत्माके पचड़ेकी बात । सो, यदि सच कहा जाय तो बौद्ध-धर्म भी इस पचड़ेसे मुक्त नहीं हो सका है ।”

स्वामी प्रज्ञाकीर्ति क्षणभर अप्रतिभ हो गये । फिर बोले—“कैसे ?”

और राधाने बेधड़क जवाब दिया—“ऐसे स्वामीजी, कि ईश्वरकी

जगह स्वयं भगवान बुद्धने हड़प रखी है। अनीश्वरवादी बौद्ध-समाज भगवान बुद्धकी मूर्तियोंके आगे उसी भावसे माथा रगड़ता है, जिस भावसे ईश्वरवादी हिन्दू-समाज भगवान राम-कृष्णकी मूर्तियोंके आगे, और ईसामसीहकी मूर्तिके सामने ईसाई-समाज। और इस प्रकारकी बात आधुनिक समाजमें भी देखी जाती है। इसी लाहौरमें एक नवस्थापित समाज है जिसका स्थापक किसी समय किसी अन्य समाजका वेतनभोगी प्रचारक था। चेहरा-मोहरा उसका अच्छा था। बोलनेकी शक्ति अच्छी थी। उसकी गर्दनपर स्वयं पैगम्बर बननेकी हवस सवार हुई। चट एक नये समाज-का संस्थापक बन बैठा। ईश्वरवादका उसने खण्डन किया, किन्तु अपने अनुयायियोंके लिये वह स्वयं भगवान बन गया। यह सब देखकर लगता तो ऐसा है स्वामीजी, कि इस प्रकारकी धूर्तता और मूर्खता शायद सृष्टिके शुरूसे ही चली आ रही है।”—कहकर राधा जरा जोरसे हँसी और उसके साथ दूसरे भी हँस पड़े।

भदन्त प्रजाकीर्ति अप्रतिभ हो गये। लेकिन चेहरा उनका लाल हो उठा। वे आवेशके स्वरमें बोले—“ऐसा नहीं कहना चाहिये ! दूसरोंकी भावनाका ध्यान रखना चाहिये !”

“कहाँ-तक मुँह बन्द रखा जाय स्वामीजी ?”—राधा उसी प्रकार हँसती हुई बोली—“किस-किसकी भावनाका ख्याल रखा जाय ? नालन्दा, तक्षशिला और तस्तबहाईकी खदानोंसे निकली मूर्तियोंके ढेरको देख मेरे तो रोंगटे खड़े हो जाते हैं ! मानवताके बजाय पत्थर-पूजाका इतना व्यापक प्रचार ! भले ही ये मूर्तियाँ आज पुरातत्त्व-वेत्ताओंके कामकी हों, लेकिन इतना तो राधा निश्चयसे कह सकती है कि अपने समयमें सारे देशमें फैले ये अजीब अजायब-घर जनताके हितके लिये नहीं ही थे।”

दूसरे लोग हँसने लगे, और स्वामीजीका चेहरा और भी लाल हो उठा ! राधाके तर्कों और व्यंगोंके क्षरोंचे खाकर उनका धार्मिक उत्साह क्रोधमें परिणत हो चला !

“मैं इसे बौद्धिकता नहीं मानता !”—वे क्रुद्ध स्वरमें बोले—“मैं इसे कमीनापन समझता हूँ कि करोड़ोंके पूज्य-स्थान बौद्ध-मन्दिरोंको अजीब अजायब-घरकी संज्ञा दी जाय ! मैं इसे प्रगतिशीलता नहीं मानता !”—कहकर वे क्रोधमें धर-धर काँपने लगे ।

उन्हें क्रोधमें उठनेपर उत्तारू देख राधा इस बार हाथ जोड़ जरा मीठे स्वरमें बोली—“आप हमारे पूज्य कोटिमें हैं स्वामीजी ! नाराज हो पड़ना तो हम-जैसे मामूली लोगोंका काम है । ‘ओ बालक कछु अनुचित करहीं, गुरु-पितु-मातु मोद मन भरहीं’ । अपराध एक बार माफ़ हो स्वामीजी !”

स्वामीजी इस प्रार्थनापर भट शान्त हो गये । बोले—“मैं क्रोध नहीं करता, किन्तु हर बातकी एक सीमा होनी चाहिये ।”

“बात सही है । गलती हो गई मुझसे । लेकिन एक बात । बौद्ध बुद्धिवादी होनेका दावा करते हैं । फिर बड़े आश्चर्यकी बात कि बुद्धि-की शरारती हरकतोंसे ऊबकर आप-जैसे लोग इतनी जल्दी क्रुद्ध हो पड़ें ! यह तो आप-जैसे विद्वानोंको शोभा नहीं देता स्वामीजी ?”

“नहीं, क्रुद्ध मैं नहीं होता । लेकिन बात जरा सोच-समझकर करनी चाहिये । एक सीमासे ।”

“अच्छा, माफ़ करेंगे । अबसे ख्याल रखूँगी ।”—यह आश्वासन देकर राधाने बात आगे बढ़ाई—“आपने आत्म-वादकी बात चलाई स्वामीजी ! सो प्रकारान्तरसे किसी भी धर्मका व्यक्ति इस आत्म-धर्मसे मुक्त नहीं है । आत्मवादका निष्कर्ष है स्वसत्ता-विषयक अभिमान—ग्रहंभाव । आत्माके अजर-अमर होनेकी कल्पना अथवा उसके विरोधमें संस्कार-प्रवाहकी कल्पना एक भिन्न विषय है । लेकिन मेरा ख्याल है कि एक अनात्मवादी बौद्धमें भी स्वसत्ता-विषयक अभिमान तो पाया ही जाता है ? इसलिये यह कहना या समझना, अयुक्तिक न होगा कि इस प्रकारका अभिमान आत्म-अभिमानसे भिन्न नहीं है ।”

“ठीक है !”—स्वामीजीने जवाब दिया—“हम क्षणिकवादी हैं ।

जिस क्षणमें स्वसत्ता-विषयक अभिमान करते हैं, उस क्षणमें वह क्षण भी सत्य, वह अभिमान भी सत्य । किन्तु आत्मा नामक वस्तुको मानने-की हम आवश्यकता नहीं मानते ।”

“ठीक है, मत मानिये । लेकिन मेरी रायमें आपके क्षणिकवाद-का निष्कर्ष है हर वस्तुमें अकाट्य-परिवर्तनशीलता । और इसीलिये बौद्ध विचार-धारा प्रगतिशील कही जाती है । लेकिन इन-सब बातोंके बावजूद भी बौद्ध-समाज भी आज उन्हीं रूढ़ियोंसे चिपका है जिनसे कि संसारके अन्य धार्मिक समाज । फिर बताइये कि विशेषता क्या रही ?” फिर वह स्वामीजीके चीघर (बौद्ध-साधुओंका लिवास) की ओर निर्देश करके बोली—“दूर जानेकी जरूरत नहीं । आप अपनी इस बर्दीको ही लीजिये । किसी युगमें, आजसे हजारों वर्ष पहले, बौद्ध-भिक्षुओंके लिये इस बर्दीकी कल्पना और व्यवस्था की गई थी । किन्तु आज हजारों वर्षके बाद भी उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ । वह ज्यों-की-त्यों कायम है । वे ही पुरानी रूढ़ियाँ, वे ही पुराने आचार-विचार । आपके ही सिद्धान्तके अनुसार यदि किसी क्षणमें वह सत्य है, तो सदा ही उसे सत्य मानकर उससे चिपके रहना समझदारी तो नहीं स्वामीजी ?”

कुछ तरुणोंने पुनः तालियाँ पीटीं । स्वामीजी जरा अप्रतिभ हो गये । लेकिन फिर भी जरा जोर देकर बोले—“जो सत्य किसी कालमें सत्य है, वह विज्ञान-प्रवाहसे, धर्म और संस्कार-प्रवाहसे सदा सत्य रह सकता है ।”

स्वामीजीकी यह विज्ञान और धर्म-संस्कारके प्रवाहकी बात सिवा राधाके और किसीकी समझमें नहीं आई । वे चुपचाप सुनते रहे ।

“यदि हर बातमें इस प्रवाहवादका आश्रय लें,—राधाने जवाब दिया—“तो हर पोंगापंथके औचित्यमें इस प्रकारके तर्क पेश किये जा सकेंगे । तब तो आपकी प्रगतिशीलताकी ही टें बोल जायगी ।

सत्यके भी तो अनेक भेद होते हैं स्वामीजी ? एक त्रिकाल-सत्य होता है, एक काल-सत्य और एक तत्काल-सत्य । जैसे—जीवमानके लिये आहार त्रिकाल-सत्य है । मनुष्यके लिये आहारके अतिरिक्त सुख और दुःखके प्रति संवेदनात्मक राग और विराग यह त्रिकाल-सत्य है । इस सत्यका किसी भी देशमें, किसी भी समाज में, किसी भी कालमें अपलाप नहीं किया जा सकता । और काल-सत्य, जैसे—देश-कालके अनुसार भोजन-वसन, आवास-परिधान और रहन-सहन इत्यादि की व्यवस्था, और तत्काल-सत्य जैसे—युद्धके मोर्चेपर शत्रुके गोलोंसे बचनेके लिये खन्दकमें छिपाने आदि-का विधान । यह विधान और आचरण उस कालके लिये सत्य होकर भी सदाके लिये सत्य नहीं ही है । सैनिकोंके लिये हजारों वर्ष पहले जो युद्धके हथियार थे, युद्ध-कलाके तरीके थे वे आजके युगमें उपयुक्त नहीं ही हो सकते । इसी तरह किसी समयके विचार और आदर्श अपने भीतर अमरत्वके बीज रखते हुए भी वे उसी रूपमें सदाके लिये मान्य नहीं होते । इसीलिए मैं आपसे प्रार्थना करूंगी कि यदि सही मानेमें आप अपनेको प्रगतिशील मानते हैं, यदि एक नये समाज और संसारके निर्माण-के सपने देखा करते हैं, तो समाजपर फिरसे बौद्ध-धर्म लादनेका न आप नारा लगायें, न उसका प्रचार करें । वह किसी कालके लिये सत्य होकर भी आजके लिये असत्य बन चुका है । हम पीछेकी ओर न मुड़कर आगे-की ओर चलें । हम नये-नये सुन्दर सपने देखें; नये-नये उच्च विचारोंको कार्यान्वित करनेका प्रयत्न करें । तभी हम सच्चे मानेमें प्रगतिशील कहे जा सकेंगे, भयवा कहे जानेका दावा कर सकेंगे ।”—कहकर राधा चुप हो गई ।

राधाकी यह बात जैसे सभी समवेत व्यक्तियोंको अच्छी लगी । बहुतोंके मुखसे एक साथ गंभीर एवं उल्लासभरी स्वर-सहरी गूँज उठी—“बहुत ठीक !!!”

लेकिन स्वामीजी हार मानना नहीं चाह रहे थे । बोले—“अभी कुछ भ्रम है आपको । अभी गहराईसे समझनेकी कोशिश नहीं की आपने ।”

“अधिक गहराईमें जाकर वास्तविकताको छिपानेकी जरूरत है भी नहीं स्वामीजी ! झूठ-भूठकी दलीलोंके गहरे गड्ढेमें असलियतको धकेलनेसे लाभ क्या ? इस तरह तो.....”

राधा हक गई । उसने देखा कि सामनेसे लीला, चेहरेपर परेशानीका बोझ लिये उसीकी ओर जल्दी-जल्दी बढ़ी आ रही है । ‘एक मिनट स्वामीजी !’—कहकर राधा झट उठ खड़ी हो लीलाकी ओर चली गई ।

निकट आकर लीला जरा बेचैनीके स्वरमें धीरेसे राधासे बोली—
“तुम्हारे मास्टरजी गिरफ्तार कर लिये गये राधा ! अभी-अभी लाज-पतराय-भवनमें । एक बने हुए मित्रका विश्वासघात ! अब मेरी पारी है । तुम चिन्ता न करना । मैं फरार हो रही हूँ । तुम ‘समाज’ में जाकर इसी वक्त सबको सूचित कर दो ! सावधान कर दो !”—कहकर वह झट एक ओर अदृश्य हो गई ।

राधा एकाएक बेचैन हो उठी । बेचैनीको बहुत कुछ दबाते हुए वह गोष्ठीमें आई । वह स्वामीजी तथा अन्य व्यक्तियोंसे हाथ जोड़कर बोली—“माफ करेंगे आप-लोग । इसी समय एक बहुत जरूरी कामसे मुझे एक जगह जाना है । फिर कभी मिलेंगे ।”—कहकर उत्तर या किसीकी सहमतिकी प्रतीक्षातक न करके वह समाज-कार्यालयकी ओर बड़े वेगसे चल पड़ी । किसीकी समझमें कुछ आया नहीं । सभी आश्चर्य-विजडित आँखोंसे उस ओर देखते रह गये ।

[३३]

‘वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि’ । अन्याय-अत्याचारके समक्ष ही वह वज्र-सा कठोर बन जाता । अन्यथा वह कुसुम-सा कोमल था । मक्खन-सा मुलायम । सरलता उसमें कूट-कूटकर भरी थी । किसीपर विश्वास कर लेना उसके लिये बड़ा आसान था । फिर यदि अपने एक मित्र सुधीरपर उसने विश्वास किया तो आश्चर्य क्या ?

सुधीर हँसमुख था । मिष्टभाषी था । शकल-सूरतसे सुन्दर भी था । और सत्रसे अधिक पढ़े-लिखे सभ्य-सुसंस्कृत व्यक्तियोंमें वह गिना जाता । वह कवि था, साहित्यिक था, कई पुस्तकोंका रचयिता भी था । फिर यदि राजन उसे मित्र मानकर उससे सहमत हो गया तो उसने बुरा क्या किया ? उसे क्या पता कि इस सुन्दर, सुमुख, सुसंस्कृतमें घोर असुन्दरता और घोर असंस्कार छिपा हुआ है ? वह एक स्थानीय कालेजमें हिन्दी-साहित्यका अध्यापक भी था । फिर यदि सरस्वतीके सेवक, राष्ट्रके निर्माता एक अध्यापककी मित्रताका विश्वास न किया जाय तो और किस चीजका विश्वास किया जाय ?

जबसे सुधीरने समाचार-पत्रोंमें छपी पुरस्कारकी रकम देखी, हृदय उसका आन्दोलित हो उठा । उस सस्तीके जमानेमें पाँच हजार रुपयेका इनाम ! रकम कम न थी ! सरकारकी नजरोंमें राजन इतना खतर-नाक है कि उसे पकड़वानेके निमित्त इतनी बड़ी रकमकी घोषणा ! सरकारके लिये उसे पकड़ना भले ही आसान न हो, पर पकड़वानेवालेके लिये तो यह अत्यन्त आसान काम था । आनन-फाननमें उसे पकड़वाकर इस गहरी रकमपर अधिकार जमाया जा सकता था ।

सुधीर स्थिर न रह सका । और सुधीर-जैसे व्यक्तिके लिये स्थिर रहना आसान भी नहीं था । भले ही वह पढ़ा-लिखा प्रतिभाशाली था,

किन्तु उसके अध्ययनमें, उसकी प्रतिभामें चरित्रका सहयोग कभी न था। उसकी ऊपरकी सारी सुन्दरता भीतरसे खोखली थी।

अपने कमरेमें बैठा अपने तई वह सोचने लगा—“आशा तो नहीं कि सारे जीवनमें कभी इतनी रकम इकट्ठी कर सकूँगा। इतनी मेहनतसे एम० ए० पास किया। कहनेके लिये कालेजका ‘प्रोफेसर’ है, पर पाता हूँ महीनेमें कुल पवहत्तर रुपल्ली, जबकि उसी कालेजमें अंग्रेजी-के अध्यापकका वेतन कहीं अधिक है। मैं हिन्दीका अध्यापक जो ठहरा ! कालेज यद्यपि आर्य-समाज द्वारा संचालित है; वहाँ हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान-का नारा लगाया जाता है, पर व्यवहारमें ? खैर ! कालेजसे जो कुछ पाता हूँ, उससे किसी प्रकार परिवारका निर्वाह हो जाता है। पुस्तकोंकी लिखाईसे तो ‘हरि ओ३म् तत्सत्’ ही मिलता है। कितनी कठिनाईसे, बोर्डके मेम्बरोंकी कितनी खुशामदें करनेके बाद उस साल अपनी एक पुस्तक ‘भूषण’की परीक्षामें रखा पाया था। उससे कुछ अवश्य मिला। पर प्रकाशक उसमें भी बेईमानी कर गया। खैर ! जहाँ भी देखता हूँ वही बेईमानी। सभ्यता-संस्कृति तो सब दिखावेके लिये हैं। और जब सारा समाज ही ऐसा बना हुआ है, तो मैं ही क्यों पीछे रहकर बेवकूफ बनूँ ? मौका अच्छा आया है। इस मौकेसे चूकना बड़ी मूर्खता होगी। यह राजन तो है ही मूर्ख। अभाग ! देशकी सेवा करने चला है ! चला है अंग्रेजोंको, विदेशियोंको यहाँसे भगाने ! मजदूरोंकी हुकूमत कायम करने ! मूर्ख ! यह भी कभी संभव है ? यदि मूर्ख अपनी मूर्खताका दण्ड पा ले, तो इसमें मेरा क्या दोष ? मेरा क्या कसूर ? ऐसा तो होना ही चाहिए !”

सुधीर कालेजमें पढ़ाने गया। वह अबतक वहाँ रहा, क्लासमें या क्लाससे बाहर, निरन्तर आज इसी एक विचारसे हृदय उसका आक्रांत रहा। थोड़ी देरके लिये भी अकेला होनेपर उसके मानस-पटपर राजन आ-खड़ा होता; वह पाँच हजार पुरस्कारकी गाढ़ी रकम आ-खड़ी होती। वह घर आया। कुछ अनमना-सा, विक्षिप्त-सा, असंगत-सा। नाश्ता

किया। फिर एक 'ट्युशन' से निवटने बाहर निकल पड़ा। वहाँ भी उसकी मनोदशा आज स्थिर न रह सकी। किसी प्रकार वहाँसे निवटकर, विचारोंमें डूबा हुआ अन्यमनस्क-सा सड़कोंपर चक्कर लगाता वापस घर आया। रोटी खाई। फिर कुछ देर इधर-उधरका चक्कर लगाकर वापस आकर खाटपर जा पड़ा। आज बाल-बच्चोंके हास-परिहासमें अथवा पत्नीसे वार्तालापमें अन्य दिनोंकी भाँति मनोयोग वह न दे सका।

क्रमशः रजनी निस्तब्ध होती गई। सुधीर अपनी खाटपर बार-बार करवटें फेरता रहा। वह सोच रहा था—“यदि इस योजनामें मैं सफल हो गया ! मेरा सारा भविष्य प्रशस्त बन जायगा ! उस गहरे पुरस्कारके अतिरिक्त अन्य अनेक सुनहली संभावनाएँ ! सरकारका खैरवाह बनूँगा ! अच्छी-से-अच्छी सरकारी नौकरी ! ऊँचे-से-ऊँचे ओहदे ! मनुष्य इसी प्रकार तो उन्नतिके शिखरपर आरुढ़ होता है ! यही तो तरीका है ऊँचे उठनेका ! आज अंग्रेजी राज्यमें जितने भी ऊँचे उठे लोग हैं सब इन्हीं तरीकोंकी ही तो उपज हैं ? और ऐसा तो सदासे होता आया है।.....इसे कोई गद्दारी कहे, विश्वासघात कहे, कहने दो। नुकताचीनी करने दो। बस, जीवनका लक्ष्य होना चाहिये अपनेको बढ़ाना। परवाह नहीं साधन कैसे भी हों। ‘यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्’ का ‘मोटो’ सामने रखना चाहिए। और यदि सोचा जाय, तो कौन बचा है इन बातोंसे ? ये सारे-के-सारे सरकारी अफसर ? और यह पंजाबका प्रधान-मंत्री सर सिकन्दर ? उसके किसी लकड़वादेने सन् ५७ में जानपर खेलकर अंग्रेजोंकी सेवाकी थी। आज उसकी सारी आल-ओलाद मजे लूट रही है। भले ही कोई कह ले गद्दार उसे। क्या बिगड़ता है उसका ?.....और ये बड़े-बड़े समाज-सेवक लोग ? सिवा रंगे सियारके ये लोग हैं क्या ? सब-कुछ देख ही रहा हूँ ! अपने तन-मनसे अनुभव भी कर ही रहा हूँ।.....राजन ! तू सचमुच मूर्ख है ! चाहनेपर तू क्या-से-क्या बन सकता था। तेरी-जैसी प्रतिभाके लोग

तो.....मूर्ख ! यदि तुझ-जैसे लोग न हों, तो हम-जैसेको बड़नेका मौका कैसे मिले ?”—सोचते-सोचते वह एक बार मन-ही-मन जोरसे हँस भी पड़ा ।

अब वह खाटपर पड़ा न रह सका । उठकर अपने कमरेमें चहल-कदमी करने लगा । उस सर्दीकी रातमें भी वह गर्मी महसूस कर रहा था । यह उत्साहकी गर्मी थी । महत्वाकांक्षाके नशे की खुमासी थी । चहल-कदमी कर रहा था, बहुत-कुछ सोच रहा था । फिर एक समय वह खाटपर आ पड़ा । रजाईमें छिपा-छिपा सोवने लगा—“लेकिन, राजन-को यदि मेरे मनोभावोंका आभास मिल गया ? यदि वह जान गया ? फिर तो कल्याण नहीं !”—सोचते-सोचते एकाएक उसका सारा शरीर पसीनेसे तर-ब-तर हो गया । उसे लगा कि राजन और राजनके साथियोंकी गिस्तीर्जें उसीकी ओर तनी हुई हैं !

लेकिन भयकी यह भावना अधिक दन्तक न रही । सुधीर मन-ही-मन बोला—“यदि वह बहादुर है, निर्भीक है, तो साथ ही बड़ा बुद्ध भी है । उसे चकमा देना तो चुटकीका खेल है । मित्रता उससे गाँठ ही चुका है । जालमें मछलीके आते अब देर नहीं लगेगी ।”

फिर कुछ सोचकर उसके दिलमें सहसा निराशाका भाव जाग पड़ा । वह मन-ही-मन बोला—“इस संसारमें केवल मैं ही तो ऐसा नहीं हूँ ? दूसरे भी इन तरीकोंसे लाभ उठाने की ताकमें होंगे ही ? कहीं मौका हाथसे निकल गया तो ? इस दौड़में यदि पीछे रह गया तो ?..... नहीं-नहीं ! इस अवसरसे चूकना बड़ी मूर्खता होगी ! जरासे विनम्बसे सारा-कुछ चौपट होनेका खतरा है । मैं इसी वकन जाके किसी पुलिस-अफसरमें.....पुलिस-सुपरिण्डेंडेंटसे जाकर मिलता हूँ । उसे अपनी योजनाकी सूचना देता हूँ ।”—सहकर वह खाटसे उठ पड़ा । बिजलीका उसने स्विच दबाया । मेजपर खट-खट करती ‘टाइमरीस’ में उस समय सिर्फ रातके दो बजे थे । कपड़े पहनकर जाने की वह तैयार भी हो पड़ा । लेकिन फिर उसने सोचा—“इस समय जाना ठीक न होगा । बिल्कुल सबेरे,

तड़के ही जाकर मिटूंगा उससे ।”—कहकर उसने जोरकी एक जम्हाई ली । फिर वह कपड़े उतारकर खाटपर आकर लेट गया ।

×

×

×

राजन उस समय अपने मित्र मधुकर मूलगांवकरके घर बैठा बातोंमें मशगूल था । मधुकर सुधीर का भी मित्र था । सुधीर वहाँ निभीक पहुँचकर दोनों हाथ जोड़कर व्यग्य और मजाकके स्वरमें राजनसे बोला—“अपने प्रभु की खोजमें तीनों त्रिलोककी खाक छान डाली जनाव !”

“आइये जनावे-आली !”—राजनने मुस्काकर उसका स्वागत करते हुए कहा—“मे तो तेरे पास बन्दे, मुझको कहाँ ढूँढो ?.....अच्छा, इस खाटपर ही बैठ जाओ । मजेमें तो हो ?.....चेहरा देख लगता तो ऐसा है जैसे तुम सारी रात किसी चिन्तामें परेशान थे । घर-बाहर सभी अच्छे तो हैं ?”

सुधीर जरा चौंक पड़ा । यद्यपि चलते समय दर्रंगामें उसने चेहरा अपना अवश्य देखा था, किन्तु उसकी रंगतमें खास परिवर्तन उसने लक्ष्य नहीं किया था । क्षणभरके जिये वह वास्तवमें डर गया कि राजन उसके मनोभावको भाँप तो नहीं गया ? राजन उसका गुरु तो नहीं निकल ? लेकिन राजनके अंतिम वाक्यने उसे कुछ तसल्ली दी । उसने सोचा, जागरणवा बिन्ह होगा ।

उसने अपनी सफाई पेश करते हुए कहा—“घर-गृहस्थीमें फँसकर जिस-तिस दिन परेशान हो जाना असम्भव तो नहीं ? तुम तो भाग्यके सिकन्दर ठहरे भाई ! घर-गृहस्थीमें रहते हुए भी उससे अलग हो । कमलके पत्तेपर जल की बूँद की तरह । एकके बजाय दो-दोके रहते भी निश्चिन्त हो । और इधर अभागे हम हैं जो एक भी नहीं सम्हाल पा रहे । समुद्री मुर्गियों की तरह झंडे-पर-झंडे पोड़ती जा रही है । एक साल भी विश्रामका नाम नहीं लेती । देशकी खाद्य-समस्याकी ओरसे उसने त्रिकुल मानो आँखें मूँद रखी हैं । फिर यदि किसी दिन परेशान हो पड़ूँ, रातको नींद न आये, तो इसमे मेरा क्या कसूर, भाइयो !”

सुधीरकी सफाईपर घड़े जोरका कह-कहा गूँज उठा। राजन भी हँसा, मधुकर भी, और मधुकरकी धर्मपत्नी श्रीमती सुधा मूलगाँवकर भी।

अब सुधा जरा मुस्कुराकर अपने गोरे चेहरे और काली-काली आँखों-में व्यंग्य भरकर बोली—“यह तो एक-तरफासफाई है भाई-साहब ! सही-सही फैसला तो तब दिया जा सकेगा जब वादी-प्रतिवादी दोनों ही पक्ष मौजूद हों।”

फिर एक बार हँसीका कहकहा।

“बहिनजीने बिल्कुल ठीक कहा !”—राजनने हँसते हुए सुधाका समर्थन किया। फिर सुधीरसे बोला—“सच-सच बताओ, कोई ऐसी-बंसी बात तो नहीं ?”

“नहीं जी !”—सुधीर इस बार स्वस्थ होकर बोला—“रात काफी देरतक टाल्स्टायका प्रसिद्ध नावेल ‘वार एंड पीस’से उलझा रहा। भई, कमाल कर दिया है टाल्स्टायने भी ! एक बार शुरू किया तो बगैर खत्म किये छोड़नेकी जी किया ही नहीं। गजबकी प्रतिभा है ! यों उसकी प्रतिभाका दर्शन ‘ग्रन्ना केरेनिना’ और ‘रेसरेक्सन’ में मैं कर चुका था, पर इस ‘वार एंड पीस’ में तो उसकी प्रतिभा जैसे चरम चोटीपर पहुँची दीखती है। खैर ! देखो, एक खास कामसे आया है तुम्हारे पास।.....हाँ जी मधुकर, तुम भी सुनो। तुम्हें भी सुनना ही पड़ेगा। हाँ जी, सुधाजी, आप भी जरा ध्यान देकर सुनें।”

उसके कहनेके ढंगपर सबको जरा आश्चर्य हुआ। लेकिन राजनने मुस्कुराकर कहा—“तुम इस प्रकार भूमिका क्यों बाँध रहे हो ? सीधे सुना क्यों नहीं देते ?”

“अच्छा भई !”—सुधीरने जवाब दिया—“सीधे ही सुन लो। एक ‘संस्कृति-बंध’ स्थापित करनेकी बात हम-लोग सोच रहे हैं। कल भी कई मित्रोंसे इस सम्बन्धमें बातें हुईं। और तुम्हें याद है न ? उस दिन जब हम-लोग जहाँगीरके मकबरेसे नूरजहाँकी कब्र देखने गये थे, वहीं-

पर इस सम्बन्धकी बातें चली थीं न ! तो, जो कुछ भी हो, अब 'संस्कृति-संघ' स्थापित होके ही रहना है। और यह भी निश्चित है कि उसका मन्त्रित्व श्रीमान् राजनजीको ही सम्हालना है। यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि अपने समाजकी सांस्कृतिक धाराको एक व्यवस्थित रूप देनेके लिये यह बड़ा आवश्यक भी है। इसमें अधिक विलम्बकी अब आवश्यकता नहीं है। परसों पंजाब-केसरी लाला लाजपतरायजीकी वर्षी है। अपने इस राष्ट्र-नेताकी पुण्य-स्मृतिमें उसी दिन लाला लाजपतराय-भवनमें इस संस्कृति-संघकी स्थापना होगी, उद्घाटन होगा। कुछ अच्छे-खासे लोग भी निमन्त्रित किये जायेंगे। और....."

"अरे, अब बस भी करो !"—मधुकरने उसे रोकते हुए कहा—
"इतने लम्बे-चौड़े व्याख्यानकी जरूरत क्या है ? समझ तो गये कि एक 'संस्कृति-संघ' स्थापित करना है। परसों संध्याको लाजपतराय-भवनमें इकट्ठे होकर स्थापित कर लेंगे। लेकिन मैं तो स्पष्ट शब्दोंमें कहूंगा कि मन्त्रित्वके लिये किसी अन्य व्यक्तिको ढूँढ़ो। बल्कि सबसे अच्छा रहेगा कि तुम स्वयं मन्त्रित्व सम्हालो। लेकिन राजनको इस कामके लिये फुसंत नहीं है, यह तुम भी जानते ही हो। बल्कि मैं तो कहूंगा कि अभी ऐसी जगहोंमें, गोष्ठियोंमें राजनका शामिल होना ठीक नहीं है। तुम नहीं जानते कि सरकार अपने इस दामादके लिये अब कितनी बेचैन हो उठी है ! कल क्या अखबारोंमें उतने बड़े इनामकी घोषणा नहीं पड़ी तुमने ?"

सुधीर सहसा चौंक उठा ! पर झट उसने अपनेको सम्हाला। उसे लगा कि उसका बना-बनाया खेल बिगड़ रहा है। वह मधुकरपर मन-ही-मन नाराज होकर भी ऊपरसे ममताभरे नाराजगीके स्वरमें बोला—
"सरकार सालीकी ऐसी-तैसी ! आखिर हम-लोग क्या मर गये होंगे वहाँ ? जेलकी दीवार तोड़कर नहीं ले आयेंगे अपने नेताको ! और हमारा नेता क्या जेनकी दीवारें लाँघना नहीं जानता !.....लेकिन खैर। खतरेसे सचेत रहना ही ठीक है। अभी यह प्रोग्राम (कार्यक्रम)

पोस्टपोन (न्यगित) ही कर दें। क्यों ! क्योंकि बिना राजनके वह संघ स्थापित नहीं हो सकेगा। जो हम-नोगोंकी सांस्कृतिक विचार-धाराका आचार्य है, कम-से-कम प्रथम दिन तो उसकी उपस्थिति अनिवार्य ही है। खैर, अभी स्थगित ही करो इसे।”

“नहीं, स्थगित करनेकी क्या आवश्यकता ?”—मधुकरने कहा—
“राजनको छोड़ केवल हम ही लोग इकट्ठे होकर संघ बना लेंगे। अपने आचार्यका सिर्फ नामभर याद कर लेंगे।”

राजनको जाने क्या हो गया उस समय। वह दृढ़स्वरमें बोला—“तुम परसों जरूर ‘संस्कृति-संघ’ स्थापित करो सुधीर ! मैं अवश्य शामिल होऊँगा उसमें ! अगर इस प्रकार उन सरकारी कुत्तोंमे डरता रहूँ तो...मैं कहता हूँ तुम जाओ ! परसों अवश्य उसकी स्थापनाका प्रबन्ध करो !”

राजनके इस आदेश-वाक्यपर सुधीर मन-ही-मन अत्यन्त प्रसन्न होकर ऊपरसे जरा चिन्ता प्रगट करते हुए बोला—“मधुकरके याद दिलानेके बादसे मैं भी सशंक हो चला हूँ जी ! अच्छा तो होगा, कि अब इस विचारको स्थगित ही कर दिया जाय !”—और कहकर चिन्तातुर चेहरेसे राजनको देखने लगा।

“चिन्ता न करो सुधीर !”—राजनने उसे आश्वासित किया—
“सब ठीक रहेगा। सरकार क्या, सरकारका बाप भी नहीं पकड़ सकेगा मुझे !”

“अच्छा, तो मैं अभी चलता हूँ !”—सुधीरने राजन और मधुकर दोनोंसे आज्ञा ली। कुछ प्रसन्न और कुछ शंकित वित्तसे वह वहाँसे विदा हो गया।

इतना निश्चित था कि सुधीरपर न राजनको सन्देह हुआ, न मधुकरको। पर मधुकर राजनका सच्चा मित्र था। उसका हृदय कह रहा था कि राजनको वहाँ जानेसे रोक दे। पर अन्तमें राजनकी इच्छाके आगे उसे अपने हृदयकी आवाज दबानी पड़ी। लेकिन जब राजन तीसरे दिन साजपतराय-मनमें निश्चित समयपर पहुँचा, मधुकर और सुधीरको

भी उसे एकाएक पहचाननेमें कठिनाई हुई। वह वेश बदलनेकी कलामें इतना प्रवीण है, अबसे पहले उन-लोगोंने भी जाना न था। लेकिन राजनका वह वेश-परिवर्तनका प्रयत्न व्यर्थ रहा। जाल पहलेसे ही विछाया जा चुका था। आश्चर्य तो यह कि राजन इसमें फँसा ही कैसे! मधुकरकी चेतावनीके बावजूद भी वह विरत क्यों नहीं हुआ? दर्शकोंमें वेश-बदले कई पुलिसके आदमी मौजूद थे। भवनके चारों ओर वेश-बदले सशस्त्र सरकारी पुरुषोंका पहरा लग चुका था। और सुधीर इसमें काफी सावधान था कि जालसे मछली कहीं निकल न भागे। लेकिन मछली आखिर जालमें फँस ही गई। और तबसे सुधीर सरकारके संरक्षणमें आ गया। लोगोंने बहुत-कुछ सुना, बहुत-कुछ कहा, पर इससे सुधीरका कुछ बिगड़ा नहीं। प्रभु-सत्ताका वह कृपापात्र बन चुका था। शर्म-संजोवको वह कब्रका तलाक दे चुका था।

कुछ दिन बाद लीला भी पकड़ ली गई। अधिक दिनतक अपनेको बचाये रखनेमें वह समर्थ न रह सकी। फरारी-कलामें अभी वह अच्छी तरह निपुण नहीं हो पाई थी। लीला और राजन अब सरकारके पक्के मेहमान बन गये। कुछ दिन बाद पुलिसने पूरी तत्परतासे दोनोंके विरुद्ध अभियोग-पत्र तैयारकर उनपर बाकायदा मुकदमा चला दिया।



[३४]

अबतक राजन और लीलाकी कई पेशियाँ हो चुकी थीं। कानूनकी मजरोमें राजन सामान्य अपराधी न था। लीला भी उस लपेटमें आ गई थी। 'समाज' के कई प्रमुख कार्यकर्ता अन्तर्हित हो चुके थे। कईके खिलाफ वारंट जारी थे। दादाजीके खिलाफ भी। महिला-सदस्योंके विरुद्ध अभी कोई निश्चित पग नहीं उठाया गया था। कुछेक सामान्य पुरुष-सदस्य भी बरी थे।

आज राधा बड़ी परेशान थी। रातको बिछीनेपर पड़ी-पड़ी रह-रहकर उच्छ्वसित हो रही थी। यह सोचते ही उसके दिलके टुकड़े हो रहे थे कि उसका मास्टरजी अब नहीं रहेगा! लीला बिछुड़ जायगी! यद्यपि न्यायालयका निश्चय अभी नहीं सुना गया, किन्तु इतना निश्चय-सा था कि राजनके रक्तसे न्यायकी वेदी रंगकर रहेगी। लीलाके अपराधकी गुरुता उतनी उग्र न थी, किन्तु न्यायकी कठोर कड़ीसे मुक्तिकी उमीद वहाँ भी न थी।

“मास्टरजी!”—एक समय राधा मन-ही-मन बोली—“क्या सच-मुच तुम अब नहीं रहोगे? क्या सचमुच तुम न्यायके जल्लादों की कानूनी हत्याका शिकार बनोगे ही? यह सब क्या है? न्यायका नाटक! न्यायालयका नाटक! न्यायके नामपर न्यायका उपहास! क्या अपराध है तुम्हारा? देशके शोषितोंके लिये, देशसे विदेशी सत्ता समाप्त करनेके लिये कुछेक देशी-विदेशी गन्दे बीड़ोंको मसल डालना कौन-सा अपराध है मास्टरजी? नहीं मास्टरजी, तुम अपराधी नहीं हो! देशकी नजरोमें, देश-विदेशकी करोड़ों शोषित मानवताकी नजरोमें तुम निर्दोष हो, तुम महान् हो! तुमने डाके नहीं डाले, चोरी नहीं की। अपितु देश-विदेशके द्विपे डाकुओं और चोरोंके विरुद्ध तुम्हारा जेहाद है, जिसके अपराधमें

म उस न्यायालयमें खड़े किये गये हो, जिसकी सत्ताका आधार ही भूठ, फरेब, दगा और लूट है !”

सोचते-सोचते राधाका हृदय घृणासे कुंचित और क्रोधसे विस्फारित हो उठा। वह फिर बोली—“पंचपूलेके जिस वातावरणमें जिन से मानव-पशुओं का संहार किया था तुमने, वह हत्या कही जायगी ? उसे अपराध कहेंगे ? क्या परिणाम हुआ होता यदि समयपर तुम नहीं आ पड़ते वहाँ ?”—कहते-कहते राधाके रोंगटे खड़े हो गये। लगा कि वह सारा दृश्य साकार बनकर पुनः उसके सामने आ खड़ा हुआ।

लेकिन आकस्मिक भीति-भावनासे भट संहलकर वह क्रोधमें बोली—“कहाँ थी इस न्यायकी शासन-सत्ता उस समय ? क्या आशा थी, कि यह गोरे शासन-सत्ता उन गोरे नर-पशुओं को कभी दंड भी दे सकती ? माना कि उस हत्यारे पुलिस-कमिश्नरकी हत्यामें भी तुम्हारा हाथ था; माना कि उस गोरे गवर्नरको गोलीसे उड़ा देनेकी साजिसमें भी तुम शामिल थे; माना कि कई कायर कीड़ोंको कुचल चुके हो; माना कि शोषितों को शोषकोंके विरुद्ध उभाड़ते हो, उन्हें संगठित करते हो; लेकिन यह सब किस लिये ? क्या अपने लिये ? अपने स्वार्थकी अट्टालिका खड़ी करनेके लिये ?..... नहीं मेरे मास्टरजी ! नहीं मेरे महान ! मेरे महामानव !”—सोचते-सोचते राधाका हृदय श्रद्धा और स्नेहके आवेशसे भर उठा। वह उच्छ्वसित हो पड़ी—“हर प्रकारकी योग्यताके रहते भी योगियोंका जीवन जीनेवाले ! मेरे मास्टरजी ! ...”

कुछ देर वह चुपके-चुपके रोती रही। अब उसके हृदयमें राजनका गौरवसे प्रदीप्त व्यक्तित्व उद्भासित हो उठा। आँखोंमें ईमानदारीकी आभा, चेहरेपर स्वाभिमानका आभास। न्यायालयके कठघेरेमें खड़ा हुआ, अपनी अनुपम तेजस्वितासे न्यायके समस्त नाटकका उपहास करता हुआ। जब राजन बोल रहा था—“स्वयं अन्यायकी नींवपर खड़ा हुआ न्यायालय दूसरोंको क्या न्याय दे सकता है ? हजारों मील समुद्रपारसे चोरकी तरह आकर निरंतर भूठ, फरेब और दगाके जोरपर जिस सत्ता-

की नींव खड़ी की गई, वह सत्ता हमें झूठ, फरेब और दगा दे सकती है, न्याय नहीं ! मैं इस सत्ताको नहीं मानता, इसके न्याय और न्यायालयको नहीं मानता ! यह सब झूठ है ! इसका आरंभसे अंततक मिथ्या है ! मैं इस मिथ्याका शत्रु हूँ, वह मेरा शत्रु है ! वह हमारे सारे देश और सारे समाजका शत्रु है ! अपने देशसे, अपने सामाजिक जीवनसे इस मिथ्याको समूल उखाड़ फेंकना हमारा उद्देश्य है ! यह सही है कि शत्रु हमारा सबल है । हम संगठित नहीं हैं । हममेंसे लाखों की आत्मा खरीदकर आज वह हमपर हावी है । लाखों-करोड़ों शोषित जनताकी आत्मा अब भी सो रही है । हम उसे जगा नहीं सके हैं । मैं जीना चाहता था, इस सोई हुई विशाल जनताको जगानेकेलिये । उसे उसके शत्रुओंके विरुद्ध संगठित करनेके लिये । पर अब शत्रुके हाथ पड़कर शत्रुसे क्षमाकी भीख नहीं माँग सकता ! उसके न्यायालयमें अपनी सफाई नहीं पेश कर सकता !”

इस तेजस्वी वारगीके प्रभा-पुंजसे न्यायालयकी सारी चकाचौंध फीकी पड़ गई थी । उन जजोंके चेहरे भी प्रभाहीन बन गये थे ।

राधाका हृदय अब गर्वसे भर उठा । उसके हृदयने कहा—“राधा, तू किसी सामान्य व्यक्तिकी संगिनी नहीं ! अपनी सारी निराशाओंको, सारी दुर्बलताओंको दूरकर अपने प्रियके पथपर बढ़नेको तैयार हो जा !”

वह बिछीनेसे उठ खड़ी हुई । अपने अंधेरे कमरेमें चहलकदमी करने लगी । सोचने लगी—“यह न्याय क्या है ! सबलोंकी शक्तिका निर्बलों-पर तीखा व्यंग्य ! जहाँ न्यायके मूल्य कुछ पैसे हों; जहाँ पैसेके जोरपर न्याय खरीदा जाता हो, उस पैसावादी समाजका न्याय ? छी ! जो हमारे शिरपर जबरन बैठा रहो, जबदस्ती ही जिसका बल हो, अन्याय ही जिसकी नींव हो, उस न्यायालयका न्याय ? छी ! पर, मेरे मास्टरजीकी आत्मिक शक्तिके समक्ष यह न्यायका समस्त नाटक व्यंग्य-के सबल तीरोंसे बिधकर कैसा विरूप बन गया ! न्यायके मुखपर गहरी कालिख पुतकर वह कैसा कुरूप बन गया ! रहीम-भाईने मुकदमेकी

पैन्बीमें अपनी सारी पूँजी गँवा देनी चाही, पर मास्टरजीने कौसी प्यारभरी फटकार जताई उन्हें ? पैन्सेके जोरपर न्याय खरीदकर भेरे मास्टरजीकी महान आत्माको कलंकित करना !”

अब राधाका हृदय ईर्ष्यासे आकुल हो उठा । अब उसके मनकी आँखोंके सामने अपनी सारी गरिमा लिये लीलाका व्यक्तित्व प्रगट हो गया । उसे बहनजीके वे शब्द याद आ गये—“राधा, जब कठघेरेमें लीलाको गौरवसे खड़ी देखती हूँ, दिल करता है अपनी आँचलकी इस कोमल कलीके चरण चूम लूँ ! लगता है, जैसे संसारकी सारी नारी जातिका गौरव लीलामें मूर्तिमान हो उठा हो ! हम उस गौरवके भंडेको थामे रहेंगे राधा ! दिलसे निराशाके कीड़े निकाल फेंको बेटा !”

अब राधाका हृदय भर आया । आँखोंसे अकस्मात् आंसू बह चले । लीलासे संभावित वियोगकी व्यथाने उसे रुला डाला । अब वह अवश हो चली । अब फिरसे बिछौनेपर आकर लेट गई । निराशाके नशेमें ही एक समय अनजाने वह सो भी गई ।



आज मुरुदमेके फंमले ही तारीख थी । राधा, बहिनजी और कुछ दूसरे कचहरीके लिये तैयार हो रहे थे । इस समय राधा कार्यालयके कमरेमें एक आवश्यक फाइल लेने जा रही थी । उसने मुख्य द्वारकी ओर देखा, कुछ-लोग आ रहे हैं । वे थे चाची, रजिया, रहीम खान और बनारसी ।

राधाने भट बढ़कर मांके चरण छुए । रजियासे गले मिली । बनारसीको दुलारा और रहीम खानका अभिवादन किया । आंखों-आंखोंमें ही सबने सबको देखा । सहसा कुछ बोलनेका, कुछ पूछनेका साहस किसीको न हुआ । सबकी आंखोंमें व्यथा उभर आई थी । वाणी अब-रुद्ध हो चुकी थी । हृदय मानो बैठ जा रहा था ।

अब सब कमरेमें आकर बैठ गये । सबके शिर नीचे हो रहे थे । भरी आंखोंसे ही जब-तब एक-दूसरेका मुंह देख लेते । दुख और निराशा-के आधिवयमें सबकी चेतना विमूढ़ बन गई थी । विचार-शक्ति विच्छिन्न हो चली थी ।

“हाय रामजी !”—चाची कपारपर हाथ रखे एक समय थके स्वर-में बोलीं—“दोस्त कहीं इस तरह दुश्मन बन जाय ! आखिर किस दिनके लिये काशाने बालिस्टरी पड़ी ! राजनके कोई काम न आ सका !”—कहकर एक लम्बी आह भरकर चुप रह गईं ।

राधाने मांको देखा, मांने ब्रिटियाको । राधाके चेहरेपर वेदना मूर्तिमान हो उठी थी ! चाचीसे अब रहा नहीं गया । हृदयमें उठी हूकको दबा न सकीं । चुन्नीसे आंखें ढककर फफक-फफककर रोने लगीं । राजन-के लिये, राधाके लिये, लीलाके लिये । अपनी गोदकी इस एकमात्र बची कलीको खिली देखकर भी वे उसे जी-भरकर मुस्त्री न देख सकी थीं ।

दुख-सुखका उनका निजी दृष्टिकोण था, भले-बुरेका भी। राधा-के मिछले बीचके जीवनसे वे सुखी न थीं। सन्तुष्ट न थीं। लेकिन उनका हृदय जबसे राजनको प्यार करने लगा था, उसकी खानियाँ भी उन्हें खूबियाँ बनकर दीखने लगी थीं। और जब राधाने निश्चित रूपसे काशीनाथसे पृथक् होकर राजनका साथ पकड़ लिया, चाची नाराज नहीं हुई। आरम्भमें कुछ-दिनके लिये हृदय जरा बाधा-ग्रस्त अवश्य रहा, किन्तु बादमें उसने आशीर्वाद दे ही दिया—“तुम सुखी रहो राधा !” वे जब कभी समाज-कार्यालयमें आतीं, राधाको सुखी देख हृदय उनका प्रफुल्ल हो जाता। ‘समाज’के सभी सदस्योंके मुखसे सस्नेह ‘चाचीजी’ संबोधन सुनकर, उनका स्नेहसना सम्मान-भाव देखकर तो वे सचमुच निहाल हो जातीं। और अपने प्रति लीलाके प्रेमभरे व्यवहारपर रीझकर तो उसे राधासे भी अधिक प्यार करने लगी थीं। उनका दिल करता कि सदा ‘समाज’ में ही रहें। इस दुनियासे पृथक् होनेमें उनका संस्कारबद्ध हृदय भी व्यथा अनुभव करता। किन्तु उनका हृदय काशीनाथको भी नहीं छोड़ना चाहता। क्योंकि चाचीकी दुनियासे दूर रहकर भी चाचीके अधिकारोंके प्रति कभी उसने विद्रोह-भाव नहीं जताया। सो, इस समय राधाके व्यथाभरे चेहरेको देख उसकी सुखकी दुनिया मिटनेकी संभावनासे वास्तवमें माँका हृदय आकुल हो उठा।

अबतक बहिनजी भी आ पहुँची थीं। मेहमानोंके कुछ खाने-पीनेका प्रबन्ध करने जा रही थीं। चाचीजी उन्हें रोकर बोलीं—“नहीं बिटिया ! छोड़ो आज इन-सब बातोंका बखेड़ा। आज किस दिलसे....”

“हम तो मेहमान नहीं बहनजी !”—रजिया भी आँखें पोंछकर बोली—“जहाँ इतने दिन हमारे राजा-भैया रहे, वह हमारे घरसे भी बढ़कर है बहिनजी ! अब चलें कचहरी ! जाने अल्ला क्या सुनाता है !.....”

न्यायालयके अहातेमें सब पहुँच गये थे। घटना असाधारण थी। बाहर जनताकी भीड़। कोर्टके कमरेमें वकीलों, सगे-सम्बधियों और

दर्शकोंका जमाव । पहरेका पूरा प्रबन्ध था । इसी समय सशस्त्र पुर्णिया-के पहरेमें राजन और लीला अदालतके कमरेमें लाये गये । उनकी गतिमें गौरव था, मुखपर स्वाभिमानका आभास और वाणीमें 'इन्कलाब जिन्दाबाद' के नारे । उनके हाथोंसे बँधी बेड़ियाँ उपेक्षाके हास्यसे तिरस्कृत थीं । राधा, रजिया, बहिनजी, चाचीजी, रहीम खान और बनारसीकी आँखें उनपर जा गड़ीं । हृदयमें रह-रहकर उठते आवेगको वे दबा रहे थे । राजन अपने प्रिय-जनोंको निर्भीक एवं धीर आँखोंसे जब-तब देख लेता । लीला भी अपनी चंचल सहज दृष्टिसे उनके दिलोंको आश्वासित कर रही थी ।

कई जज इस मुकदमेमें निर्णायक थे । सभीका निर्णय लाभग समान था । राजन को फाँसीकी सजा देनेमें सभी एकमत थे, किन्तु लीलाके दण्डके सम्बन्धमें कुछ मतभेद अवश्य था । लेकिन अन्तमें बहुमतवा निर्णय यही रहा कि लीलाके स्त्रीत्वका ध्यान रखते हुए उसे दस वर्ष कारावास ही सजा दी जाय ।

जब निर्णय-पत्र पढ़ा जा रहा था, लीला और राजन उदासीनभावसे कंधेरेमें खड़े थे । किन्तु उनके प्रियजनोंको उसके अक्षर-अक्षरपर ध्यान था । फैसला पढ़ते समय न्यायाधीशकी आँखें जब-तब चश्मेके भीतरसे अपराधियोंको भाँक लेतीं । किसी-किसी जजके दिलमें अपराधीके प्रति आदरभाव और करुणा तथा अपने प्रति ग्लानिके भाव भी पैदा हो रहे थे । किन्तु वे लाचार थे ।

जब पूरी तरह निर्णय-पत्र पढ़कर सुना दिया गया; राजनको 'प्राण-दण्ड' और लीलाको दस सालकी सजा सुना दी गई; एकाएका कोर्टका कमरा हिल उठा—“इन्कलाब जिन्दाबाद ! स्वतन्त्र भारत जिन्दाबाद !”लेकिन चाची छाती पीटकर रो पड़ी ! रजिया बुकेंके भीतरसे चिघाड़ मारकर चिल्ला पड़ी ! रहीम खान भी रो पड़े ! बनारसीका चेहरा रोंके बजाय क्रोधसे काँप उठा ! बहिनजी चुपचाप क्षण-भर राजन और लीलाको देखती रहकर झट कमरेसे बाहर निकल

आईं और राधा, वेदनाभरी कठोर आँखोंसे उन्हें देखती दीवालके सहारे निर्जीव-सी खड़ी रह गई। उसने सूनी आँखों और सूने दिलसे राजन और लीला को पुलिसके पहरेमें कठघेरेसे निकलते देखा; इन्कलाबके नारोंसे घरती और आकाशको कँपाते जाते देखा; पर उसे पता कुछ न चला। वह अपने-आपमें न थी। हृदय उसका उसके प्रियतमके पीछे चला गया था। उसी दशामें अपने आदमियों द्वारा वह किसी तरह समाज-कार्यालयमें लाई जा सकी।

राधा मौन बन गई थी। फाँसीके दिन निकट होते आ रहे थे। फँसलेमें अपील की गुंजायश तक नहीं रखी गई। क्यों रखी जाती? क्यों इस भयानक राज-द्रोहीके जीवनकी अवधि बढ़ाकर राज्यकी स्थिति संकटाग्रस्त बनाई जाती? राजनीतिका तकाजा, और व्यावहारिक ज्ञानकी माँग थी कि ऐसे शत्रुका समूल उन्मूलन कर दिया जाय। ज्यों-ज्यों वह दिन निकट आ रहा था, राधाका हृदय और मन मानो शून्य बनता जा रहा था। निराशा और व्यथाके अधिक्यसे हृदय पत्थर बन रहा था। मनपर जड़ता की दारुण छाया छा रही थी। दिनों-दिन उसकी आँखोंका लावण्य नष्ट हो रहा था, विस्तार उनका संकुचित होकर वे भीतरको धसी जा रही थीं। चेहरेकी अगूरी शुभ्रता पीलेपनमें परिणत हो चली। अंगोंके प्रभापुष्ट गौर सौन्दर्यमें मलिन्यका उद्गम होने लगा। वह कुछ सोच नहीं पा रही थी, कुछ समझ नहीं पा रही थी। बुद्धि मानों विदा ले चुकी थी, चेतना मानो खो चुकी थी। उसके हृदयके सूने पटपर जब-तब राजन आ जाता, लीला आ जाती, लेकिन फिर भी वह शून्य-सी, निर्जीव-सी बनी रहती। उससे कुछ पूछनेका, धीरज और ढाढ़स बँधानेका न किसीमें साहस था, न शक्ति थी। बातावरणके प्रत्येक परमाणुसे दुख और निराशाका उच्छ्वास निकल रहा था।

फाँसीका निश्चित दिन भी आ ही गया। आज राजन अपनी काल-कोठी में पड़ा-पड़ा मनकी सरसरी नजरोसे अपने अतीतको

भाँक रहा था। एक-एककर जीवनके पन्ने पलटते जा रहे थे। अबतक तय किये हुए जीवनके पथसे वह फिरसे गुजरने लगा। कहीं ऊबड़-खाबड़, कहीं चौरस भी। खूबियों और खामियोंसे भरा हुआ। आज उसके जीवनकी अंतिम मंजिल समीप है। उसके बाद ! उसके बाद शून्य, अनन्त शून्यता ! सोचते-सोचते उसके मनमें शून्य साकार हो उठा। क्षणभरके लिये उसका हृदय विरक्ति, व्यथा और व्याकुलतासे भर उठा ! फिर धीरे-धीरे माया, मोह और ममताकी दुनियामें मन उसका प्रविष्ट होने लगा। मानस-पटपर रजिया आई, अपनी बड़ी-बड़ी भरी आँखोंसे भगिनीत्वका स्नेह उड़ेलती हुई। रहीम खान आये, भ्रातृत्वके प्रेमकी प्रतिमूर्ति-से। बनारसी आया। राजनका दिल दीड़ पड़ा। सहसा वास्तव्यके मीठे खरोंचे खाकर हृदय उसका द्रवित हो उठा ! चाची आई, आँचल और आँखोंसे मातृत्वके अमृतकी वर्षा करती हुई। राजनके ओठोंसे धीमे स्वरमें “मां ! मां !” की ध्वनि मुखरित हो उठी। उसकी अधमुँदी आँखोंकी किनारियोंसे अश्रुकी अजस्र धारा बह चली। कुछ क्षणके लिये मानो हृदय उसका स्वप्न-लोकमें प्रविष्ट हो गया। मानों चाची स्वयं आकर अपनी आँचलसे उन आँसुओंको पोंछने लगीं। लीला भी आई, राधा भी; रहीमखान, रजिया और बनारसी भी। काशीनाथ भी आ पड़ा। समस्त प्रिय परिजनसे परिवृत उसका मानस-लोक इस क्षण मानो माधुर्यका मन्दिर बन गया। इस स्वर्गीय मिठासके आस्वादसे हृदय उसका भर उठा। वह आस्वाद अब आँसुओंमें परिणत होकर आँखोंसे बहने लगा। राजन इसमें डूब चला। धीरे-धीरे एक समय उसकी आँखें निराशाकी निद्रामें दबकर मुँद गईं।

अब वह घड़ी भी आ गई जब राजनको इस संसारसे कूच कर देना होगा। जब उस काल-कोठरीके दरवाजे पर जमादार आया, उसने भाँक-कर देखा—बंदी दीवालके सहारे ओड़ठकर सो रहा है। आँखों की किनारियोंसे कुछ देर पहले बहते आँसुओंके दाग उसके गालों पर जमे हुए हैं। जमादार एक-टकसे कुछ क्षण उन्हें देखता रहा। उसका हृदय

पसीज उठा ! आँखोंमें आँसू छलछला आये । इधर-उधर ताककर भट उसने आस्तीनसे आँखें पोंछ डालीं । वह इस बन्दीको विशेष दृष्टिसे देखा करता । अपनी इस नौकरीपर जब-तब उसे नफरत भी होती । अलग होनेकी इच्छा भी करता, लेकिन दूसरे ही क्षण रोटीका सवाल, आजीविकाका प्रश्न उसके सामने आ खड़ा होता । इस समय वह केवल दरवाजेकी जंजीर खड़काकर, बन्दीको तैयार रहनेका संकेत देकर भरे दिलसे वहाँसे हट गया ।

×

×

×

राजन संसारसे कूच कर गया ! संसारमें वह आया, अपने आदर्शोंके लिये जिया और अंतमें चमकता हुआ चला गया ! उसके जीवनमें समझौता न था, झुकाव न था । क्षणभरके लिये दुर्बलताओंका बवंडर आया और बिला गया । पर राजन अजेय रहा । क्या हुआ यदि संसारने उसका नाम नहीं जाना ? क्या हुआ यदि उसके शोकमें सभाएँ नहीं हुईं ; श्रद्धाञ्जलियाँ भेंट नहीं की गईं ? और क्या हुआ यदि उसकी पावन स्मृतिमें किसी चौराहेपर प्रतिमा नहीं खड़ी कर दी गई ? वह मनुष्यकी तरह जिया और मनुष्यकी तरह मरा भी । वह गिरी हुई, दासत्वकी बेड़ीमें जकड़ी हुई भारतमाता और मानवताकी मुक्तिके लिये जिया और मुक्तिके लिये मरा भी ।

फाँसीके तख्तेपर झूलनेसे ठीक पहले उसने राधासे कहा था—‘राधा, शोक न करो ! राजन तुम्हारा जीवित रहेगा, यदि उन आदर्शोंको तुम जीवित रख सको जिनके लिये वह स्वयं जीवित रहा, और जिनके लिये आज वह निर्भीक होकर मृत्युका आलिङ्गन कर रहा है ! राजन तुम्हारे साथ रहेगा राधा, यदि उन आदर्शोंके साथ तुम चल सको जिनके साथ वह स्वयं चलता रहा, और जिनके लिये आज वह हँसता हुआ फाँसीके तख्तेपर झूलने जा रहा है ! राधा, अपने देशके दलितोंमें इस आदर्शका प्रचार करना कि—‘ऐ संसारके शोषितो ! एक हो जाओ ! एक झंडेके नीचे गठित होकर अपने जन्म-मिद्व अधिकारोंको प्राप्त करो !

उन्हें प्राप्त करनेके प्रयत्नोंमें मर मिटो !' राधा, महिलाओंको उनकी हीन परिस्थितिसे अवगत करा देना ! उन्हें बता देना कि वर्तमान समाजमें वे सबसे अधिक शोषित हैं, वे सबसे अधिक निन्द्य परिस्थितिमें रह रही हैं। उन्हें अच्छी तरह समझा देना कि उनका उद्धार भी समाजके सारे शोषित-वर्गके उद्धारके साथ ही जुड़ा हुआ है। राधा ! अब बस ! अब विदा !.....इन्कलाब ! जिन्दावाद !”

राजनने चाची, रजिया, रहीम खान, बनारसी और बहिनजी आदि सभी प्रियजनोंको अंतिम नमस्कार किया। सबसे विदा ले बड़ी निर्भीकतासे वह फाँसीके तख्तेपर चढ़ गया। और कुछ क्षण बाद ही मानव-जातिका वह अनुपम रत्न संसारसे उठ गया !

राधा अपने राजनके संदेशको हृदयमें छिपाये अपने शोकाकुल प्रिय-जनोंके साथ 'समाज' में आ गई। दिल भारी हो चला था, यद्यपि वह इस समय धैर्यकी प्रतिमा बनी हुई थी। 'समाज' में आते ही वह थककर नीचे बिछी दरीपर बैठ गई। और उसे घेरकर बैठ गई चाची, रजिया और बहिनजी आदि। रह-रहकर चाची और रजियाकी उठी हुई ह्लाईसे कमरेके कण-कणमें कण्ठसाकार हो जाती। लेकिन राधा शिर झुकाये किसी और ही दुनियामें जा पहुँची थी। इस समय उसके मानस-पटपर राजनका वह अंत समयका चित्र था, और उसके अंत समय के वाक्य गुंजित हो रहे थे। वह उन्हींमें भूली हुई थी, बैठी हुई थी।

उधर काशीनाथ अपने बंगलेमें कुछ भारी दिलसे बैठा हुआ था। मुवक्किलोंसे निबटकर अभी-अभी ही उसने अध्ययन-कक्षमें प्रवेश किया था और अभी-अभी ही किसीने राजनके फाँसीपर लटकनेकी बात उससे कही थी। तभीसे उसका चित्त कुछ अस्वस्थ हो चला था। वह अस्वास्थ्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। अन्तमें अपनेको सम्हाले रखनेमें असमर्थ हो, भटपट मुवक्किलोंसे विदा ले अन्दर कमरेमें आकर उसने साँकल चढ़ा दी।

इस समय काशीनाथ बैरिस्टर काशीनाथ नहीं, बिशुद्ध काशीनाथ

रह गया। आज वह वर्षों-पीछे मुड़ गया। राजनके प्रति वह खोया हुआ सौहार्द, वह खोई हुई मित्रत्वकी भावना अब वापस आने लगी। यह सोचते ही उसका हृदय विदीर्ण हो उठा कि अब राजन संसारमें नहीं रहा ! उत्तरोत्तर हृदय शून्य हो चला। माथा चकराने लगा। एक समय वह 'हाय !' कहकर मुँछित होकर नीचे लुढ़क भी पड़ा। कुछ देर-तक वह इसी दशामें पड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे मूर्छा टूटी। उस बन्द कमरेमें चारों ओर आँखें दौड़ाने लगा। पर सिवा शून्यके उसे कुछ नजर नहीं आया। चारों ओर विशाल सूनापन ! वह पागल-सा, उद्भ्रान्त-सा, खड़ा होकर उस कमरेमें चक्कर लगाने लगा। "राजन ! राजन ! मेरे परम-प्रिय राजन ! तुम क्या सचमुच नहीं रहे अब ? हाय ! हाय !!"—कहते-कहते वह पुनः उस स्प्रिगदार बेंचपर लुढ़क पड़ा।

जब ट्रेन-दुर्घटना हुई थी, जब किस्साखानीमें राजनको गोली लगी थी, उस काशीनाथसे इस वक्तका काशीनाथ कहीं अधिक व्याकुल हो चला था। आज उसका सारा गौरव, सारी गरिमा अपने दिवंगत सखाके चरणोंमें लोट-लोटकर धूलिसात् हो रही थी। वह चाचीके प्यारसे वंचित हो चला था, राधाके प्यार से, और राजन अब सदाके लिये उससे विदा हो चुका था। सारा जीवन ही शून्य बन गया था ! माँ, बहन और बन्धुके स्नेहसे वर्षों और महीनों का उसका वंचित हृदय आज एकाएक उसके लिये क्षुधातुर हो उठा ! उसके सूने हृदयमें हाहाकार मच गया ! वह उत्तान लेटा हुआ सूनी आँखोंसे छतकी कड़ियोंकी ओर देखता रहा। फिर धीरे-धीरे उसके हृदयमें एक प्रकारका चैतन्य-सा आने लगा। किन्तु यह चैतन्य व्यथा और बेचैनीके बोझसे दबा हुआ था !

एक समय वह अपने-आपसे धिक्कार भरे स्वरमें बोला—"कुत्ते-बिल्लियोंका जीवन जीनेवाले पढ़े-लिखे हैवान ! क्या है उपयोग तेरा ? समाज और संसारपर वृथा-भारके सिवा और है क्या तू ? भोग और अहंकारमें मस्त रहनेवाले मानव-पशु ! चल, अपनी अब-तककी पशुता-

का प्रायश्चित्त कर !.....राजन ! तुमने ठीक कहा था । हमने सिवा भ्रष्टाचार, बेईमानी और अनीतिके और समाजको दिया क्या है, दे क्या रहे हैं ? स्वदेशमें विदेशी शासनके पायेको मजबूत करनेके सिवा और हमने किया क्या है, कर क्या रहे हैं ? धिक्कार है इस पेशेको, और धिक्कार है इस जीवनको !”

उसके हृदय और आत्मासे निकले हुए धिक्कारके शब्दोंसे उस बन्द कमरेका कोना-कोना गूँज उठा ।

अब वह उठा और ‘कप-बोर्ड’ पर टँगे बैरिस्ट्रीके चोगेको उतारकर वह ले आया । दियासलाईकी तीली रगड़कर उससे लगाते हुए बोला—“मेरे भ्रष्ट जीवनके प्रतीक ! जलकर नष्ट हो जा तू !” और वह काला गाउन एकाएक भभककर जल उठा ।

फिर दरारमेंसे बैरिस्ट्रीका प्रमाण-पत्र निकालकर—“जा, तू भी जलकर खाक बन जा ! क्या है तेरा उपयोग अगर मैं अपने प्यारे मित्रको न बचा सका ? चाची, तुमने ठीक कहा था, आखिर किस दिनके लिये मैंने बैरिस्ट्री पढ़ी अगर मैं अपने राजनको न बचा सका ? ...जा, जल जा !”—कहकर उसने उस ‘सनद’ को उस जलते चोगेपर फेंक दिया । मिनटोंमें सब स्वाहा हो गया !

अब वह पागलकी तरह कमरेसे बाहर निकलकर उस तरफ चल पड़ा जिस तरफ ‘समाज-कार्यालय’ को सड़क जाती थी । वह सड़कके किनारेसे बेतहाशा भागा जा रहा था । न अगल देख रहा था, न बगल । कई धक्के लगे, कई धक्के खाये, कई गालियाँ भी सुनीं, पर उससे मानो मन विदा ले चुका था । अनुभूतिकी शक्ति उसकी नष्ट हो चुकी थी । किन्तु फिर भी वह मशीनकी तरह आगे बढ़ा जा रहा था ।

एक समय वह समाज-कार्यालयके सामने पहुँचा । साइनबोर्ड देख ठिठक गया ! फिर दूसरे ही क्षण वह अन्दर प्रविष्ट हो गया । वहाँ नीचे फरशकी बिछी दरीपर शिर झुकाये राधा बैठी थी, चाची और रजिया भी । एक तरफ बनारसी भी बैठा हुआ था । वह रह-रहकर

बोल रहा था—“मैं बदला लूँगा बुआ, मैं चाचाजीका बदला लूँगा !” बहिनजी उठकर ऊपरके मंजिलमें चली गई थीं, और रहीम खान उसी कमरेमें चुपचाप चहलकदमी कर रहे थे ।

काशीनाथ वहाँ जाते ही नीचे फरशपर लुढ़ककर एक बिल्कुल अबोध बच्चेकी तरह विलख-विलखकर रोने लगा । वह बोलने लगा—“मुझे माफ कर दो राधा ! मेरी प्यारी बहन, मुझे माफ कर दो ! इस अभागैको अपने चरणोंमें जगह दो चाची ! मुझपर दया करो चाची ! मुझे माफ कर दो !”

देखकर सब दंग रह गये ! कितने आश्चर्यकी बात थी ? बैरिस्टर काशीनाथ अपनी सारी महिमाको लात मारकर इस समय एक अबोध शिशुकी तरह व्याकुल हो भूमिमें लुढ़क रहा है ! अपने सखाके प्रति एकाएक उभरे हुए स्नेहकी प्रखर धारामें उसके व्यक्तित्व की ऊँची अट्टालिका क्षणमात्रमें ढहकर, बहकर विनष्ट हो चली ! उस ध्वस्त महलका चिह्नमात्र भी कही नजर नहीं आ रहा था !

राधा क्षणभर आश्चर्य-विजडित आँखोंसे काशीनाथको देखती रही ! फिर दूसरे ही क्षण उसके हृदयमें एकाएक स्नेहका, ममताका तूफान उठ खड़ा हुआ ! अब वह धैर्यकी प्रतिमा नहीं रह सकी । वह जोरसे रो पड़ी—“भैया !!”

आगे बढ़कर काशीनाथके शिरको अपनी गोदमें रख चाची भी जोरसे रो पड़ीं । जिस प्रकार गाय अपने खोये हुये नवजात बछड़ेको दूरसे देखकर ही बड़े वेगसे उस ओर दौड़ पड़ती है, इस समय चाचीके हृदयका भी वही हाल था । आज वर्षोंसे अपने खोये हुए इस बछड़ेको अपने इतने निकट पाकर माँके हृदयमें मानो वात्सल्यका सागर उमड़कर फूट पड़ा । कुछ देरके लिये उन्हें राजन भी भूल गया । कुछ देरतक वात्सल्य और मिलनकी धारामें बहते-बहते उनका हृदय कुछ शांत हो गया । एक समय बातावरण कुछ स्वस्थ हो चला ।

चाचीकी गोदमें शिर रखे ही एक समय अश्रु-पूरित नेत्रोंसे दैन्य-भरे स्वरमें वह बोला—“अब मैं तुम्हारे पास रहूँगा चाची !” फिर राधासे—“राधा, अब हम राजनको ढूँढ़ेंगे, उसके रास्तेपर चलकर । हमें राह दिखाना बहन ! अबसे मैं तुम्हारे पीछे-पीछे चलूँगा राधा !”

काशीनाथके इन दीनताभरे स्वरोंमें हृदयकी आकुलता, पश्चात्तापकी वेदना मुखरित हो रही थी ।

राधा अश्रु-कलुषित आँखोंसे विगलित स्वरमें बोली—“हम-सब साथ चलेंगे भैया ! अपने मास्टरजीके बताये रास्तेपर हम साथ चलेंगे !

